पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) एल . आर . गुर्जर
निदेशक , संकाय
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक

डॉ. सरिता गौतम
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग
व. म .खु.वि. वि. , कोटा

सदस्य

प्रो. ए .एन. सिंह
आचार्य, समाज कार्य विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ,(उ. प्र.)

डॉ. डी.के. सिंह
सह- आचार्य, समाज कार्य विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ,(उ. प्र.)

डॉ. राकेश द्विवेदी
सहायक- आचार्य, समाज कार्य विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ,(उ. प्र.)

डॉ. ए.के. भरतिया
सहायक- आचार्य, समाज कार्य विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ,(उ. प्र.)

डॉ. रूपेश कुमार
सहायक- आचार्य, समाज कार्य विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ,(उ. प्र.)

संपादन तथा पाठ लेखन

लेखन

डॉ. राकेश द्विवेदी
सहायक आचार्य, समाज कार्य विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ,(उ. प्र.)

संपादन

डॉ. अखिलेश कुमार
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग
व. म .खु.वि. वि. , कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.)विनय कुमार पाठक
कुलपति,
व. म .खु.वि. वि. , कोटा

प्रो. (डॉ.) एल . आर . गुर्जर
निदेशक , संकाय
व. म .खु.वि. वि. , कोटा

प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह
निदेशक,पाठ्यक्रम उत्पादन
एवं वितरण विभाग,
व. म .खु.वि. वि. , कोटा

डॉ. अनिल जैन
अतिरिक्त निदेशक,पाठ्यक्रम
उत्पादन एवं वितरण विभाग,
व. म .खु.वि. वि. , कोटा

उत्पादन- सितम्बर 2014 ISBN :

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस पाठ्य सामग्री के किसी भी अंश को व. म .खु.वि. वि. , कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चकमुद्रण) के द्वारा या अन्यत्र प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |कुलसचिव . व. म .खु.वि. वि. , कोटा , द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित|

MSW-07

व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार की गतिविधियाँ

Personality and Activities of Human Behaviour

इकाई की संख्या एवं नाम	**पृष्ठ संख्या**
1.व्यक्तित्व: अर्थ , परिभाषायें एवं उसके निर्धारक	1-18
2. व्यक्तित्व विकास की अवस्थायें	19-27
3. व्यक्तित्व के सिद्धान्त-I: फ्रायड, जुंग एवं एडलर	28-41
4. व्यक्तित्व के सिद्धान्त-II: करेन हार्नी और ऑटो रैंक	42-50
5. मूल मनोसामाजिक प्रक्रियायें I:अभिप्रेरणा एवं सीखना	51-70
6. मूल मनोसामाजिक प्रक्रियायें II:प्रत्यक्षीकरण एवं समाजीकरण	71-82
7. मूल मनोसामाजिक प्रक्रियाएं –III: मनोवृत्ति एवं पूर्वाग्रह	83-96
8. मानव व्यवहार और सामाजिक नियंत्रण	97-108
9. असामान्य व्यवहार : लक्षण, कारण एवं प्रकार	109-133
10. मानसिक विकृतियों का प्रबंधन	134-144
11. नेतृत्व: आवश्यकता, प्रकार एवं गुण	145-153

इकाई-1

व्यक्तित्व: अर्थ , परिभाषायें एवं उसके निर्धारक

(Personality: Meaning, definitions and its determinants)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 व्यक्तित्व की अवधारणा

1.4 व्यक्तित्व का अर्थ

1.5 व्यक्तित्व की परिभाषायें

1.6 व्यक्तित्व के निर्धारक

1.6.1 जैविक निर्धारक (Biological Factors)

1.6.2 सामाजिक निर्धारक (Social Factors)

1.6.3 सांस्कृतिक निर्धारक (Cultural Factors)

1.7.3 वतावरणीय निर्धारक (Environmental Factors)

1.6.4 वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व

1.6 सारांश

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.8 संदर्भ ग्रंथ

1.1 इकाई के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य व्यक्तित्व के संगठन एवं निर्माण के विषय में परिचय प्रदान एवं आपको व्यक्तित्व की अवधारणा, अर्थ तथा परिभाषाओं से परिचित करना है। प्रस्तुत इकाई में व्यक्तित्व की अवधारणा को स्पष्ट करने के अलावा विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए व्यक्तित्व के शाब्दिक तथा सैद्धान्तिक अर्थ के साथ-साथ परिभाषाओं का भी वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त आप व्यक्तित्व के निर्धारकों के विषय में भली-भांति परिचित हो जाएगें एवं साथ ही इससे भी अवगत हो जाएगें कि इन निर्धारकों का व्यक्तित्व निर्माण पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है। अतः **इस इकाई के अध्ययन के बाद आपसे अपेक्षित है कि**

- **व्यक्तित्व की संकल्पना पर प्रकाश डाल सकेंगे**
- **व्यक्तित्व का सामान्य अर्थ बता सकेंगे**

- **प्रमुख मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी व्यक्तित्व की परिभाषा प्रस्तुत कर सकेंगे**
- **व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं की समीक्षा प्रस्तुत कर सकेंगे**
- **व्यक्तित्व के विभिन्न निर्धारकों के बारे में बता सकेंगे**
- **व्यक्तित्व के विभिन्न निर्धारकों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे**

1.2 प्रस्तावना

व्यक्तित्व एक विशद अवधारणा है जिसमें मानव व्यक्तित्व के निर्माण की विभिन्न इकाइयों एवं क्षेत्रों को समाहित किया जाता है। यह व्यक्ति के आन्तरिक एवं बाह्य गुणों का कुल योग कहा जाता है। मानव व्यक्तित्व को ठीक ढंग से जानने के लिए इसकी अवधारणा एवं अर्थ को जानना महत्वपूर्ण होता है। हालांकि व्यक्तित्व क्या है इसके विषय में मतैक्यता नहीं है फिर भी इसको विद्वानों ने विभिन्न ढंग से पारिभाषित करने का प्रयास किया है। व्यक्तित्व को सामान्य रूप से **व्यक्ति के समस्त व्यवहारों की योग्यता** कहा जाता है। **व्यक्तित्व का अर्थ उन गुणों के समावेश से समझा जाता है जो दूसरों पर अपना प्रभाव स्थापित करने में सहायता करते है।** इन गुणों को **शारीरिक (Physiological)** एवं **मानसिक (Mental)** गुणों के रूप में विभाजित किया गया है। शारीरिक गुणों में व्यक्ति के शरीर की लम्बाई, चैड़ाई, गठन, भार, रंग रूप, ध्वनि आदि आते हैं। इन गुणों का व्यक्तित्व पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जबकि मानसिक गुणों के अन्तर्गत ज्ञान, भावना, इच्छा, स्वाभाव, प्रवृत्ति, संवेग आदि को सम्मिलित करते हैं। इस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक गुण मिलकर के मानव व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं।

1.3 व्यक्तित्व की अवधारणा

व्यक्तित्व की अवधारणा को विलियम हिली ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि **व्यक्तित्व वातावरण के साथ विशेषतया सामाजिक वातावरण के साथ समायोजन की समन्वित व्यवस्था है।** इस प्रकार मानव व्यक्तित्व को व्यक्ति के पर्यावरण के साथ होने वाली अंतःक्रिया का परिणाम माना जाता है। यद्यपि शारीरिक संगठन के दृष्टिकोण से सभी व्यक्ति एक जैसे दिखाई देते हैं फिर भी प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है। यह भिन्नता चाहे कम हो या अधिक परन्तु दो व्यक्तियों में पूर्ण समानता का होना लगभग असम्भव है। भिन्नता के साथ-साथ अनेक व्यक्तियों में किसी न किसी स्तर में समानतायें भी अवश्य पाई जाती है। इन्ही समानताओं के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया जाता है। हालांकि व्यक्तित्व के विषय में जहां मनोवैज्ञानिकों ने अपने सिद्धान्त दिये हैं वहीं प्राचीन दर्शन में भी व्यक्तित्व के विषय में अनेक प्रकार के विचार प्रस्तुत किये गए हैं।

भारतीय शास्त्रों एवं वेदों ने व्यक्तित्व की तीन श्रेणियां बतायी हैं जो निम्न प्रकार हैं -

a) **कफ प्रधान व्यक्तित्व** : वे लोग धीमें, निर्बल तथा उत्तेजनाहीन होते हैं।
b) **वात (वायु) प्रधान व्यक्तित्व**: ये लोग शीघ्र काम करते हैं तथा प्रसन्न रहते हैं।
c) **पित्त प्रधान व्यक्तित्व:** ये लोग निराशावादी होते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान के आधार पर व्यक्तित्व को 3 वर्गों में विभक्त किया गया है:-

a) **भाव प्रधान व्यक्ति:** इस प्रकार के व्यक्ति वे होते हैं जिनमें भावना की प्रेरणा प्रधान होती है। ये भावना की प्रेरणा से आवेग में आकर कोई भी काम कर सकते हैं।
b) **क्रिया प्रधान व्यक्ति:** इस प्रकार के व्यक्ति सदैव कोई न कोई रचनात्मक कार्य करते हैं तथा इनकी इच्छा सदैव सकारात्मक होती है। यद्यपि ये लोग मानसिक कार्यो को कुशलता से नहीं कर पाते हैं परन्तु शारीरिक परिश्रम वाले कार्यो को कुशलतापूर्वक करते हैं। अभियन्ता, पहलवान, खिलाड़ी, सैनिक आदि इस वर्ग में आते हैं।
c) **विचार प्रधान व्यक्ति:** यह वर्गीकरण विशेष महत्वपूर्ण है तथा मनोवैज्ञानिक मूल्यों के आधार पर स्पेन्सर ने निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किया है:ज्ञानात्मक , सौन्दर्यात्मक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक व्यक्तित्व

थार्नडाइक (Thorndyke) ने कल्पना या विचार के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है:

a) **सूक्ष्म विचारक :** इस प्रकार के व्यक्तित्व के व्यक्ति गणित तथा कानून में रुचि रखते हैं।
b) **स्थूल विचारक:** इस प्रकार के व्यक्तित्व के व्यक्ति क्रिया पर विशेष बल देते हैं।
c) **प्रत्यक्ष विचारक:** इस प्रकार के व्यक्तित्व के व्यक्ति संख्या, संकेत तथा शब्दों पर विचार रखते हैं।

शेल्डन (Sheldon) ने शरीर रचना आधार पर निम्न वर्गीकरण बताया है:

a) **कोमल तथा गोल शरीर वाले व्यक्ति (Endomorphic):** इस प्रकार के व्यक्ति अत्यन्त कोमल किन्तु देखने में मोटे लगते हैं। उनकी पाचनक्रिया अविकसित होती हैं।
b) **हष्ट पुष्ट व्यक्ति (Mesomorphic) :** वे लोग शारीरिक रूप से शक्तिशाली होते हैं।
c) **शक्तिहीन व्यक्ति (Ectomorphic):** शक्तिहीन होते हैं, हड्डियाँ पतली तथा लम्बी होती हैं। परन्तु उत्तेजक अधिक होते हैं।

क्रेशमर (Kretschmer) ने भी व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये हैं:-

a) **एथेलेटिक टाइप व्यक्ति(Atheletic):** ऐसे व्यक्तियों का शरीर सबल तथा मजबूत होता है। सीना चैड़ा, लम्बा, गोल चेहरा एवं हाथ पैर लम्बे होते हैं।
b) **अस्थेनिक टाइप व्यक्ति (Asthenic):** ऐसे व्यक्तियों के हाथ पैर लम्बे, चेहरा लम्बा तथा सीना चपटा होता है।
c) **पिकनिक व्यक्ति (Pycnic)** : ऐसे लोग गोल मटोल, तोंदुल तथा नाटे होते हैं।

कार्ल युंग (Karl Jung) ने व्यक्तियों के व्यक्तित्व को दो भागों में विभाजित किया है:

a. **बहिर्मुखी (Extrovert)**
b. **अन्तर्मुखी (Introvert)**

बहिर्मुखी (Extrovert) व्यक्तियों की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं:

- इनकी रुचि वाह्य जगत में अधिक होती है।
- इनमे कार्य करने की दृढ़ इच्छा होती है।
- ये बहादुरी के कार्यों में रुचि रखते हैं।

- इनके स्वभाव में शासन करने के गुण होते हैं।
- ये शीघ्र न घबड़ाने वाले होते हैं।
- ये शान्त एवं आशावादी होते हैं।
- इनका ध्यान बाह्य समाज पर होने के कारण आन्तरिक जीवन कष्टमय होता है।
- ये अधिकांश लोगों को पसंद आने वाले गुणों को अपनाते हैं।
- ये धारा प्रवाह बोलने वाले होते हैं।
- ये सभी से मित्रों जैसा व्यवहार करते हैं।
- ये अपनी पीड़ा की कम चिन्ता करते हैं।

अन्तर्मुखी (Introvert) व्यक्तियों की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं:

- ये कम बोलते हैं।
- ये पुस्तकें अधिक पढ़ते हैं।
- ये थोड़ी देर में ही घबड़ाहट का अनुभव करते हैं।
- ये अस्थिर स्वभाव वाले होते हैं।
- ये आत्म चिंतन में अधिक रुचि रखते हैं।
- ये कम लोकप्रिय होते हैं।
- ये अक्सर चिंताग्रस्त दिखते हैं।
- ये भावों को अपने तक सीमित रखते हैं।
- ये अपनी वस्तुओं तथा कष्टों के प्रति सजग रहते हैं।
- ये प्रतिक्रियावादी होते हैं।

व्यक्तित्व की अवधारणा से स्पष्ट होता है कि **यह व्यवहार का तरीका निश्चित करता है। रुचियाँ (Interests)** व्यक्तित्व का अंग होती हैं तथा **दृष्टिकोण (Attitude)** के आधार पर व्यक्तित्व में परिवर्तन आता है। व्यक्ति कि विभिन्न प्रकार की क्षमतायें उसकी अर्जित शक्ति है जो उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। विचारों के रूप व्यक्तित्व पर निर्भर होते हैं। मनुष्य की मनोवृत्तियाँ तथा मूल्य भी अति महत्वपूर्ण होते हैं तथा इनका उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है और उसकी आदतें इससे नियंत्रित होती हैं। व्यक्तित्व से व्यक्ति-विशेष के स्थायी गुणों की पहचान होती है। व्यक्तित्व द्वारा परिवर्तनशील वातावरण के साथ व्यक्ति का अनुकूलन भी प्रगट होता है। शरीर की रचना तथा मानसिक विशेषतायें व्यक्तित्व में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

1.4 व्यक्तित्व का अर्थ (Meaning of Personality):

व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। व्यक्तित्व कभी व्यक्ति के व्यवहार को , तो कभी मानसिक क्षमता को स्पष्ट करता है, कभी उसके समायोजन की क्षमता के रूप में उपयोग किया जाता है तो कभी शारीरिक बनावट को उजागर करता है। अतः व्यक्तित्व के वास्तविक अर्थ को उसके विविध स्वरूपों के सन्दर्भ में समझना अति आवश्यक है। व्यक्तित्व शब्द अंग्रेजी भाषा के पर्सनाल्टी शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। पर्सनाल्टी शब्द की उत्पत्ति **लैटिन भाषा** के **'परसोना' (Persona)** से हुई है। **परसोना शब्द का अर्थ एक**

प्रकार के पहनावे से है जो नाटक के समय कलाकार मंच पर विशेष भूमिका अदा करने के लिए पहनता है। मुखौटे अथवा पहनावे द्वारा व्यक्ति का व्यक्तित्व वास्तविकता से भिन्न हो जाता है। इस अर्थ में व्यक्तित्व को व्यक्ति के बाह्य गुणों के आधार पर समझा जाता है, परन्तु इससे व्यक्तित्व का वास्तविक अर्थ स्पष्ट नहीं होता है।

सैद्धान्तिक रूप से व्यक्तित्व को पांच दृष्टिकोणों से देखा जाता है , जो निम्नलिखित हैं--

1. सामान्य दृष्टिकोण |
2. दार्शनिक दृष्टिकोण |
3. समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण |
4. मनोविश्लेष्णात्मक दृष्टिकोण |
5. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण |

सामान्य रूप से व्यक्तित्व का अर्थ उन गुणों के समावेश से लगाया जाता है जो दूसरों पर अपना प्रभाव स्थापित करने में सहायता करते है। इस प्रकार व्यक्तियों की वे विशेषतायें जो दूसरों को प्रभावित करने में सहायता करती हैं, व्यक्तित्व के अन्तर्गत आती है।

दार्शनिक विचारधारा के अनुसार व्यक्तित्व का तात्पर्य आत्मज्ञान तथा पूर्ण आदर्श से है। व्यक्ति की मानसिक रचना में ज्ञान का प्रारूप तथा उसकी आदर्शवादिता व्यक्तित्व के अन्तर्गत सम्मिलित की जाती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व के अन्तर्गत उन गुणों को सम्मिलित करते हैं जो व्यक्ति का समाज में कार्य एवं पद निर्धारित करते हैं। सामाजिक प्रभावशीलता इस दृष्टिकोण के अनुसार एक प्रमुख लक्षण है।

मनोविश्लेषण विचारधारा के अनुसार व्यक्तित्व में अंग प्रमुख हैं- इड, अहं तथा पराअहम्। इड अचेतन मन की मूल प्रवृत्तियों से सम्बन्धित होती है तथा तृप्ति चाहती है। अहं इस शक्ति पर विवेक, तर्क एवं चेतना से रोक लगाता है। अहम् शक्ति व्यक्ति को वास्तविक व्यवहार को करने की प्रेरणा देता है। पराहम नैतिकता को दर्शाता है | समाज के अनुरूप व्यवहार करने की योग्यता पराहम द्वारा उत्पन्न होती है। अतः व्यक्तित्व में ये तीन शक्तियाँ प्रभावकारी होती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति का पूर्ण संगठन जो कि विकास के किसी स्तर पर होता है, व्यक्तित्व के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

1.5 व्यक्तित्व की परिभाषायें (Definitions of Personality):

कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गयी व्यक्तित्व की परिभाषायें निम्नलिखित हैं :-

वुडवर्थ के अनुसार, ***"व्यक्तित्व से उस व्यवहार का बोध होता है जो किसी को प्रिय लगती है,तो किसी को अप्रिय।"***

एन. एल.मन के अनुसार, ***"व्यक्तित्व की परिभाषा एक व्यक्ति के ढाँचे, व्यवहार के तरीकों, रूचियों, मनोवृत्तियों, सामान्यों, योग्यताओं और अभिरूचियों के सर्वाधिक विशिष्ट संगठन के रूप में की जा सकती है।"***

जी. डब्लू. आल्पोर्ट के अनुसार, ***"व्यक्तित्व मनोदैहिक व्यवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन है जो पर्यावरण के प्रति होने वाले उसके अपूर्व अनुकूलनों का निर्धारण करता है।"***

किम्बाल यंग के अनुसार, ***"अपने उद्देश्य के लिए व्यक्तित्व को कम या अधिक आदतों, लक्षणों, मनोवृत्तियों, विचारों को उस समगता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका निर्माण वाह्य रूप में एक व्यक्ति के कार्यों तथा प्रस्थितियों के रूप में होता है तथा आन्तरिक रूप से वे सम्प्रेरणाओं, उद्देश्यों तथा आत्मा के विभिन्न तत्वों से सम्बन्धित होता है।"***

लायियिरस ऐण्ड फ्रान्सवर्थ के अनुसार, ***"व्यक्तित्व शब्द का वैज्ञानिक प्रयोग किसी समय विशेष में किसी व्यक्ति विशेष के समाजीकरण के प्रतिफलन को दर्शाने के लिए किया जाता है। व्यक्तित्व उन सभी गुणों को समग्रता है जिन्हें व्यक्ति ने समाजीकरण द्वारा अर्जित किया है।"***

जे. एफ. डेशिल के अनुसार, ***"व्यक्ति का व्यक्तित्व सम्पूर्ण रूप से उसकी प्रतिक्रियाओं की, सम्भावनाओं की उस ढंग की व्यवस्था है जिस ढंग से वह सामाजिक प्राणियों द्वारा आँकी जाती है। यह व्यक्ति के व्यवहारों का एक समायोजित संकलन है जो कि व्यक्ति अपने सामाजिक समायोजन के लिए करता है।"***

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम व्यक्तित्व को निम्न शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं:

व्यक्तित्व व्यक्ति के आन्तरिक एवं बाह्य व्यवहार के तरीकों , रूचियों, अभिवृत्तियों , योग्यतायों, क्षमताओं , आदटन , प्रेरणाओं , उद्देश्यों तथा शारीरिक गुणों आदि के सम्मिलित योग को कहते हैं। इसी प्रकार चरित्र भी व्यक्तित्व का एक प्रमुख अंग है। चरित्र का मूल्यांकन नैतिक मूल्यों तथा समाज के नियमों के आधार पर होता है। यह व्यक्ति की निर्बलता या सबलता, उच्चता या नीचता पर ही निर्भर नहीं होता है, वरन् व्यक्ति के आत्म संयम चाहे वह कमजोर या बलवान , उच्च या निम्न वर्ग का हो, पर निर्भर होता है। वही व्यक्ति उच्च चरित्र वाला माना जाता है जो अपने वर्तमान सुख को महान आदर्श अथवा उज्जवल भविष्य के लिए त्याग देता है। इस प्रकार चरित्र के आधार पर भी व्यक्तित्व को श्रेणीबद्ध कर सकते हैं।

व्यक्ति का प्रारम्भिक जीवन परिवार में व्यतीत होता है और परिवार व्यक्ति में सामाजिक गुणों को विकसित करने का प्रमुख साधन है। सहयोग, सहानुभूति, त्याग की भावना, जनहित आदि गुण व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं। व्यक्ति में सामाजिकता का विकास समूह में होता है। व्यक्तित्व के निर्धारण में व्यक्ति की संकल्प शक्ति की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इससे उसके विचार शक्ति में वृद्धि होती है एवं व्यक्तित्व में निखार आता है। इस गुण की प्रमुखता के कारण ही गांधी जी, सुभाषचन्द्र बोस, शिवाजी तथा जवाहरलाल नेहरू आदि महापुरुष बने।

1.6 व्यक्तित्व के निर्धारक (Determinants of Personality):

व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण के पीछे बहुत से कारकों का योगदान होता है जो व्यक्तित्व के स्वरूप का ठोस रूप से निर्धारण करते हैं। हालांकि इन कारकों का व्यक्तित्व निर्माण में समान रूप से महत्व होता है। फिर भी व्यक्तियों के पर इनका प्रभाव अलग-अलग ढंग एवं मात्रा से पड़ता है। व्यक्तित्व के निर्माण में सांस्कृतिक, सामाजिक एवं जैविक निर्धारकों का योगदान होता है। यह निर्धारक सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व को एक स्वरूप प्रदान करते हैं। किन्तु स्थान एवं परिस्थितियों के कारण व्यक्तित्व के निर्माण में इनका अलग-अलग ढंग से योगदान होता हैं।

व्यक्तित्व का निर्धारक व्यक्ति की स्वयं की जैवकीय संरचना के अतिरिक्त, उसके चारों ओर का वह पर्यावरण होता है, जिसमें उसका पालन-पोषण, शिक्षा तथा सामाजिक विकास की प्रक्रियाएं पूर्ण होती हैं। इस प्रकार व्यक्तित्व के निर्धारक तत्वों को हम प्रमुख रूप से निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं:-

i. **जैवकीय निर्धारक (Biological Factors)**
ii. **सामाजिक निर्धारक (Social Factors)**
    अ. पारिवारिक निर्धारक (Family Factors)
    आ.विद्यालयी निर्धारक (School Factors)
iii. **सांस्कृतिक निर्धारक (Cultural Factors)**
iv. **पर्यावरणीय निर्धारक (Environmental Factors)**

1.6.1 व्यक्तित्व के जैवकीय निर्धारक (Biological determinants of Personality) :

जैविकीय निर्धारकों का सम्बन्ध व्यक्ति की समस्त दैहिक क्रियाओं एवं अन्तरंगों तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों से होता है। ये सभी मिलकर व्यक्तित्व का आन्तरिक ढाँचा तैयार करते हैं तथा व्यक्तित्व के विकास दर को प्रभावित एवं नियमित करते हैं। इनके अन्तर्गत हम निम्नलिखित कारकों का अध्ययन करेंगेः-

a. शारीरिक संरचना एवं स्वास्थ्य (Physiology and Health)
b. शारीरिक रसायन एवं ग्रंथीय स्राव (Physiological Chemistry and Endocrinal Secretion)
c. परिपक्वता (Maturity)
d. आनुवांशिक निर्धारक (Genetic determinants)

उपरोक्त में से प्रत्येक कारक का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है:

a. शारीरिक संरचना एवं स्वास्थ्य (Physiology and Health)

शारीरिक संरचना एवं स्वास्थ्य, व्यक्तित्व निर्धारण के मूल तत्व माने जाते हैं। सामान्यतः यदि एक व्यक्ति का स्वास्थ्य एवं रूप-रंग तथा गठन सौष्ठवपूर्ण है तो वह व्यक्ति उत्तम व्यक्तित्व वाला माना जाता है। यद्यपि आज केवल इसी परिभाषा या कसौटी के आधार पर ही व्यक्तित्व की परख नहीं की जाती है फिर भी यह एक शारीरिक आकृति या संरचना की वैधता के रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है| आधुनिक समय में साधारण व्यक्ति, अभिनेता-अभिनेत्रियों के व्यक्तित्व का आकलन इसी कसौटी के आधार पर करते हैं जो कि अपूर्ण एवं भ्रामक है। यदि किसी व्यक्ति में कोई शारीरिक दोष या अंगों में विकलांगता आदि होती है तो ऐसे उस व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है। जिससे उसमें अनेकों प्रकार की अन्य मानसिक बाधायें या कमियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

b. शारीरिक रसायन एवं ग्रंथीय स्राव (Physiological Chemistry and Endocrinal Secretion)

शरीर-रसायन एवं व्यक्तित्व एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि शारीरिक रसायनों में होने वाले परिवर्तन हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। हम जानते हैं कि जब मांसपेशियों में ग्लाइकोजन की कमी हो जाती है तो वे शिथिल हो जाती हैं और ऐसी स्थिति में उनमें थकान पैदा हो जाती है, जिसका प्रभाव हमारी रुचि, अभिवृत्ति, प्रेरणा आदि पर होता है और हम कोई कार्य करना पसन्द नहीं करते हैं।

दूसरा शारीरिक रसायनों के नियमन का महत्वपूर्ण कार्य करने वाले अंग हैं- अंतःस्रावी ग्रन्थियाँ। ये ग्रन्थियाँ अपने विभिन्न स्रावों को रक्त के अन्दर छोड़ती हैं इसीलिए इन्हें अंतःस्रावी ग्रन्थियाँ कहा जाता है। व्यक्ति के शरीर की कुछ प्रमुख अंतःस्रावी ग्रन्थियाँ हैं:-

क. पिट्यूटरी ग्रन्थि (Pituitary Gland) |

ख. पैंक्रियाज ग्रन्थि (Pancreas Gland)

ग. थायरायड ग्रन्थि (Thyroid Gland)

घ. पैरा-थायरायड ग्रन्थि(Para-Thyroid Gland)

ङ. एड्रीनल ग्रन्थि (Adrenal Gland)

च. जनन ग्रन्थियाँ (Reproductive Glands)

इन सभी ग्रन्थियों से निकलने वाले स्रावों में अधिकता या कमी होने पर विभिन्न प्रकार के शारीरिक-मानसिक रोग, कठिनाइयाँ एवं कमियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। अतः इन ग्रन्थियों का स्राव व्यक्तित्व के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

c. **परिपक्वता (Maturity):**

परिपक्वता वह सीमान्त दशा है जहाँ से बालक अपने नवीन प्रकार के विकास-क्रमों की स्थिति को ग्रहण करता है। बालक के विकास-क्रम में परिपक्वता का अत्यधिक महत्व है। बालक की शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, सामाजिक एवं नैतिक परिपक्वता आदि उसके समस्त विकासात्मक पक्षों के लिए आधारभूत संरचनाओं को संकलित तथा समायोजित करती है। अतः परिपक्व व्यक्ति का व्यक्तित्व समायोजनपूर्ण, विवेकपूर्ण, एवं उच्च मानसिक विकास से परिपूर्ण होता है।

d. आनुवांशिक निर्धारक (Genetic determinants):

वंशानुक्रम का अर्थ माता-पिता से उनकी संतानों में विविध गुणों का संचरण है। बालक के विकास पर वंशानुक्रम के नियमों का अत्यन्त प्रभाव पड़ता है जो कि व्यक्तित्व के निर्माण को भी प्रभावित करता है ।व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर भी उसके वंशानुक्रम का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। यह प्रभाव जहां एक तरफ शारीरिक विकास के रूप में दिखाई देता है वहीं शारीरिक विकास की प्रक्रियाओं में उत्पन्न होने वाली बाधाओं के रूप में भी दिखायी पड़ता है। वंशानुक्रम पर पर्यावरण का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। इस लिए वर्तमान में व्यक्तित्व को समझने के लिए वंशानुक्रम से संबंधित अवधारणाओं एवं पर्यावरणीय कारकों के प्रभाव को समझने का प्रयास किया जाता है जिससे न केवल व्यक्ति के विकास बल्कि उसके व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया को भी सही ढंग से समझा जा सके।

वंशानुक्रम, मानव जीवन सम्भव बनाता है तथा उनमें संवेग, तर्क शक्ति, बात-चीत करने की शक्ति, बुद्धि, विकासात्मक गुण, आन्तरिक शक्ति तथा कार्यात्मक क्षमता का समावेश करता है। व्यक्ति जिन गुणों एवं विशेषताओं को अपने वंश से प्राप्त करता है वे गुण एवं विशेषतायें वंशानुक्रम विशेषतायें होती हैं।

रूथ वेनेडिक्ट के अनुसार **वंशानुक्रम का अर्थ माता-पिता से उनकी सन्तानों में विविध गुणों का संचरण है।**

फेयरचाइल्ड के अनुसार **वंशानुक्रम का अर्थ माता-पिता से उनकी सन्तानों में शारीरिक (जन्मजात मनोवैज्ञानिक सहित) गुणों का संचरण है।**

जीव रचना

बालक में माता-पिता से उनके गुणों का संचरण होता है। इसकों समझने के लिए जीव रचना को समझना आवश्यक है। व्यक्ति का शरीर अनेक कोष्ठों (Cells) से बना है। ये कोष्ठ (Cells) शरीर के प्रत्येक अंग में पाये जाते हैं और शरीर को क्रियाशील बनाते हैं। भ्रूण (Embryo) की रचना युक्त (Zygote) से होती है। युक्त (Zygote) पुरुष के शुक्राणु (Sperm) तथा स्त्री के अण्ड (Ovum) के मिलने से बनता है। पुरुष स्त्री के लैंगिक समागम से पुरुष का शुक्र (Sperm) गर्भाशय में पहुंचता है और स्त्री का अण्ड (Ovum) भी गर्भाशय नाल (Fallopian Tube) द्वारा गर्भाशय में आता है और दोनों का मिलाप होता है जिसके परिणाम स्वरूप निषेचन क्रिया (Fertilization) सम्भव होता है और भ्रूण का निर्माण होता है। शुक्र तथा अण्ड दोनों में विशेष गुण होते हैं अतः वे भ्रूण में आ जाते हैं। गर्भ पूरा होने पर बच्चे का जन्म होता है।

पुरुष में शुक्राणु तथा स्त्री में अण्ड की उत्पत्ति जनन ग्रन्थि से होती है। प्रत्येक मासिक धर्म में डिम्बग्रन्थि से एक-एक डिम्ब ग्रन्थि तैयार होती है। यह डिम्ब ग्रन्थि से डिम्ब प्रणाली (Oviduct)) में आ जाता है। इस प्रक्रिया को (Ovulation) कहते हैं। यद्यपि प्रत्येक स्त्री-पुरुष संसर्ग में अनेकों शुक्राणु बाहर आकर डिम्ब से मिलते हैं परन्तु उनमें केवल एक ही डिम्ब प्रणाली में उपस्थित डिम्ब से मिलता है तभी नया जीवन प्रारम्भ होता है। इस निषेचित अण्ड (Fertilized Ovum) में 46 क्रोमोसोम्स होते हैं जो आधे माता तथा आधे पिता के होते हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों के डिम्ब तथा शुक्राणु में 23-23 क्रोमोसोम्स होते हैं तथा प्रत्येक क्रोमोसोम में 40-100 तक जीन्स (Genes) होते हैं। जीन्स ही माता-पिता के गुणों को बालक में ले जाते हैं। बालक का रंग, रूप, लम्बाई, चैड़ाई, बनावट, आदि इसी आधार से निश्चित होती है। जब शुक्राणु अण्डाणु से मिलता है, तो इससे गर्भधारण होता है। गर्भधारण के समय शुक्राणु के 23 गुणसूत्र अण्डाणु के 23 गुणसूत्र से मिलते हैं और इस तरह से गुणसूत्र की कुल संख्या 46 अर्थात 23 जोड़ा हो जाता है। गुणसूत्र का आकार धागे के समान लम्बा होता है और प्रत्येक गुणसूत्र में लगभग 1000 जीन्स पाये जाते हैं, जिसमें आनुवंशिक गुण संचित होते हैं। माता-पिता जो अपने माता-पिता से आनुवंशिक गुण प्राप्त करते हैं, अपने बच्चों को इन्हीं जीन्स के माध्यम से इन गुणों को तथा कुछ अपने व्यक्तित्व के गुणों को देते हैं। इस तरह से स्पष्ट है आनुवंशिकता से तात्पर्य शारीरिक एवं मानसिक गुणों के संचरण से होता है जो बच्चों में जीन्स (Genes) के माध्यम से प्रवेश करता है।

आनुवांशिकी के नियम

आनुवांशिकी के तीन मुख्य नियम माने जाते हैं:

1. समान समान को जन्म देता है
2. भिन्नता का नियम
3. प्रत्ययागमन

आनुवांशिकी का प्रथम नियम है कि अपने ही अनुरूप एवं समान जीव का विकास होता है। वे ही विशेषतायें होती हैं जो माता-पिता में होती है, साथ ही साथ दूसरा नियम यह है कि सन्तान पूर्णतया माता-पिता के समान नहीं होती है, उसके शारीरिक बनावट में भिन्नता पाई जाती है। इसका कारण माता-पिता के जीन्स बालक में अलग-अलग स्थान ग्रहण करते हैं, अतः भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। माता-पिता की संतानों में भी भिन्नता होती है, इसका कारण प्रमुख और गौण जीन्स के गुण होते है। तीसरा नियम यह है कि प्रतिभाशाली माता-पिता की सन्तान प्रतिभाशाली तथा निम्नकोटि के माता-पिता की सन्तान कम निम्नकोटि की होती है। माता-पिता जो प्रतिभाशाली होते हैं उनके माता-पिता के बीजकोष उन्हे प्रतिभाशाली बनाते हैं। जब उनके बीजकोषों का समागम होता है तो

बुद्धिमान बालक का जन्म होता है। परन्तु सदैव माता-पिता अथवा दादा-दादी प्रतिभावान नहीं हुआ करते हैं। अतः जब पितृक प्रतिभावान कम प्रतिभावान से मिलते हैं तो बालक में गुण निम्नकोटि के उत्पन्न होते हैं।

आनुवांशिकी का व्यक्तित्व पर प्रभाव

व्यक्तित्व की निम्नलिखित विशेषतायें वंशानुक्रम द्वारा प्रभावित होती हैं:

शरीर रचना

शरीर का आकार, कद, त्वचा, बालों तथा नेत्रों का रंग, लम्बाई, गठन इत्यादि वंशानुक्रम से प्रभावित होते हैं।

शारीरिक

शरीर का आकार: 1 लम्बाई 2. भार 3. मोटाई 4. गठन
रंग: 1. त्वचा का रंग 2. बालों का रंग 3. आंखों की पलकों का रंग
बनावट: 1. शरीर की बनावट 2. मुंह की बनावट 3. आंखों की बनावट 4. सर की बनावट
असामान्यता: 1. शारीरिक दोष 2. मानसिक दोष 3. रोग जैसे रतौंधी, मनोविदलाता, कोढ़ आदि
ध्वनि: 1. तीव्र 2. मध्यम

क्रियात्मक क्षमता

शारीरिक बल, रूधिर वर्गीकरण, प्रजनन, रोगों के प्रति संवेदनशीलता आदि क्रियात्मक लक्षण होते हैं जो वंशानुक्रम से प्रभावित होते हैं।

क्रियात्मक

बल: 1. शारीरिक बल 2. मानसिक बल 3. आत्म बल 4. लैंगिकता
रूधिर: 1. रक्त समूह
प्रजनन क्षमता: 1. कामेक्षा 2. सन्तानोत्पत्ति की शक्ति 3. बालक होने का अन्तराल
रोगों प्रति: 1. शरीर की नाजुकता 2. सहनशीलता

मानसिक विशेषतायें

बुद्धि, मानसिकता, मूर्खता, चतुराई, वैज्ञानिक तथा साहित्यिक योग्यता आदि लक्षणों पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है।

मानसिक
बुद्धि: 1. अत्युत्कृष्ठ 2. उत्कृष्ट 3. सामान्य से ऊपर 4. सामान्य से नीचे 5. मूर्ख 6. मूढ़ 7. जड़
भावना: 1. आशा 2. निराशा 3. चिडचिड़ापन 4. अस्थिरता
संवेग: 1. क्रोध 2. झगड़ालूपन 3. सहानुभूति 4. प्रेम 5. भय 6. चिंता 7. हंसी
कार्यात्मक स्तर: 1. अति सक्रियता 2. कम सक्रियता 3. निष्क्रियता
अनुकूलन: 1. सामान्य अनुकूलन 2. मंद अनुकूलन 3. कठिनाइयाँ
संवेदनशीलता: 1. अति 2. कम

समस्या समाधान: 1. प्रत्यक्षीकरण 2. कल्पना 3. अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता 4. तर्क शक्ति

आनुवांशिकी का व्यक्तित्व पर प्रभाव कहां तक महत्वपूर्ण होता है इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है परन्तु यह निश्चित है कि बिना वंशानुक्रम के बालक में गुणों का विकास नहीं हो सकता है। शारीरिक विशेषतायें बुद्धि, स्वभाव आदि वंशानुक्रम से प्राप्त होती है। फ्रैन्सिस गाल्टन (Fransis Galton) ने वंशानुक्रम के प्रभाव को अपनी पुस्तक हेरिडिटरी जीनियस (Hereditary Genius) में दर्शाया है। उनका विचार था कि जब तक योग्य पुरुष योग्य स्त्री से विवाह करता रहेगा तब तक बुद्धिमान संतान उत्पन्न होगी। गाल्टन ने 30 कलाकारों के परिवारों का अध्ययन किया और पाया कि इन परिवारों के 64 प्रतिशत बालक कलाकार थे जबकि सामान्य जनसंख्या में केवल 1 प्रतिशत ही कलाकार पाये गये।

कार्ल पियर्सन ने भी वंशानुक्रम के प्रभाव पर अनेक प्रयोग किये। उन्होने इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि माता-पिता की शारीरिक विशेषताओं का प्रभाव बच्चे पर अवश्य पड़ता है। उन्होंने बताया कि वंशानुक्रम का प्रभाव पर्यावरण से 7 गुना अधिक होता है।

उपरोक्त अध्ययनों से पता चलता है कि व्यक्ति की उत्पत्ति एवं उसकी मानसिक एवं शारीरिक विशेषताओं के निर्धारण में वंशानुक्रम का पूरा-पूरा हाथ रहता है परन्तु यह बात शत प्रतिशत सत्य नहीं है। जिस प्रकार पेड़-पौधे बिना उचित मिट्टी एवं जलवायु के जीवित नहीं रह सकते हैं उसी प्रकार उचित पर्यावरण के बिना व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं है।

प्रायः मूल गुणों को बालक अपने माता-पिता से, वंशानुक्रम द्वारा ग्रहण करता है। फिर भी कुछ विशेष अन्तर बालकों में दृष्टिगोचर होते हैं, ये अन्तर उनके **जनन सम्बन्धी निर्धारकों** के कारण आ जाते हैं। जुडवाँ बच्चों पर हुए अनेक अध्ययनों के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि हो चुकी है कि इन बच्चों के वंशानुक्रम द्वारा ग्रहण किये गये गुणों में मौलिक समानता पायी जाती है। गर्भस्थ शिशु वंशानुक्रम के अतिरिक्त माँ के आहार, भावनाओं, परिस्थितियों आदि से भी प्रभावित होता है।

1.6.2 सामाजिक निर्धारक (Social Factors)

जैवकीय निर्धारक, जहाँ बालक के मूल पिण्ड या मौलिक संरचना की नींव का निर्माण करते हैं, वही वातावरण में पाये जाने वाले अन्य निर्धारक उसकी नींव पर आगे कि संरचना को बनाने का कार्य करते हैं अर्थात् व्यक्तित्व निर्माण एवं निर्धारण में वंशानुक्रम तथा जैविकीय कारकों से कहीं अधिक प्रभावशाली सामाजिक निर्धारक होते हैं। ये निर्धारक बालक में उपस्थित समस्त शारीरिक मानसिक तथा सांवेगिक क्षमताओं को एक विकासात्मक सामाजिक परिस्थितियाँ प्रदान करते ही हैं, जो उसमें एक अच्छे व्यक्तित्व के अनेक गुणों को सम्मलित होने की सम्भावनाओं को उत्पन्न करती हैं या उसके व्यक्तित्व के विकास को नकारात्मक दिशा की ओर ले जाती हैं। इस प्रकार ***सामाजिक निर्धारक, वे वातावरणीय निर्धारक होते हैं जो बालक को उसके जन्म से प्राप्त मौलिक व्यक्तित्व में परिवर्तन हेतु उत्तरदायी होते हैं।*** यहाँ पर हम प्रमुख रूप से दो सामाजिक निर्धारकों के बारे में अध्ययन करेंगे:-

अ. पारिवारिक निर्धारक (Family Factors)

- **माता-पिता एवं बालक का सम्बन्ध (Relationship between Child and Parents):**

  जीवन के प्रारम्भिक काल में बच्चे के लिए माँ का महत्व अत्यधिक होता है। वास्तव में माँ ही है जो कि बच्चे के सामाजिक विकास की आधारशिला रखती है। हार्लो, (1966) के सरोगेट्ड मदर्स के

प्रायोगिक अध्ययनों से पता चला है कि यदि छोटे बच्चों को माँ से पृथक कर दिया जाय तो ऐसे बच्चे असमायोजित व्यवहार का प्रदर्शन करने लगते हैं। इस प्रकार बालक के संवेगात्मक एवं मानसिक विकास का सम्बन्ध माँ के साथ की जाने वाली अन्तःक्रियाओं पर निर्भर करता है।

माँ की तरह, पिता का भी प्रभाव बालक के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। अध्ययनों से ज्ञात होता है कि पिता की अनुपस्थिति का बालक के विकास पर नकारात्मक नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में मिशेल (1958), ग्रीन स्टीन (1966) आदि के प्रयोग महत्वपूर्ण हैं।

- **पारिवारिक वातावरण (Family Environment)**

केवल माता-पिता ही बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हो , ऐसा नहीं है। परिवार की परिधि में आने वाले अन्य व्यक्ति भी बच्चे के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालते हैं। इनमें परिवार के समस्त व्यक्तियों में पारस्परिक ताल-मेल तथा स्नेहपूर्ण व्यवहार बालक की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होते हैं। यदि पारिवारिक वातावरण संतुलित हो तथा बालक को उचित देखभाल मिलता है तो ऐसे वातावरण में निश्चय ही बालक का व्यक्तित्व सकारात्मक दिशा में विकासित होगा। किन्तु इसके विपरीत यदि पारिवारिक वातावरण में विभिन्न प्रकार की बुराइयां जैसे-ईष्र्या, लड़ाई-झगड़ा,कलह, द्वेष,अनुशासनहीनता तथा घृणा है तो बालक के व्यक्तित्व का विकास नकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर होगा।

- **परिवार का आकार(Size of the Family):**

परिवार का आकार भी बालक के व्यक्तित्व का निर्धारण करता है। ऐसा देखा गया है कि बड़े परिवार या परिवार में अधिक भाई-बहिनों की संख्या बालक के सामाजिक भाषा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। इन परिस्थितियों में बालक में भाषा विकास तथा अन्य सामाजिक विकासों की प्रक्रिया तीव्र होती है। क्योंकि बालक अपने बड़े भाई-बहनों से परोक्ष या अपरोक्ष रूप में समस्त सामाजिक व्यवहारों को सरलतापूर्वक सीख लेता है। किन्तु अधिक भाई-बहनों की संख्या से, परिवार में अपेक्षाकृत सुविधाओं का विभाजन हो जाता है। किन्तु बालक अत्यधिक समायोजन एवं धैर्य, सहनशीलता आदि गुणों से युक्त पाये जाते हैं किन्तु जो बालक अपने परिवार में अकेले होते हैं, मानसिक विकास तो उनका भी उन्नत किस्म का होता है किन्तु वे प्रायः हठी, जिद्दी एवं अनुशासन रहित हो जाते हैं। इसका कारण माता-पिता एवं पारिवारिक व्यक्तियों की अतिरिक्त स्नेह भावना होती है।

- **परिवार का आर्थिक स्तर (Economic Status of the Family):**

जो बच्चे निम्न आर्थिक स्तर वाले परिवारों से आते हैं उनमें प्रायः आत्म-विश्वास में कमी, हीन एवं असुरक्षा की भावना, संकोची आदि गुण पाये जाते हैं। ये गुण व्यक्तित्व को नकारात्मक स्थिति में प्रभावित करते हैं। ऐसे बच्चों का शारीरिक स्वास्थ्य भी भोजन सम्बन्ध उपयुक्त पोषण के अभाव में निम्न स्तर का रहता है। अतः अपेक्षाकृत शारीरिक विकास भी अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे घरों में वातावरण भी बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। क्योंकि प्रायः घर का वातावरण कलहयुक्त, तनाव एवं चिन्ताओं से युक्त होता है।

आ, विद्यालयी निर्धारक (School Factors)

विद्यालय वह स्थान होता है, जहाँ बालक घर के वातावरण में विकसित हुए एक निश्चित व्यक्तित्व को लेकर प्रवेश करता है। इस व्यक्तित्व पर अग्रिम कार्य विद्यालयी परिस्थितियां करती हैं जहाँ पर बालक अपने अध्यापकों से सम्बन्ध स्थापित करता है, अपने मित्रों का चुनाव करता है तथा उनके साथ सामाजिक आदान-

प्रदान की प्रक्रियाएं सीखता है, विद्यालय के अन्दर सम्पन्न होने वाली विभिन्न पाठ्य सहगामी प्रक्रियाओं में भाग लेकर विभिन्न प्रकार के सामाजिक प्रशिक्षण प्राप्त करता है तथा अपने अध्यापकों के साथ अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के आधार पर उत्कृष्ट प्रेमयुक्त सम्बन्धों का निर्वाह करता है। संक्षेप में विद्यालय एक छोटा लघु समाज का रूप होता है, जहाँ किसी समाज के समस्त वर्गों से बच्चे एकत्रित होते हैं और इसी समूह में वास्तव में बालक के व्यक्तित्व का उत्कृष्ट विकास होता है। ***ऐसे सभी निर्धारक जो बालक के विद्यालय में पहुँचने के बाद अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं तथा विद्यालयी परिस्थितियों के उद्दीपक, निर्धारक के रूप में कार्यरत रहकर बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं, हम विद्यालय सम्बन्धी निर्धारक कहते हैं।***कुछ प्रमुख विद्यालयी निर्धारक निम्नांकित हैं:

- स्कूल का वातावरण |
- स्कूल के मित्र |
- स्कूल में होने वाले क्रियाकलाप |
- बालक-अध्यापक सम्बन्ध |

1.6.3 सांस्कृतिक निर्धारक (Cultural Factors)

बालक अपने सामाजिक विकास के दौरान उन्हीं क्रियाओं को सीखता है जो सामाजिक रूप से मान्य होती हैं। सामाजिक मान्यताओं एवं नियमों को बालक क्रमिक रूप से स्वतः अपनाता चलता है किन्तु सामाजिक विकास की इन मान्यताओं का संचालन संस्कृति के अनुरूप होता है। भारत में ही इतनी संस्कृतियाँ हैं कि भारतीय संस्कृति के अन्दर अनेक संस्कृतियों के दर्शन होते हैं। प्रत्येक प्रदेश के लोग या बच्चे इन्हीं के अनुरूप शारीरिक-मानसिक-सामाजिक विकास क्रमों में विभिन्नता रखते हैं। अपने सामाजिक रीति-रिवाजों, उत्तरदायित्वों, सम्बन्धों, उत्सवों, धार्मिक क्रिया-कलापों को पूरा करते हैं। संस्कृति सम्पूर्ण देश, जाति, धर्म आदि को भी प्रभावित करती है। मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, संस्कृति रहने एवं विचार करने के ढंगों में, दैनिक क्रियाओं में, साहित्य, धर्म, मनोरंजन में, सुखों व मौज में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।

1.6.4 पर्यावरणीय निर्धारक (Environmental Factors)

पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है- परि$आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है ढके हुये। अर्थात् प्राणी को छोड़कर जो कुछ उसके चारों ओर है वह उसके पर्यावरण में सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए गर्भावस्था में गर्भ ही बालक के लिए पर्यावरण होता है। जन्म लेने पर परिवार तथा भौगोंलिक दशायें पर्यावरण में आती हैं। जब वह बाहर जाने लगता है तो उसके पर्यावरण में पड़ोस, खेल समूह तथा अन्य परिस्थितियां सम्मिलित हो जाती हैं। इसके बाद विद्यालय एंव अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का प्रभाव पड़ता है।

परिभाषा

जिसवर्ट, पी.: ***पर्यावरण उस सबको कहते हैं जो किसी एक वस्तु को चारों ओर से घेरता है तथा इस पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है।***

इलियट, टी. डी.: ***चेतन पदार्थ की किसी ईकाई के प्रभावकारी उद्दीपन तथा अन्तःक्रिया के क्षेत्र को पर्यावरण कहते है।***

पर्यावरण के अन्तर्गत नैसर्गिक दशायें, संस्थायें, धर्म, व्यवसाय, भौतिक सुविधायें, आर्थिक स्थिति, अन्तःक्रिया के तरीके तथा मूल्य व्यवस्था को सम्मिलित करते हैं।

पर्यावरण के प्रकार ;

बाह्य पर्यावरण (External Environment)

आन्तरिक पर्यावरण (Internal Environment)

पर्यावरण का व्यक्तित्व पर प्रभाव

भौतिक तथा जैविकीय पर्यावरण (Physical and biological environment)

खान-पान पंजाव में गेहूं, बंगाल में चावल, टुण्ड्रा में कच्चा मांस वस्त्र शीत प्रदेश में बाल दार खाल, कांगों बेसिन में नंगे, शीतोष्ण में सूती तथा ऊनी।

मकान पर्वत पर लकड़ी के मकान तथा छत ढालू, मैदानों मे ईंट तथा सीमेन्ट व मिट्टी के मकान।

जनसंख्या मैदानी भागों में घनी जनसंख्या, पहाड़ी भागों में कम जनसंख्या।

प्रजाति शरीर की बनावट, रंग डील-डौल

यातायात के साधन मैदानों में अधिक रेल तथा साधन पहाड़ों पर कम साधन

स्वास्थ्यसमशीतोष्ण सबसे अच्छी स्थिति

मानव व्यवहार गर्मियों में आत्म हत्यायें अधिक

आर्थिक जीवन कृषि उपजाऊ प्रदेश में, कारखानें खनिज प्रदेश में

कला तथा साहित्य पर्वतीय कला में पर्ततों का वर्णन, मैदानी भाग में शस्य-श्यामला हरी भरी धरती का वर्ण

सामाजिक पर्यावरण (Social Environment)

समाजार्थिक स्थिति (Socio-Economic Status)

उच्च तथा मध्य वर्गीय समाजीकरण मंद, माता-पिता द्वारा अधिक देख-भाल, अच्छा बनने को प्रोत्साहन, वैयक्तिक तथा सामूहिक प्रतिमानों को सीखने पर जोर, प्रतिस्पर्धा, अच्छा बनने की चिन्ता।

निम्न वर्गीय समाजीकरण तेज, माता-पिता की कम देख-रेख, जीवन लक्ष्य अपने जैसा, उपलब्धि का प्रोत्साहन नहीं, संख्यात्मक उपाय, पे्रम की कमी न होने के कारण चिन्ता की कमी।

पालन पोषण के तरीके (Parenting Styles):

अति लाड़ प्यार शर्मीला, आत्म निर्भरता की कमी, आत्म मूल्यांकन की कमी।

अति बन्धन स्वार्थी, माता-पिता के प्रति विरोधी, शक्ति के विरोधी

अवास्तविक मांगे आत्म अवमूल्यन, कठोर चेतना विकास, मानसिक संघर्ष।

अनुशासन की कमी समाज विरोधी व्यवहार

कठोर अनुशासन भय, घृणा, मित्र भाव की कमी

अवांछनीय दोषपूर्ण मूल्य रचना, अवास्तविक

विद्यालय का वातावरण (School Environment)

अध्यापकों का स्वभाव (Teachers Behaviour)

1. निरंकुश: हीनभावना, भावनाओं के स्पष्टीकरण में बाधा

2. अति सीधे: अनुशासन हीनता

विद्यालय का वातावरण (School Environment)

1. प्रतिस्पर्धात्मक (Competitive): मध्यम वर्ग के बालकों के लिए भग्नाषा का अनुभव, निरन्तर तनाव, उच्च एवं हीन भावना का विकास, आत्म केन्द्रित

2. सहयोगिक (Co-operative) साथ-साथ कार्य, सभी प्रयत्नों में सहयोग, सफलता व असफलता में सामूहिक भागीदारी, उद्देश्य, केन्द्रित आत्म केन्द्रित, सामूहिक प्रयास, समूह से आत्मीकरण

पुरस्कार तथा दण्ड

1. पुरस्कार: (Reward) बालक की प्रशंसा सभी के सामने करने से शैक्षिक उपलब्धि

2. दण्ड (Punishment) एकान्त में दण्ड देने पर सबसे अधिक उपलब्धि सभी के सामने दण्ड देने का अत्यन्त हानिकारक प्रभाव

धार्मिक एवं नैतिक वातावरण (Religious and Moral Environment)

धर्म (Religion)

आस्थावान: नैतिक दृष्टिकोण, प्रेम सद्भावना, सहयोग, जीवन में शांति, आत्म बल, असामाजिक कार्यो के करने में भय, परम्परागत व्यवहार, आत्म हत्या की भावना तथा तनाव की कमी

धर्म में कम या आविश्वास: नैतिक दृष्टिकोण का अभाव, सद्भावना की कमी,

सदैव तनाव, आन्तरिक शान्ति की कमी, अनैतिक कार्य करने में डर नहीं, आत्महत्या की प्रवृत्ति।

उपर्लिखित स्थितियों के अतिरिक्त व्यवसाय की कार्य दशायें, उन्नति के अवसर, शिक्षा, वैयक्तिक गुण का महत्व आदि का प्रभाव भी पड़ता है।

1.6.5 वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व

गाल्टन के अध्ययन के साथ ही इस बात विवाद उत्पन्न हो गया कि वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों में कौन अधिक महत्वपूर्ण है। गाल्टन ने अपने अध्ययन में पाया कि किस प्रकार कम संख्या के अंग्रेजी परिवार इंग्लैण्ड में महत्वपूर्ण व्यक्तियों को उत्पन्न करते हैं। उन्होंने ज्ञात किया कि 188 प्रमुख व्यक्तियों के 535 प्रमुख सम्बन्धी थे जबकि 977 सामान्य व्यक्तियों के केवल 4 विशिष्ट सम्बन्धी थे। परन्तु इस अध्ययन से यह पता नहीं चलता है कि जीन्स के प्रभाव के कारण विशिष्ट व्यक्ति उत्पन्न हुये अथवा पर्यावरण के कारण विशिष्ट बने। इस बात को गाल्टन ने स्वयं स्वीकार किया और कहा कि अध्ययन केवल सुझाव प्रस्तुत करता है कोई सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित करता है इस सन्दर्भ में **हेव तथा में हेव तथा अनास्टासी** का कहना है कि वंशानुक्रम तथा पर्यावरण

दोनों में कौन कारक व्यवहार को विकसित करने के लिए उत्तरदायी है अनौचित्य एवं अतर्क-संगत है क्योंकि बिना वंशानुक्रम के अवयव का विकास हो ही नहीं सकता तथा बिना उपयुक्त वातावरण के अवयव किसी प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करने के लिए जीवित नहीं रह सकता। अतः दोनों को पृथक-पृथक देखा नहीं जा सकता है।

a. वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों संरचनात्मक विशेषताओं को उत्पन्न करते हैं -

कुछ ऐसी रचनात्मक विशेषतायें हैं जिन पर वंशानुक्रम का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जैसे लिंग, आँखों का रंग, रक्त प्रकार आदि। इन संरचनात्मक विशेषताओं को पर्यावरण की आवश्यकता बहुत कम होती है। दूसरी विशेषतायें जैसे शरीर का आकार एक ही वंशानुक्रम में भिन्न-भिन्न होता है क्योंकि उस पर पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, जलवायु आदि का प्रभाव पड़ता है।

b. गर्भधारण वंशानुक्रम एवं पर्यावरण पर निर्भर है -

जिस समय शिशु उत्पन्न होता है उस समय भी वह किसी न किसी पर्यावरण से घिरा होता है। उसके जन्म का कारण भी पर्यावरण होता है जिसमें स्त्री तथा पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध सम्भव होता है। अनुकूल पर्यावरण होने पर ही गर्भ स्थापन हो पाता है। जब तक बालक गर्भ में रहता है तब तक उसका पर्यावरण गर्भ होता है और माता पर पड़ने वाले प्रभाव गर्भ द्वारा बालक पर पड़ते हैं। गर्भ की दशायें भ्रूण पर अपना प्रभाव डालती हैं। माता में पोषण की कमी, औषधि प्रभाव, रोग, सांवेगिक तनाव तथा मानसिक अस्त-व्यस्तता बालक में दोष उत्पन्न कर देती है। रोथचाइल्ड (Rothschild) ने अपने अध्ययन में पाया कि जो बालक समय से पूर्व पैदा होते हैं, उनकी अधिकांश मातायें सांवेगिक तनाव से पीड़ित होती हैं। मेण्डल (Mendal) भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि जो मातायें गर्भवती होने की अवधि में चिंचित तथा सांवेगिक तनाव से ग्रस्त रहती हैं वे अपरिपक्व बालक को जन्म देती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि गर्भ का पर्यावरण बालक के व्यक्तित्व पर अपना प्रभाव डालता है।

c. संरचनात्मक तथा व्यवहारिक विशेषताओं के विकास पर वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रदर्शित होता है -

अनेक विद्वानों ने यह जानने का प्रयास किया कि गामक विकास (उठना, बैठना, चलना आदि) पर विभिन्न पर्यावरणीय दशाओं का कितना प्रभाव पड़ता है तथा वंशानुक्रम शक्तियों का कितना प्रभाव होता है परन्तु कोई सफल उत्तर न प्राप्त हो सका।

गेसेल (Gessel), थाम्पसन (Thompson) तथा स्ट्रेयर (Streyer)) आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला कि विकास की गति तथा समय पर पर्यावरणीय दशाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इन अध्ययनों में जुड़वा बच्चों पर नियन्त्रण का तरीका उपयोग किया गया। एक को प्रशिक्षण दिया गया था, दूसरे को प्रशिक्षण नहीं दिया गया। प्रशिक्षण के होने पर भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि पर्यावरण का प्रभाव नहीं होता है क्योंकि यदि सामाजिक पर्यावरण में बालक न रहे तो उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास सम्भव नहीं है ऐसा अनेक परीक्षणों ने सिद्ध किया है।

d. बुद्धि पर वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों ही प्रभावकारी हैं -

न्यूमैन (Newman), फ्रीमैन (Freeman), वर्ट (Vert) तथा बान्डेनवर्ग (Wandenberg) आदि ने अपने अध्ययन में सिद्ध कर दिया कि साथ-साथ पालन पोषण हुये बालकों की बुद्धि में काफी समानता होती हैं अलग-अलग पालित जुड़वा बच्चों में असमानता देखी गयी है।

e. मनोवैज्ञानिक गुणों के विकास में वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों सक्रिय सहयोग करते हैं -

मनोवैज्ञानिक गुणों (आत्मविश्वास, प्रभावशीलता, प्रधानता, क्रियात्मकता, क्रोध आकाँक्षा का स्तर, विषाद) पर वंशानुक्रम का अधिक प्रभाव होता है। बेन्डनबर्ग (Bendenberg) फ्रीडमैन (Freed man

तथा गोटेसमैन (Gotes man,) ने अपने अध्ययनों से वंशानुक्रम को मनोवैज्ञानिक गुणों के विकास में महत्वपूर्ण सिद्ध किया है। यद्यपि अध्ययनों में काफी सीमिततायें हैं परन्तु निष्कर्षो से पता चलता है कि बहिमुर्खी (Extrovert) तथा अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के विकास पर वंशानुक्रम का अधिकाधिक प्रभाव पड़ता है। (Introvert) आइसेन्क ने यह सिद्ध किया है। लेकिन ये गुण तब तक विकसित नहीं हो सकते जब तक अनुकूल पर्यावरण न प्राप्त हों।

f. समायोजन पर पर्यावरण का प्रभाव अधिक होता है वंशानुक्रम का कम -

बालकों के विकास तथा समायोजन पर पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। रोडमैन (त्वकउंद) के विचार से व्यक्ति का सामाजिक वर्ग उसके जीवन को काफी सीमा तक प्रभावित करता है। जिनका वर्ग निम्न होता है उनमें शारीरिक हीनता होती है, जीवन अवस्था कम होती है,न्यायालयों में कम न्याय मिलता है, इच्छाओं तथा प्रेरणाओं का स्तर निम्न होता है।

बालक को यदि आवश्यकता से अधिक प्यार दिया जाता है तो वह समायोजन में कठिनाई अनुभव करता है तथा जीवन कष्टमय होता है।

g. सामाजिक गुणों का विकास पर्यावरण पर अधिक निर्भर होता है -

सामाजिक गुणों मित्रभाव, सहयोग, सहानुभूति, व्यवहार के ढंग) पर पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार का पर्यावरण होता है उसी प्रकार के गुण उत्पन्न होते हैं।

h. **मानसिक एवं व्यवहारिक विकृतियों पर पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है -**

मानसिक रोगों का कारण वंशानुक्रम न होकर पर्यावरण होता है। केवल कुछ ही रोगों (ैबीप्रवचीतमदपं) में वंशानुक्रम महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यवहारिक विकृतियों (स्वतः प्रेम, उग्रता, अवज्ञा, ध्वन्सात्मकता, चोरी करना, झूठ बोलना, अपराध करना भगेडूपन) पर पर्यावरण का प्रभाव अधिक होता है।

उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है कि वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। जीवन की प्रत्येक घटना के लिए समान उत्तरदायी है। उनमें से न ही किसी को दूर कर सकते हैं न ही प्रथक कर सकते हैं। वास्तव में मानव के विकास में पर्यावरण तथा वंशानुक्रम दोनों की अलग-अलग कल्पना नहीं की जा सकती है। जिस वृक्ष का बीज होता है उससे वही वृक्ष उत्पन्न होता है। बीज के विकास के लिए पर्यावरण की आवश्यकता होती है। मनुष्य क्या कर सकता है, यह वंशानुक्रम द्वारा निश्चित है वस्तुतः क्या करता है यह उसके पर्यावरण द्वारा निश्चित होता है। वंशानुक्रम केवल क्षमता प्रदान करता है। इस क्षमता के विकास का अवसर पर्यावरण देता है। इन दोनों में कौन अधिक महत्वपूर्ण है इस प्रकार का प्रश्न करना ऐसी ही बात करना है कि मनुष्य के लिए भोजन अधिक महत्वपूर्ण है या सुरक्षा अथवा वायु। वास्तव में दोनों ही समान महत्वपूर्ण हैं।

1.7 सारांश (Summary)

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व, उसकी अपनी संस्कृति एवं पर्यावरण के कारण विशिष्ट होता है। इसी कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व एक-दूसरे से भिन्न होता है। किन्तु ऐसा भी देखा गया है कि भिन्नता के साथ-साथ व्यक्तियों में कुछ

समानताएं भी पायी जाती हैं। जिसके पीछे व्यक्तित्व निर्माण की कुछ सामान्य अवस्थाओं एवं तत्वों का योगदान होता है। इन तत्वों की जानकारी के आधार पर व्यक्तित्व निर्माण के विषय में जाना जा सकता है। व्यक्तित्व के निर्धारकों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मानव व्यक्तित्व का निर्माण किसी एक या एक मात्र निर्धारक के कारण नहीं होता हैं बल्कि जैविक के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोदैहिक परिस्थितियों के कारण भी व्यक्तित्व में भिन्नतायें पायी जाती हैं। इस लिए किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की जानकारी उसके शारीरिक के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के समग्र अध्ययन से ही सम्भव हो सकता है।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for practice)

1. व्यक्तित्व की अवधारणा बताइए।
2. व्यकित्व से आप क्या समझते हैं? इसके अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
3. व्यक्तित्व की परिभाषाओं का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
4. व्यक्तित्व के निर्धारकों का संक्षिप्त विवरण दीजिये |
5. व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम तथा पर्यावरण के सापेक्ष महत्व का उल्लेख कीजिये |
6. आनुवंशिकता का किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है समझाइए |

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

- आलपोर्ट, जी0डब्ल्यू0 पैटर्न एण्ड ग्रोथ इन पर्सनाल्टी, राइन हार्ट एण्ड विनस्टन-इंक, न्यूयार्क, 1961.
- आलपोर्ट, जी0 पर्सनाल्टी-साइकोलोजिकल-इण्टरप्रेटेशन, हेनरी हाल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1901.
- मिश्र पी.डी., बीना मिश्रा, असामान्य व्यवहार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1882.
- ह्वाइट डब्लू0ए0, दि लैग्वेज आफ सिज्योफ्रिनिया, आरकाई आफ न्यूरोलाजी, शिकागो, 1926.
- ह्वाइट, आर0डब्लू0, दि अबनार्मल पर्सनाल्टी, दि रोनाल्ड प्रेस कम्पनी, न्यूयार्क, 1964
- सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, 2001
- सुलेमान, मुहम्मद, मुहम्मद तौबाब, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, 2004.
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981.
- Friedlander, W.A., Concept and Methods of Social Work.

इकाई-2

व्यक्तित्व विकास की अवस्थायें

Stages of Development

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 व्यक्तित्व विकास की अवस्थायें

2.3 सारांश

2.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.5 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप यह अपेक्षित है कि आप

- व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कर सकेंगे।
- विकास के विभिन्न पहलुओं को बता सकेंगे

2.1 प्रस्तावना

मानव व्यक्तित्व का विकास एक सतत् प्रक्रिया का परिणाम है। यह प्रक्रिया व्यक्ति के जन्म लेने के कुछ समय पश्चात् से ही प्रारम्भ हो जाती है। हालांकि बहुत से समाज-मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया को व्यक्ति के जन्म के पूर्व से ही प्रारम्भ माना है। व्यक्तित्व निर्माण की यह प्रक्रिया जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में सतत् रूप से चलती रहती है।

प्रस्तुत इकाई में व्यक्तित्व विकास की अनेक अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। व्यक्तित्व विकास को पांच प्रमुख अवस्थाओं में विभाजित किया गया है जिसमें प्रमुख है, गुदा अवस्था जो एक वर्ष से आरम्भ होकर 2 वर्ष तक चलती रहती है। इसके पश्चात् लैंगिक अवस्था जिसमें बच्चे की लिंग भिन्नता का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है तथा जननेन्द्रिय अवस्था जो 12 या 13 वर्ष की आयु पर आती है इत्यादि का वर्णन किया गया है तथा व्यक्तित्व

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्तित्व गतिकी, सामाजिक रुचि, जीवन-शैली, सृजनात्मक व्यक्तित्व तथा, जन्म क्रम के प्रभाव का भी अध्ययन किया गया है।

2.2 व्यक्तित्व विकास की अवस्थाये (Stages of Personality Development)

व्यक्तित्व का विकास गर्भधारण **(Conception)** की अवस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। गर्भधारण तथा जन्म के बीच अवस्था में सम्पूर्ण जीवन के विकास के अनुपात में सबसे अधिक तथा मेहत्वपूर्ण विकास होता है।

बालक का जन्म से पूर्व विकास (Prenatal development)

गर्भशास्त्रियों ने जन्म से पूर्व के विकास को तीन स्तरों में विभाजित किया है:

1. **रचना काल (Germinal period)**
2. **भ्रूण इम्ब्रोनिकल (Embryonic period)**
3. **फेटेल काल (Fetel period)**

अ. रचनात्मक काल

सामान्यतया पूर्वप्रसव विकास की अवधि 266 दिन मानी जाती है। यह समय गर्भधारण के पूर्व वाले मासिक धर्म से 280 दिन माना जाता है। जिस कोशिका से गर्भधारण होता है वह तुरन्त अपने को दो भागों में विभाजित कर लेती है फिर चार में ओर इसी प्रकार क्रम चलता रहता है। विकास के साथ-साथ कुछ कोशिकायें गोले के रूप में बन जाती हैं। इस पुंज में तीन परतों का क्रमिक निर्गम होता है और इन्हीं से विशिष्ट रचनाओं का जन्म होता है। बाहर की परत का सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियाँ तथा नाड़ी तंत्र से होता है। मध्य परत में अस्थि पंजर, पेशियाँ तथा रूधिर वाहिनियाँ विकसित होती हैं। अन्दर की परत से जीवन सम्बन्धी विभिन्न अंगों का विकास होता है। निषिक्त के दूसरे सप्ताह में बढ़ता हुआ भ्रूण गर्भाधान नाल द्वारा गर्भाशय में चिपक जाता है। भ्रूण का हृदय गर्भाधान के 3 सप्ताह बाद गति करने लगता है।

ब. भ्रूणकाल

पूर्व प्रसव के छठे सप्ताह से पहचानने वाले योग्य कुछ रचनाओं का विकास होने लगता है। इस आयु में भ्रूण उत्व या झिल्ली में बंद रहता है इसमें एक पदार्थ ;।उ दपवजपब सिनपकद्ध भरा रहता है जिसके द्वारा ही प्राणी विकसित होता है। 6 सप्ताह तक भ्रूण निष्क्रिय होता है। आवश्यक संग्राहक तथा प्रभाव यद्यपि उपस्थित रहते हैं परन्तु उनमें कोई सम्बन्ध नहीं होता है। तीसरे सप्ताह में न्यूराल ट्यूब का विकास होता है। एक महीने के अन्त तक भ्रूण इंच लम्बा हो जाता है। इस स्थिति में माता को पता चलता है। स्तनों में भारीपन आ जाता है, पेशाब बार-बार जाना पड़ता है। उसको सरदर्द तथा जुकाम की शिकायत हो जाती है। दूसरे महीने तक भ्रूण 1) इंच लम्बा हो जाता है। धीरे-धीरे सभी अंगों का विकास होता है।

स. फेटेल काल

इस काल का प्रारम्भ गर्भ से 8 सप्ताह से जन्म तक का होता है। इस अवधि में सभी रचनाओं का विकास हो जाता है। तीसरे महीने भ्रूण इंच लम्बा हो जाता है उसका भार 1 औंस होता है। चैथे महीने फेटेस 7 इंच तथा 4 औंस भारी हो जाता है। 5वें महीने लम्बाई 10 इंच तथा भार 10 औंस होता है। 6 महीने में शरीर के सभी अंग पूर्ण विकसित हो जाते हैं। यदि इस अवस्था में बच्चा हो जाय तो कुछ घंटे जीवित रह सकता है। सातवें महीने तक वह

15 इंच लम्बा तथा पौण्ड भारी हो जाता है। 8वें महीने तक 16 इंच लम्बा तथा 4 पौण्ड भारी होता है तथा इस समय जन्म लेने पर जीवित रहने के अवसर अधिक होते हैं। दसवें महीने के अन्त तक फेटेस 20 इंच लम्बा तथा पौड भारी हो जाता है। फेटेस काल जन्म लेते ही समाप्त हो जाता है और शिशु काल प्रारम्भ हो जाता है।

नवजात शिशु विकास (Neonatal development)

जन्म के समय नवजात शिशु का सिर उसके सिर से 1/4 भाग के लगभग होता है। लेकिन बाद में इसमें कमी आ जाती है। पैर जन्म के समय हाथों की अपेक्षा छोटे होते हैं। जन्म के समय शिशु में 270 हड्यिाँ होती हैं जो आगे चलकर बढ़ जाती हैं। 6 महीने की आयु में अस्थायी दाँत सभी निकल आते हैं जिनकी संख्या 20 होती है। 6 वर्ष के लगभग बच्चे का प्रथम स्थायी दाँत आ जाते हैं। 13-14 वर्ष की आयु में लगभग सभी दाँत निकल आते हैं। विवेक दाँत (Wisdom teeth) 20-35 वर्ष की आयु में निकलते हैं।

गामक विकास (Motor Development)

शिशुओं में सामान्यतः 3 प्रकार की गामक प्रतिक्रियायें होती हैं:

(1) अनियमित प्रतिक्रियायें

(2) विशिष्ट प्रतयुत्तर

(3) जटिल व्यवहार प्रत्युत्तर

शिशु की प्रथम दो वर्ष के गामक विकास में निम्नलिखित अवस्थायें देखी गयी हैः

- **प्रथम श्रेणी की निपुणतायें**

  बालक ठोढ़ी ऊपर उठाता है, छाती उठाता है, कदम बढ़ाता है, घुटने सीधे करता है एवं गोद में बैठता है।

- **द्वितीय श्रेणी की निपुणतायें**

  अकेला बैठता है, घुटने मारता है, सहारे खड़ा होता है। एक मिनट के लिए बिना सहारे बैठता है।

- **तृतीय श्रेणी की निपुणतायें**

  यह पेट के सहारे चलता है।

- **चतुर्थ श्रेणी की निपुणतायें**

  फर्नीचर पकड़ कर खड़ा होता है तथा रेंगता है, सहायता लेकर चलता है।

- **हस्तकौशल का विकास**

  चैबीस सप्ताह में शिशु किसी प्रकार पकड़ने लगता है तथा 28 सप्ताह में पंजों के सहारे पकड़ता है। उन्नीस सप्ताह में अगुंलियों तथा अंगूठे के सहारे पकड़ता है। धीरे-धीरे यह विशिष्टता बढ़ती जाती है।

- **गमन विकास (Bipedal Locomotion)**

  चलने की क्रिया के अन्तग्रत 4 प्रमुख स्तर हैः

  (1) पीठ के बल ऊपर उठाना।

(2) स्वतंत्र बैठना।

(3) स्वतंत्र खड़ा होना।

(4) स्वतंत्र चलना।

इस विकास की गति को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट कर सकते हैंः

	क्रिया	**अनुमानित महीने**
1.	पीठ के बल लेटे-लेटे सिर ऊपर उठाना	1.8
2.	लुढ़कन का प्रथम प्रयास	4.8
3.	लुढ़कने का आभास	5.5
4.	लुढ़कना आसान स्वतः किसी उद्देष्य को पाने के लिए	5.7
5.	खिलौने तक पहुँचना।	5.8
6.	स्वतन्त्र बैठना	6
7.	प्रत्यक्ष रूप से बैठने का प्रयत्न, पेट से ऊपर उठना	6.5
8.	पेट से बैठने की स्थिति में पहुँचने की प्रथम सफलता	7.6
9.	बैठने का अभ्यास (कठिनाई से)	7.8
10.	ठीक से बैठना अथवा किसी ओर ध्यान लगाना	8.3
11.	पैरों पर खड़े होने के लिए फर्नीचर का सहारा लेना	8.1
12.	खड़े होने की प्रथम सफलता	8.3
13.	खड़े होने में आनंद प्राप्त करना तथा बिना सहारे खड़ा होना	8.8
14.	कदम बढ़ाने के लिए खड़ा होना	8.8
15.	स्वतंत्र रूप से चलने का प्रयत्न करना, गिर पड़ना	8.8
16.	स्वतन्त्र चलना	9.0
17.	कई कदम चलने की प्रथम सफलता	11.3
18.	अकेले चलने का बार-बार प्रयास	12.5
19.	चलने में पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लेना तथा किसी उद्देश्य के लिए चलना	13.8
20.	सीढियाँ चढ़ना	18

संवेगात्मक विकास (Emotional Development)

संवेग भावात्मक अनुभव होता है जिसके कारण मानसिक एवं दैहिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इसके परिणामस्वरूप व्यवहार में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ जाते हैं। मैकंडुगल का विचार है कि प्राथमिक प्रेरणायें सदैव

संवेगात्मक होती हैं। इन प्रेरणाओं का सम्बन्ध मूल प्रवृत्तियों से होता है। इस प्रकार 14 मूल प्रवृत्तियों के 14 मूल संवेग हैं:-

	मूल प्रवृत्तियाँ	संवेग
1.	पलायन प्रवृत्ति	भय
2.	संघर्ष	क्रोध
3.	जिज्ञासा	कुतूहल भाव
4.	आहारान्वेश	भूख
5.	पित्रीय प्रवृत्ति	वात्सल्य
6.	सामूहिकता	एकाकीपन
7.	विकर्षण	विकर्षण भाव
8.	काम	कामुकता
9.	स्वाग्रह	आत्महीनता
10.	आत्म गौरव	आत्माभिमान
11.	संचय	अधिकार भाव
12.	याचना वृत्ति	करूणा
13.	रचनावृत्ति	कृतिभाव
14.	हँसी	आमोद

बालकों के 4 सप्ताह की आयु के उपरान्त मुख, रूदन, क्रोध, रूदन तथा कष्ट रूदन में अन्तर स्पष्ट होने लगता है। उसके जीवन के प्रथम वर्ष में उसकी चीख और रूदन की अभिव्यक्ति को आसानी से पहचाना जा सकता है। धीरे-धीरे सभी संवेग उसमें पकट होने लगते हैं। इन संवेगों को समझना आवष्यक होेता है।

स्मृति विकास (Memory Development)

स्मृति विकास द्वारा बालक का मानसिक विकास प्रारम्भ होता है। व्यक्ति अपनी प्रारम्भिक आयु से ही अपने अनुभवों को एकत्रित करता रहता है। परन्तु इन अनुभवों की स्मृति की प्रक्रिया वर्ष के पश्चात् ही प्रारम्भ होती है। अनुभव से स्मृति का विकास होता है तथा साथ ही साथ विस्मृति भी क्रिया करने लगती है। स्मृति के 3 प्रमुख अंग हैं:

- स्मरण करना
- धारण
- अभिज्ञान

स्मरण प्रक्रिया को निम्नलिखित तत्व प्रभावित करते हैं:-

- मानसिक तत्परता
- निश्चय
- समझ
- उत्तेजित मनःस्थिति
- रुचि
- थकान
- बौद्धिक विकास

बुद्धि का तात्पर्य वस्तु बोध, अन्वेषण, दिशा निर्देशन तथा आलोचनात्मक योग्यता है। बुद्धि उन कार्यों को करने की योग्यता है जिसमें कठिनाई जटिलता, अमूर्तता, लक्षण प्राप्ति में अनुकूलन, सामाजिक मूल्य, मितव्ययिता तथा मौलिकता का उद्गम होता है। बौद्धक बुद्धि के लिये 2 बातें प्रमुख हैं:

1. व्यक्ति ने जिस प्रकार का मस्तिष्क लेकर जन्म लिया है।
2. व्यक्ति में अवलोकन करने, सीखने तथा कार्य करने के अवसर कितने हैं।

थार्नडाइक ने बुद्धि को तीन भागों में विभाजित किया है

1. सामाजिक बुद्धि

   व्यक्तियों को समझने तथा उनके साथ व्यवहार करने की कुशलता।

2. मूर्त बुद्धि

   वस्तुओं को पहुचानने तथा उनका उपयोग करने की योग्यता।

3. अमूर्त बुद्धि

शाब्दिक अर्थ को समझना तथा उनको उपयोग में लाना। मानसिक आयु किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त विकास की सीमा की वह अभिव्यक्ति है जो उसकी कार्यात्मक उपलब्धियों से ज्ञात की जाती है तथा उसकी उपलब्धियों को उसकी आयु से लगाया जाता है। उदाहरण के लिए जिस बच्चे की मानसिक आयु 6 वर्ष है तो इसका तात्पर्य यह है कि वह 6 वर्ष के बच्चे के समान कार्य करने में सफल होता है। बालक की बुद्धि की मात्रा को बुद्धि लब्धि कहते हैं।

बुद्धि मापन विधि

सन् 1911 में विने ने अपनी पहले की प्रष्नावली में संषोधन करके निम्नलिखित मापन विधि अपनायी।

तीन वर्ष की आयु के लिए:

(1) तुम्हारी नाक, आँख और मुँह कहाँ है।

(2) 2 अंकों की बनी संख्या को दोहराना।

(3) 6 शब्दों से बने वाक्य को दोहराना।

(4) चित्र में जो देखते हो वह कहो।

(5) अपना अन्तिम नाम बनाओ।

चार वर्ष की आयु के लिए:

(1) तुम लड़की हो या लड़का।

(2) तीन संख्याओं को दोहराना।

(3) कुंजी, चाकू और सिक्का दिखाकर-ये क्या हैं?

पाँच वर्ष की आयु के लिए:

(1) विभिन्न भार के दो बक्सों की तुलना करवाना।

(2) वर्ग को दिखाकर उसे खिंचवाना।

(3) धैर्य के खेल खेलने को कहना।

(4) चार सिक्कों को गिनवाना।

(5) 10 शब्द खण्डों वाले वाक्य को दोहराना।

आठ वर्ष की आयु के लिए:

(1) 20 से 0 तक पीछे की ओर निगनने को कहना।

(2) दिन और तारीखों के नाम पूछना।

(3) 5 अंकों की बनी संख्या को दोहराना।

(4) 9 सिक्कों को गिनवाना।

(5) चार रंगों का नाम बताना।

(6) किसी गद्य काब्य को पढ़वाना और दो बातों को याद रखने को कहना।

ग्यारह वर्ष की आयु के लिए:

(1) निरर्थक कथनों की आलोचना करवाना।

(2) किसी वाक्य में 3 शब्द प्रयुक्त करना।

(3) 3 मिनट में 60 शब्द कहलाना।

(4) अमूर्त वस्तुओं की परिभाषा करवाना।

(5) किसी वाक्य में बेतरतीब रखे शब्दों को तरतीब में रखवाना।

पन्द्रह वर्ष की आयु के लिए:

(1) 7 अंकों को दोहराना।

(2) एक मिनट में दिये हुए शब्द से 3 प्रकार की लय निकलवाना।

(3) 26 शब्दों से बने वाक्य को दोहराना।

विने की बुद्धि परीक्षा के अतिरिक्त अनेक प्रष्नावलियाँ अब रचित हो गयी हैं जिनसे बुद्धि को नापा जा सकता है।

बुद्धि परीक्षा के परिणामों से यह सिद्ध हो चुका है कि बालक की बुद्धि उसकी उम्र के साथ-साथ बढ़ती है और यह किषोरावस्था में अन्त तक बढ़ती है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि 16 वर्ष के बाद कोई बौद्धिक विकास नहीं होता। व्यक्ति का बौद्धिक विकास 30 वर्ष या उसके परे तक निरन्तर चालू रह सकता है। किन्तु नयी-नयी समस्याओं को हल करने की योग्यता उसमें जो 16 वर्ष पर थी वही अब 40 वर्ष पर भी होगी। बाद को बुद्धि नहीं बढ़ती है ज्ञान बढ़ता है। ज्ञान अर्जित शक्ति है जो बुद्धि नहीं है। बुद्धि जन्मजात योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी भी समस्या के हल करने के सम्भव साधनों को अपनी क्षमता के अनुसार जुटाने, उसे हल करना और अपने को वातावरण के अनुकूल व्यवस्थित करता है।

भाषा विकास

बालक जन्म के समय केवल चीखने का उपयोग अपनी आवष्यकताओं को स्पष्ट करने के लिए करता है। उसकी ध्वनियाँ परिवर्तित होती हैं तथा किसी चेतनात्मक उद्देष्य के कारण प्रकट होती हैं। उदाहरण के लिए भूख लगने, पीड़ा होने, कष्ट पहुँचने आदि के समय वह चिल्लाता है परन्तु इससे वास्तविक स्थिति का पता नहीं चलता है। जब वह दो महीने का होता है तो बड़बड़ाने लगता है तथा कुछ अस्फुट शब्द भी बोलता है। 6 महीने के लगभग कुछ स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों की संधि भी हो जाती है। उदाहरण के लिए माँ, ना, दा आदि शब्द कहने लगता है। परन्तु भाषा विकास के लिए सुनना अत्यन्त आवश्यक होता है। 1 वर्ष की अवस्था में वह शब्दों का उपयोग करना प्रारम्भ कर देता है। 18 महीने की आयु तक वह काफी शब्द बोलने लगता है। 2 वर्ष की आयु में लगभग 270 शब्दों का उसका भंडार होता है। 7 वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते उसका शब्द भंडार 16,000 शब्दों तक पहुँच जाता है।

भाषा विकास में निम्न कारकों का समावेश होता है:

(1) शारीरिक दशा

भाषा विकास के लिए शरीर के अंगों जैसे मुँह, नाक, कान, जीभ, कंठ आदि का सामान्य होना आवश्यक होता है। यदि इन अंगों में किसी प्रकार का दोष होता है तो बालक भाषा का उचित विकास नहीं कर पाता है।

(2) बुद्धि

बुद्धि तथा भाषा विकास में गहरा सम्बन्ध है जिन बालकों की बुद्धि तीव्र होती है वे जल्दी ही भाषा का उपयोग अपने व्यवहार में करने लगते हैं।

(3) यौन भेद

ऐसा पाया गया है कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ शीघ्र बोलना प्रारम्भ कर देती हैं तथा उनके शब्दों का अधिक विस्तार होता है। उनके वाक्यों में अशुद्धियाँ कम होती हैं। बालिकायें याद करने में तेज होती हैं।

(4) सामाजिक वातावरण

वातावरण से प्राप्त उद्दीपन सहयोग का कार्य करता है। माता-पिता किस प्रकार बालक को भाषा ज्ञान कराना चाहते हैं। यदि बालक की संकेत से ही आवश्यकतायें पूरी हो जाती है तो वह बोलने का प्रयत्न नहीं करता है। यदि उसके साथ तुतलाया जाता है तो शब्द बोलने का प्रयास नहीं करता। यदि दो भाषायें घर में बोली जाती हैं तो दोनों को ग्रहण करने का प्रयास करता है जिससे उलझन होती है। आर्थिक स्थिति का भी प्रयास भाषा के विकास पर पड़ता है।

2.3 सारांश

प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक होता है और उसके व्यक्तित्व का विकास उसकी सामाजिक रुचियों की परिधि में ही होता रहता है। व्यक्ति की सृजनात्मकता पर वंशानुक्रम तथा अनुभव दोनों का प्रभाव पड़ता है। इस सृजनात्मकता को ही ऐडलर मानव जीवन का आधार तथा संचालक मानता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की एक शैली होती है। इस शैली को व्यक्ति स्वयं इस प्रकार विकसित करता है कि वह दूसरों से श्रेष्ठ सिद्ध हो सके। व्यक्ति का यह प्रयास उसकी पांच या छः वर्ष की उम्र से ही प्रारम्भ हो जाता है। व्यक्ति की विकसित होती हुई जीवन-शैली में उसके अनुभवों की छाप होती है। व्यक्तित्व विकास जन्म से लेकर मृत्यु तक चलता रहता है। इसलिए मौखिक अवस्था, गुदा अवस्था, लैंगिक अवस्था तथा जननेन्द्रिय अवस्था में सम्पन्न व्यक्तित्व विकास महत्वपूर्ण होता है और इसका प्रभाव आजीवन रहता है।

2.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. व्यक्तित्व विकास से क्या आशय है?
2. व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए?

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आलपोर्ट, जी0डब्ल्यू0 पैटर्न एण्ड ग्रोथ इन पर्सनाल्टी, राइन हार्ट एण्ड विनस्टन-इंक, न्यूयार्क, 1961
2. आलपोर्ट, जी0 पर्सनाल्टी-साइकोलोजिकल-इण्टरप्रेटेशन, हेनरी हाल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1901
3. केसलर, जे0 साइकोपैथालोजी आफ चाइल्डहुड, इंगलैण्ड क्लिफ्स, प्रेंन्टिस हाल, न्यूयार्क, 1966
4. कोलमैन, जे0 पर्सनाल्टी डायनमिक्स एण्ड इफेक्टिव विहैवियर, फार्समैन एण्ड क0, शिकागो, 1960
5. मिश्रा, पी0डी0, व्यक्ति और समाज, न्यू रा ॅयल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010,

इकाई-3

व्यक्तित्व के सिद्धान्त-I: फ्रायड, जुंग एवं एडलर

इकाई की रूपरेखा

3.0 **इकाई के उद्देश्य**

3.1 **सिंगमण्ड फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त**

3.1.1 सिंगमण्ड फ्रायड का संक्षिप्त जीवन वृत्त

3.1.2 व्यक्तित्व के मत्वपूर्ण अवयव

3.1.3 व्यक्तित्व के महवपूर्ण अवयव (इदं, अहम् एवं परहम)

3.1.4 व्यक्तित्व की गतिशीलता एवं व्यक्तित्व का मनःस्थलीय विभाजन

3.1.5 व्यक्तित्व विकास

3.1.6 मनोलैंगिक विकास के स्तर (Stages of Psycho-Sexual Development)

3.2 **कार्ल जुंग का व्यक्तित्व का सिद्धान्त**

3.2.1 व्यक्तित्व संरचना

3.2.2 व्यक्तित्व प्रकार

3.2.3 व्यक्तित्व की गति शीलता

3.2.4 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया

3.2.5 जुंग के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का मूल्यांकन

3.3 **अल्फ्रेड एडलर का व्यक्तित्व का सिद्धांत**

3.3.1 संरचनात्मक शक्ति

3.3.2 अग्रधर्मी प्रेरणा शक्ति

3.3.3 हीनता ग्रन्थि

3.3.4 सर्वश्रेष्ठता ग्रन्थि

3.3.5 जीवन शैली

3.4 **इकाई सारांश**

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 इकाई के उद्देश्य:

इस इकाई का उद्देश्य व्यक्तित्व के सिद्धान्तों से परिचित कराना है। इन सिद्धान्तों में सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त सिगमण्ड फ्रायड का है। जिन्होंने सर्वप्रथम मानव व्यक्तित्व को समझने के लिए एक स्पष्ट सिद्धान्त दिया। जिसका

आधार मनोवैज्ञानिक है। प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्तों से परिचित कराना है। वास्तव में अभी तक कोई भी ऐसा एक अकेला सिद्धान्त उपलब्ध नहीं है जो व्यक्तित्व विकास के हर पहलू की विधिवत व्याख्या कर सके। विकास के आयाम होते हैं और हर आयाम की अपनी-अपनी विशेषताएं होती है। अतः किसी एक सिद्धान्त की परिधि में सारी बातों को समाविष्ट करना संभव भी नहीं है किन्तु फ्रायड का सिद्धान्त इस सदंर्भ में इसलिए एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है क्योंकि सर्वप्रथम फ्रायड ने ही मानव मन को सैद्धान्तिक ढंग से समझने का प्रयास किया। फ्रायड के दो शिष्य एडलर तथा जुंग बाद में उनसे अलग हो गए: और उन्होंने अलग सिद्धांत देने का प्रयास किया | इन्हें भी इस इकाई में सम्मिलित किया गया है |

प्रस्तुत इकाई को पढने के बाद आप

- व्यक्तित्व के विभिन्न मनोवैज्ञानिक मतों के बारे में बता सकेंगे
- व्यक्तित्व के सिगमंड फ्रायड द्वारा दिए गए सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे
- व्यक्तित्व के जुंग द्वारा दिए गए सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे
- व्यक्तित्व के अल्फ्रेड एडलर द्वारा दिए गए सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे
- व्यक्तित्व के फ्रायड, जुंग और एडलर के सिद्धांतों की तुलना कर सकेंगे

3.1.1 सिंगमण्ड फ्रायड का संक्षिप्त जीवन वृत्त

सिगमण्ड फ्रायड सर्वकालिक महान मनोवैज्ञानिक थे। इन्होने अपने सिद्धान्त के माध्यम से मानव मूल प्रवृत्तियों की विशेषताओं का वर्णन किया है। इनके अनुसार व्यक्तित्व निर्माण में मूलभूत प्रवृत्तियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इन प्रवृत्तियों का जिस प्रकार से सामाजिकरण होता है मानव व्यक्तित्व का निर्माण भी उसी अनुसार होता है। फ्रायड एक मौलिक विचारक एवं मनोविश्लेषक के रूप में जाने जाते रहे हैं। **मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त** फ्रायड द्वारा प्रतिपादित है क्योंकि फ्रायड से पूर्व विचारकों ने चेतनमन के अध्ययन पर बल दिया था परन्तु फ्रायड ने अचेतन मन को अपने अध्ययन का मुख्य विषय बनाया।

फ्रायड का जन्म **6 मई, 1956 में मुराविया नगर (आस्ट्रिया)** में हुआ था। फ्रायड ने वियना विश्वविद्यालय में चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया। कुछ समय तक वहीं पर सहायक चिकित्सक के पद कार्य भी किया। 1885 में फ्रायड पेरिस आये तथा प्रो0 शार्को के निर्देशन में तांत्रिकशास्त्र विषय का गम्भीरता से अध्ययन किया। प्रो0 शार्को सम्मोहन के द्वारा हिस्टीरिया का उपचार करते थे। फ्रायड को यहीं से प्रेरणा मिली। वियना वापस आने पर जोजफ ब्रेयर के सहयोग में चिकित्सा कार्य प्रारम्भ किया। वेयर हिस्टीरिया के रोगियों की चिकित्सा सम्मोहन विधि से करता था तथा उन्हें आराम मिला। इन अनुभवों से फ्रायड ने यह निष्कर्ष निकाला कि जो सामान्य रूप से रोगी कहते है उस पर पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि रोगी स्वयं मूल कारणों की नहीं जानता। वे कारण उसके मन अचेतन में रहते हैं। इसी कारण फ्रायड ने अपने सिद्धान्त को मनोविश्लेषण कहा तथा मुक्त-साहचर्य उपाय की खोज की। मुक्त-साहचर्य मनोविश्लेषण में मुक्त साहचर्य का प्रमुख स्थान है। मनोरोगियों के उपचार में इस विधि का उपयोग अत्यन्त लाभदायी सिद्ध हुआ। इस विधि में रोगी को सांवेगिक दबावों से मुक्त करने के लिए उसे वातावरण प्रदान किया जाता है। इसी के द्वारा रोगी अपने अचेतन मन की बातों को कालान्तर में स्पष्ट करता है और फिर अपने रोग से मुक्त हो जाता है। सामान्य रूप से लोग उन बातों को छिपाते है जो अवांछनीय एवं दुखदायी होती हैं। यह विस्मरण दमन मन द्वारा होता है। इस प्रकार प्रतिरोध तथा दमन की प्रक्रियायें चेतन व्यक्ति को नहीं होती है

अर्थात् ये प्रक्रियायें मन के अचेतन स्तर पर सम्पन्न होती हैं। अचेतन का तात्पर्य है कि व्यक्ति इस प्रक्रिया को चेतन रूप से अनुभव नहीं कर सकता है।

3.1.2 व्यक्तित्व के महवपूर्ण अवयव (Components of Personality)

मनोविश्लेषण में फ्रायड ने निम्न अंगों को आवश्यक एवं महत्वपूर्ण बताया है-

- व्यक्तित्व का संगठन
- व्यक्तित्व की गतिशीलता
- व्यक्तित्व का विकास

3.1.3 व्यक्तित्व का संगठन

फ्रायड के अध्ययन का मुख्य केन्द्र बिन्दु व्यक्तित्व ही था। फ्रायड ने समग्र व्यक्तित्व की धारणा को तीन प्रमुख तंत्रों के रूप में की। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में ये तीनों तंत्र एकीकृत तथा संगठित होते है। सहयोग से कार्य करने पर वातावरण के साथ सन्तोषप्रद, सामंजस्य स्थापित करते हैं। यदि विषमता होती है तो असमायोजन होता है।फ्रायड द्वारा दिए गए मन के वे स्तर हैं:

- **इदम् (Id)**
- **अहम् (Ego)**
- **पराहम् (Super Ego)**

इदम् (Id): यह व्यक्तित्व की मूलभूत मनोवृत्ति है। यह व्यक्ति को कार्य करने के लिए उत्प्रेरित करती है। इसका एकमात्र कार्य उत्तेजना को तुरन्त समाप्त करना होता है। यह शक्ति का मुख्य स्रोत है तथा सभी प्रकार की क्रियाओं को इससे शक्ति मिलती है। फ्रायड का कथन है कि मानव की जो उचित इच्छायें अचेतन में चली जाती हैं वे अभिव्यक्ति के लिए सुअवसर की ताक में रहती है। अधिकांशतः इस प्रकार की इच्छायें कामुक होती हैं। इसे फ्रायड ने लिबिडो (Libido) कहा है। मनुष्य के जीवन की एक मात्र प्रेरक शक्ति लिविडो ही है। यह इड है जहाँ जीवन तथा मृत्यु से सम्बन्धित प्रवृत्याँ पायी जाती है। यह अंधा होकर सुख के सिद्धान्त के अनुसार सुख की खोज करता है तथा विवेक रहित होता है।

इदम् के नियन्त्रण में दो प्रकार की प्रक्रियायें होती हैं

- परिवर्तित क्रिया
- प्राथमिक प्रक्रिया

परिवर्तित क्रियायें जन्मजात होती हैं और स्वतः होती है जैसे छींकना, पलक झपकाना आदि। ये क्रियाएं तनाव को अविलम्ब समाप्त करती है। प्राथमिक प्रक्रिया इससे जटिल क्रिया है। यह तनाव को दूर करने के लिए उस वस्तु का मानसिक प्रतिबिम्ब बनाती हैं जिससे तनाव दूर होता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति भोजन से पहले भोजन का प्रतिबिम्ब बनता है। तनाव वाली वस्तु की बिम्ब रचना को इच्छापूर्ति कहा जाता है। यह स्पष्ट है कि व्यक्ति को भोजन के प्रतिबिम्ब से खाना नहीं मिल सकता अतः द्वितीय प्रक्रिया का विकास होता है, जिसे अहम् कहते है, जो वास्तविक क्रिया करती है।

अहम् (Ego):

अहम् (Ego) एक संतुलनकारी शक्ति है, जो यथार्थ और कल्पना के बीच संतुलन स्थापित करने का कार्य करती है। अहम् सुख तत्व के स्थान पर यथार्थ से परिचालित होता है। अहं का कार्य व्यक्ति में उत्पन्न तनाव को उचित साधनों एवं विधियों के माध्यम से विसर्जित करना होता है। भूखे व्यक्ति की भूख तभी शान्त होती है जब वह भोजन की खोज करके उसे सेवन कर लेता है। अतः उसको वास्तविक भोजन तथा प्रतिबिम्ब में अन्तर का ज्ञान सीखना होता है। अहं की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- यह व्यक्तित्व का चेतन भाग है।
- यह तार्किक होता है।
- इसका सम्बन्ध वास्तविक से होता है।
- यह अनुभव से विकसित होती है।
- अचेतन मन की इच्छायें प्रशस्त करता है।
- यह समायोजन का मार्ग प्रशस्त करता है।

इड तथा अहं में प्रमुख अंतर यह है कि इड उत्तेजनाओं को तात्कालिक रूप से शांत करने का प्रयास करता हैं। उसका संबंध केवल मस्तिष्क के विषयात्मक वास्तविकता पर आधारित होता है जबकि अहम् मस्तिष्क की वस्तु तथा बाह्य स्थिति में अन्तर स्पष्ट करता है।

अहं द्वितीयक प्रक्रिया है जिसका तात्पर्य यथार्थ को ऐसी कार्य योजना के द्वारा प्राप्त किया जाये जिसका विकास तर्क द्वारा हो। इसे समस्या को सुलझाना या विचार करना कहते हैं।

पराहम् (Super Ego)

पराहम् भी व्यक्तित्व की एक मूल प्रवृत्ति है, जो व्यक्ति के अंदर परमार्थ की भावना की संतुष्टि करती है। व्यक्तित्व की तीसरी व्यवस्था को पराहम् कहते हैं। यह नैतिकता पर आधारित होती है। यह समाज के मूल्यों तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें तर्क के स्थान पर आदर्श प्रधान होता है। दण्ड तथा पुरस्कार द्वारा बालक व्यवहार सीखता है। पुरस्कार आदर्श का रूप ग्रहण कर लेता है। पराहम् के मुख्य कार्य निम्न हैः

(1) इड की प्रवृत्तियों पर रोक लगाना विशेषकर वे जो लैंगिक अथवा उग्रात्मक स्वाभाव की होती है क्योंकि वे समाज द्वारा अमान्य होती है।

(2) अहं को वास्तविक उद्देश्य के स्थान पर नैतिक उद्देश्य को निष्चित करने के लिए प्रोत्साहित करना।

अहं इड से उत्पन्न होता है तथा पराहम् अहं से। वे जीवन पर्यन्त एक दूसरे पर प्रभाव डालते तथा एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्धित है। व्यक्तित्व का कार्य इन तीन व्यवस्थाओं के समन्वय से होता है।

3.1.4 व्यक्तित्व की गतिशीलता एवं व्यक्तित्व का मनःस्थलीय विभाजन

उपरोक्त तीनों तंत्र इड, अहं एवं **पराहम्** परस्पर निम्न प्रकार से क्रिया प्रतिक्रिया करते हैः

(1) मनः ऊर्जाः- ऊर्जा भोजन से प्राप्त होती है। ऊर्जा का वह रूप जो व्यक्ति के तीनो अंगों में क्रियाशील होता है, मनः ऊर्जा कहते है। यह चिंतन, प्रत्यक्ष बोध तथा स्मरण आदि कार्य करता है।

(2) मूल प्रवृत्तियाँ - मूल प्रवृत्ति एक ऐसी सहज अवस्था है जो मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को दिषा ज्ञान कराती है। उदाहरण के लिए काम प्रवष्ति, प्रत्यक्षबोध, स्मरण तथा चिन्तन आदि विभिन्न प्रक्रियाओं को काम को सिद्धि के लिए परिचालित करती है। फ्रायड ने दो प्रकार की मूल प्रवृत्तियों को माना है: काम सम्बन्धी प्रवृत्ति (Life Instinct or Eros) एवं मृत्यु (Death Instinct or Thantos) व्यवहार इन्हीं से संचालित होता है।

मनोविश्लेषण के आरम्भिक दिनों में फ्रायड ने व्यक्तित्व या मन के 3 भाग बताये थे। चेतन (Conscious), अर्ध चेतन (Semiconscious) तथा अचेतन (Unconscious)।

चेतन (Conscious) मन: मन का 1/8 भाग केवल चेतन है इसमें सभी बातें व घटनायें याद रहती हैं। उदाहरण के लिए व्यक्ति, वस्तुओं, तिथियों, नामों, परिस्थितियों को बिना किसी रूकावट के जान लेता है।

अर्ध चेतन (Semiconscious) मन: इस भाग में ऐसे विचार आते है जिनका व्यक्ति को तात्कालिक ज्ञान नहीं होता है परन्तु अन्तर्निरीक्षण की क्रिया द्वारा उनका ज्ञान सम्भव हो जाता है।

अचेतन (Unconscious) मन : यह मन का सबसे बड़ा भाग है, इसमें दो प्रकार की इच्छायें रहती हैः-

- वे जो कभी चेतन थीं तथा बाद में अचेतन में चली गयी है।
- वे विचार व इच्छायें जिनको व्यक्ति अपनी इच्छानुसार व्यक्त नहीं कर सकता है।

फ्रायड के अनुसार दमन के परिणामस्वरूप अचेतन का प्रादुर्भाव हुआ है जिस समय अवांछित इच्छायें चेतन में आकर अपनी संतुष्टि के लिए प्रयत्न करती हैं तो व्यक्ति इन इच्छाओं को दबा देता है जिसके कारण वे अचेतन में चली जाती हैं। चूँकि व्यक्ति विशेष के सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों से पूर्णतः विपरीत अचेतन की इच्छायें होती हैं इसलिए व्यक्ति के आदश तथा व्यक्तित्व के लिये उन इच्छाओं का ऐसा स्वरूप असंगत एवं विरूद्ध प्रतीत होता है। इस धारणा के परिणामस्वरूप दमन की प्रक्रिया कार्य करती है। यह प्रक्रिया सामाजिक एवं अन्य प्रकार के संतुलन को बनाये रखने के लिए होती है जिसके परिणामस्वरूप अचेतन का आविर्भाव होता हैं।

व्यक्ति के व्यवहार पर अचेतन मन का विशेष प्रभाव पड़ता है। एक ही स्थिति में भिन्न-भिन्न व्यवहार का कारण अचेतन मन की शक्ति की भिन्नता होती है।

3.1.5 व्यक्तित्व विकास

फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व का विकास तनाव के चार मुख्य स्रोतों के प्रत्युत्तर में होता हैः

1. शारीरिक विकास
2. निराशा
3. द्वन्द्व
4. दबाव

(1) शारीरिक विकास

शारीरिक विकास के प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसलिए वह इन कठिनाइयों को दूर करने के तरीके सीखता है। और अपने में नये गुणों एवं प्रविधियों का विकास करता है। व्यक्तित्व

का विकास शारीरिक विकास पर निर्भर करता है अतः शारीरिक रूप से कभी व्यक्तित्व में कमी उत्पन्न कर देती है और व्यक्ति हीनता का शिकार हो जाता है।

(2) निराशा

व्यक्ति को अपनी इच्छाओं की संतुष्टि के लिए अनेक कारकों से संघर्ष करना पड़ता है। किसी न किसी प्रेरणा की तृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति को निराशा का अनुभव करना पड़ता है। निराशा की मानसिक स्थिति के निम्नलिखित मुख्य चिन्ह हैं:-

- हीन भावना
- तनाव की अधिकता
- विभिन्न मनोरचनाओं का उपयोग
- असंतोष

निराशा के परिणामस्वरूप निम्न प्रतिक्रियायें स्पष्ट होती है जो व्यक्तित्व का विकास करती है:-

- आक्रामक व्यवहार
- प्रयत्नों में वृद्धि
- विधियों में परिवर्तन
- लक्ष्य में परिवर्तन
- मनोरचना

(3) द्वन्द्व

कभी-कभी एक ही समय में एक से अधिक प्रेरणायें व्यक्ति के मन में जाग्रत हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप उसके मन में दुविधा उत्पन्न हो जाती है एवं तनाव बढ़ जाता है। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप वह अपने में परिवर्तन लाता है।

(4) दबाव: जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति को धमकियों का सामना करना पड़ता है। वह प्रत्येक धमकी का उत्तर देना सीखता है। इस प्रकार उसमें स्वतः परिवर्तन आते रहते हैं।

भग्नाषा, संघर्ष तथा धमकियों से उत्पन्न तनाव को दूर करने के लिए व्यक्ति को कुछ तरीके सीखने होते है। इस प्रकार का सीखना ही व्यक्तित्व का विकास होता है। आत्मीकरण (Identification) तथा विस्थापन (displacement) उसके दो तरीके हैं जिनके द्वारा भग्नाषा, चिन्ता तथा संघर्ष को दूर करना व्यक्ति सीखता है।

- **आन्तरीकरण**
- **स्थानापन्न**

आन्तरीकरण

यह एक तरीका है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे के गुणों को अपना लेता है तथा उन गुणों को अपने व्यक्तित्व में ग्रहण कर लेता है। वह अपने व्यवहार को दूसरे के समान बनाता है क्योंकि ऐसा करने में उसकी चिन्ता समाप्त होती है। यह प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है क्योंकि इससे विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति होती हैं।

स्थानापन्न

यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा ऊर्जा एक विषय से दूसरे विषय पर प्रवाहित की जाती है, विस्थापन कहलाती है। व्यक्तित्व का विकास काफी सीमा तक विषय परिवर्तन तथा मनः ऊर्जा के विस्थापन के क्रम द्वारा सम्भव होता। मूल प्रवृत्ति का स्रोत तथा लक्ष्य वही रहता है परन्तु ऊर्जा का विस्थापन हो जाता है। लक्ष्य विषय केवल बदलता रहता है।

3.1.6 मनोलैंगिक विकास के स्तर (Stages of Psycho-Sexual Development)

फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व का विकास 5 स्तरों से होता है और 5 वर्ष की अवस्था तक मूल व्यक्तित्व की रचना हो जाती है। ये स्तर हैः

a. मौखिक अवस्था (Oral Stage)
b. गुदा अवस्था (Anal Stage)
c. शैश्नावस्था (Phallic Stage)
d. सुप्तावस्था (Latency Stage)
e. जनेन्द्रिय अवस्था (Genital Stage)

a. मौखिक अवस्था(Oral Stage): इस अवस्था को 2 स्तरों में बाँटा हैः

- चूषण काल
- काटने का स्तर

चूषण अवस्था जन्म से लेकर 8 माह की आयु तक चलती है। प्रारम्भ में आवश्यकतायें सीमित होती हैं, तथा उसमें अहं पराहं कार्य नहीं करता है केवल इदम् ही महत्वपूर्ण होता है। भूख की संतुष्टि स्तनपान से होती है। अत उसकी लैंगिकता का क्षेत्र प्रमुख होता है। उसे अपने अंगों से प्रेम होता है। काटने का स्तर उस समय प्रारम्भ होता है जब दाँत निकलने आरम्भ होते हैं। यह प्रायः 8 महीने के बाद ही होता है। वह उग्रात्मक व्यवहार का प्रदर्शन काट कर, फाड़कर तथा तोड़-फोड़ करके करता है। आडिपस ग्रन्थि का विकास होता है। यद्यपि इदम् का प्रभुत्व रहता है परन्तु स्तर की अन्तिम स्थितियों में अहम् का विकास होने लगता है। वास्तविकता का कुछ-कुछ आभास होता है।

b. गुदा अवस्था (Anal Stage)

इस अवस्था को भी दो कालों में विभाजित कर सकते हैं:

- गुदा की त्यागात्मक काल
- गुदा धारणात्मक काल

इस अवस्था में मलमूत्र त्यागने से सम्बन्धित व्यवहारों का ज्ञान होता है। बालक को अनेकों निर्देश दिये जाते हैं। प्रातःकाल मल-मूत्र निष्कासन पर जोर देने से आदत का विकास होता है। **पराहम् का विकास** भी होने लगता है। गुदा धारणात्मक काल में मलमूत्र रोकने, उस पर नियंत्रण रखने तथा धारण करने में सामाजिक मूल्य महत्वपूर्ण होते हैं। यह काल **12वें महीने से लेकर 1 वर्ष की अवस्था** तक रहता है।

c. शैश्नावस्था (Phallic Stage)

इस अवस्था का प्रारम्भ 3-4 वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होता है। इस काल में उसे जनेन्द्रियों से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त होता है तथा लिंग भेद का अर्थ समझता है। मात्मनोग्रन्थि तथा पित्मनोग्रन्थि का विकास होता है।

d. सुप्तावस्था (Latency Stage)

बालक 5वीं अवस्था में शैशव कामुकता का सामाजिक अर्थ समझने लगता है जिसके कारण उसको दमित करना प्रारम्भ कर देता है। वह बाह्य विषयों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है। उसमें पराहम् का विकास होता है। सामाजिक गुण आने लगते हैं।

e. जनेन्द्रिय अवस्था (Genital Stage)

इस अवस्था में पुन लैंगिकता बढ़ती है। वे एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते है। तथा आकर्षण के लिए अनेकों प्रेरकों को अचेतन में डालने का प्रयत्न करते हैं। परिणाम स्वरूप रचनात्मक कार्य सम्भव होते हैं।

इस प्रकार फ्रायड ने इड, इगो और सुपरइगो के माध्यम से व्यक्तित्व निर्माण के ऊपर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त फ्रायड ने अपने सिद्धान्त में मनःऊर्जा एवं लैंगिकता के प्रति बालक की चेतना के विकास के माध्यम से व्यक्तित्व विकास की अवधारणा को स्पष्ट किया है।

3.2 कार्ल जुंग का व्यक्तित्व का सिद्धान्त

विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में कार्ल जुंग का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जुंग फ्रायडवादी विचारधारा के ही समर्थक थे, परन्तु विचारों में मतभेद के कारण जुंग फ्रायड से एकदम अलग होकर 1914 में अपना विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान की मुख्य धाराएं प्रतिपादित की और व्यक्तित्व संबंधी अपना नया सिद्धान्त प्रस्तुत किया तथा मनोचिकित्सा की एक दूसरी पद्धति भी प्रस्तुत की। जुंग के व्यक्तित्व सिद्धान्त को विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान भी कहते हैं। यूंग के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्न प्रकार से समझा जा सकता हैं-

- व्यक्तित्व संरचना
- व्यक्तित्व प्रकार
- व्यक्तित्व गतिकी और
- व्यक्तित्व विकास

3.2.1 व्यक्तित्व संरचना

जुंग व्यक्तित्व के निर्माण में तीन मुख्य घटकों की चर्चा करता है। ये घटक हैं- 1. अहं 2. व्यक्तिगत अचेतन 3. सामूहिक अचेतन। जुंग के अनुसार ये तीनों स्वतंत्र तंत्र हैं। इगो का अर्थ चेतन मन से है। इसके अन्तर्गत चेतन विचार विभिन्न बातों और घटनाओं का प्रत्ययक्षीकरण, स्मृतियां तथा भाव होते हैं। जुंग के अनुसार भाव ही व्यक्तित्व का मुख्य केन्द्र होता है। जुंग का कहना है कि व्यक्तित्व अचेतन में व्यक्ति की अवदमित इच्छायें छिपी रहती हैं। अचेतन के इस स्वरूप में जुंग और फ्रायड में कोई विशेष विरोध नहीं दिखाई पड़ता। सामूहिक अचेतन का तात्पर्य जुंग जातीय अचेतन से लगाता है। यह अचेतन वंशानुगत संस्कारों से निर्मित होत हैं।

3.2.2 व्यक्तित्व प्रकार

अपने विश्लेषण में जुंग ने व्यक्तित्व के प्रकारों को भी महत्वपूर्ण बताया हैं | व्यक्तित्व के प्रकार में जुंग ने दो प्रमुख प्रकारों की कल्पना की है- 1. अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता | जुंग के अनुसार अन्तर्मुखी (Introvert) व्यक्ति के विचार प्रधानतः अपने अन्तःमन के चारों ओर घूमते रहते हैं और वह अपने व्यक्तिगत बातों में ही घिरा रहता है। बाहरी जगत में उसकी कम रूचि होती है। इस प्रकार के ठीक विपरीत बहिर्मुखी (Extrovert)व्यक्ति वह होता हे जो बाह्य जगत के बारे में ही विशेषतः क्रियाशील रहता है। उसका दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ होता है। इन दोनों प्रकार के मनोवृत्तियों के चार अलग-अलग प्रकार हैं- ये प्रकार चिन्तन, भाव, बोध तथा अन्तर्दृष्टि हैं। **अन्तमुर्खता तथा बहिर्मुखता** के अतिरिक्त एक मध्यमार्गी व्यक्तित्व की भी यूंग ने कल्पना की है। यह मध्यमार्गी **उभयमुखी (Ambi-vert)** होता है अर्थात् यह अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता के मध्य में झूलता रहता है।

3.2.3 व्यक्तित्व की गति शीलता

व्यक्तित्व की गतिशीलता को समझने के लिए यूंग ने भी एक लिबिडो जीवनीशक्ति की कल्पना की है। परन्तु जुंग द्वारा कल्पित लिबिडो फ्रायड के लिबिडो से भिन्न है। यूंग अपने लिबिडो को मानसिक शक्ति की संज्ञा देता है। यूंग के अनुसार यह मानसिक शक्ति ही सभी प्रकार के लैंगिक और अलैंगिक कार्य विधियों का निर्धारण करती है। व्यक्ति की इच्छा, भाव, ध्यान, प्रेरणा आदि द्वारा इस मानसिक शक्ति का प्रकाशन होता है। यूंग का विश्वास है मानसिक शक्ति दो नियमों के आधार पर कार्य करती हे। एक नियम समतुल्यता का है और दूसरा उत्क्रम का है।

3.2.4 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया

जुंग की धारणा है कि व्यक्तित्व की **लिबिडो (मानसिक शक्ति)** ऐसे कार्यों में संलग्न होती है जो जीवन रक्षा के लिए आवश्यक होती है। तेरह वर्ष से इक्कीस या बाइस वर्ष की अवस्था में व्यक्ति में लैंगिक मूल्य बड़े ही प्रबल होते हैं और अपनी सक्रियता हेतु सदैव उपयुक्त अवसर की खोज में रहते हैं। चैबीस या पच्चीस वर्ष की आयु के आसपास जीवन प्रवृत्तियां प्रबल होती हैं। इसके बाद लगभग चालीस वर्ष की उम्र से व्यक्ति सांस्कृतिक आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान देता है। पचपन वर्ष की आयु के आसपास व्यक्ति में अन्तर्मुखता और आध्यात्मिक प्रवृत्ति का हो जाता है। जीवन के इसी बिन्दु पर व्यक्ति अपना उद्देश्य आत्म कार्यान्वयन का बना लेता है अर्थात् अपने आत्म के पूर्ण विकास में वह तल्लीन हो जाता है।

3.2.5 जुंग के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का मूल्यांकन

जुंगद्वारा प्रतिपादित अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता का सिद्धान्त का प्रभाव मनोविज्ञान के अतिरिक्त दर्शन और धर्म के क्षेत्र पर भी पड़ा। यूंग के सिद्धान्तों के अनुसार सामान्य व्यवहारों को अच्छी तरह परिभाषित करना संभव हो सका है। इस संदर्भ में फ्रायड के सिद्धान्त कुछ जटिल और उलझावदार प्रतीत होते हैं। जुंग ने यह स्पष्ट किया कि सामूहिक अचेतन का मानव व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है|

जुंग के विचारों की आलोचना में यह कहा जाता है कि उसका **सामूहिक अचेतन का प्रत्यय मात्र काल्पनिक** है और इसके लिए कोई अनुभाविक प्रमाण अभी तक संभव नहीं मिल सका है। मर्फी ने इस आधार

पर यूंग की आलोचना की है कि शुद्ध रूप में अन्तर्मुखी तथा बर्हिमुखी व्यक्ति का होना सम्भव नहीं है। फ्रायड की तुलना में मनोविज्ञान के क्षेत्र में युंग के विचारों की अधिक उपेक्षा की गयी है।

3.3 एल्फ्रेड एडलर का व्यक्तित्व का सिद्धान्त

फ्रायड के समान एडलर भी प्रारम्भ में मनोविश्लेषणात्मक सम्प्रदाय के समर्थक विद्वान थे। किन्तु बाद में इन्होंने फ्रायड के कतिपय विचारों से असहमति दर्शाते हुए अपना एक भिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इसके माध्यम से इन्होंने सामान्य एवं असामान्य व्यवहार के बीच के अंतर को स्पष्ट करने का प्रयास किया ।

एडलर ने सामान्य एवं असामान्य व्यवहारों का मूल निर्धारक इच्छाशक्ति को माना तथा व्यक्तिवादी मनोविज्ञान की स्थापना की। इन्होंने स्वप्न के संबंध में फ्रायड के साथ-साथ युंग के साथ भी असहमति व्यक्त करते हुए श्रेष्ठता प्रवृत्ति को सभी क्रियाओं का आधार माना और कहा कि व्यक्तिगत द्वन्द्वों का समाधान स्वप्नों के माध्यम से होता है।

एडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी सिद्धान्त सिद्ध हुआ। एडलर ने भी अपने विचारों का प्रतिपादन ऐसे समय मे किया जब फ्रायड शार्को आदि प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों ने अपने सिद्धान्तों के माध्यम से मनोविश्लेषण करना प्रारम्भ किया। इस कारण एडलर पर भी कार्य एवं परिस्थतयों का प्रभाव पड़ा। एडलर प्रारम्भ से ही एक चिंतनशील व्यक्तित्व का स्वामी था। जिसका जन्म सन् 1890 ई0 में वियना के पास पेजिंग स्थान पर हुआ। शिक्षा समाप्त करने के बाद एडलर ने कुछ दिनों तक नौकरी की, फिर अपना स्वयं का एक चिकित्सालय प्रारम्भ कर दिया। चिकित्सा क्षेत्र में एडलर ने शीघ्र ही ख्याति प्राप्त कर ली।

सन् 1907 में एडलर ने एक पुस्तक लिखी। जिसमें मस्तिष्क पर पड़ने वाले उन मनोवैज्ञानिक प्रभावों का वर्णन किया गया है, जो शरीर की किसी कमी से उत्पन्न होते हैं। एडलर की वास्तविक विचारधारा का पता उसके द्वारा 1912 में लिखित "The Neurotics Constitution" नामक पुस्तक से चलता है। इस पुस्तक में एडलर ने मनस्तापी व्यक्तित्व के कारण तथा उनके उपचार का मनोवैज्ञानिक ढंग से विवेचन किया।

फ्रायड, एडलर तथा युंग ने मिलकर मनोविश्लेषण के विकास हेतु कार्य किया। मनोविश्लेषण इनके कारण दिनों दिन उन्नति करता रहा, परन्तु प्रथम महायुद्ध के पश्चात मनोविश्लेषण ने तो उन्नति की ही, साथ ही साथ उसकी शाखाएं भी उन्नति के पथपर अग्रसर होने लगी। इन शाखाओं ने इतनी उन्नति की कि वे अलग से विचार धाराएं बन गयी। प्रत्येक शाखा अपनी अलग-अलग दिशा को गयी। आज इन तीनों में पर्याप्त अंतर हो गया है।

व्यक्तित्व के निर्माण में शैशव अवस्था का जो महत्व है, उसे फ्रायड की भांति एडलर ने भी स्वीकार किया। मनुष्य की समस्त मुख्य धारणाएं बचपन में ही गठित हो जाती हैं। इस प्रकार शैशव अवस्था मनुष्य निर्माण की अवस्था होती है। किन्तु एडलर ने फ्रायड की विकासावस्थाओं को स्वीकार नहीं किया। वह पितृविरोधी गन्थि का तो कट्टर विरोधी था।

3.3.1 संरचनात्मक शक्ति

व्यक्तियों में जीव विज्ञान की दृष्टि से समानता पायी जा सकती है, परन्तु मनोविज्ञान की दृष्टि से कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की रचनात्मक शक्ति पृथक पृथक होती है। एडलर के मतानुसार व्यक्तित्त के निर्माण में वंशानुक्रम तथा वातावरण के अलावा रचनात्मक शक्ति भी महत्वपूर्ण होती है। रचनात्मक शक्ति

गतिशील होती है। इस गतिशीलता के कारण रचनात्मक शक्ति जन्मजात क्षमताओं तथा वातावरण में संबंध स्थापित कर व्यक्ति को अपनी बाधा विघ्न दूर करने योग्य बनाती है। यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य है कि रचनात्मक शक्ति में गति होती है, परन्तु उसकी गति एक ही दिशा में नहीं होती। गति के भी कुछ नियम होते हैं। इस गति के इन नियमों को एडलर ने गति का नियम कहकर पुकारा है। गति की विभिन्नता के कारण विभिन्न व्यक्तियों की कार्य प्रणाली भी पृथक पृथक होती है, अर्थात प्रत्येक व्यक्ति की जीवन धारा पृथक पृथक होती है। एडलर ने इस जीवन धारा को जीवन शैली के नाम से पुकारा। जिस व्यक्ति की शैशवावस्था में जैसी जीवन शैली होगी, वैसा ही प्रौढ़ावस्था में उसका व्यक्तित्व गठित होगा। जीवन शैली के माध्यम से जी समस्या समाधान की प्रणाली का निर्माण होता है। गति का नियम पूर्णतया व्यक्तित्व तथा अनन्य है। प्रत्येक व्यक्ति गति के नियम द्वारा पहचाना जा सकता है। इस प्रकार एडलर ने रचनात्मक शक्ति को अपनी विचारधारा में बड़ा महत्व प्रदान किया।

3.3.2 अग्रधर्मी प्रेरणा शक्ति

एडलर ने अग्रधर्मी प्रेरणा शक्ति का विचार 1908 में व्यक्त किया, तो फ्रायड ने इसका तीव्र विरोध किया। किन्तु 12 वर्ष बाद जब फ्रायड ने इसी सिद्धान्त को मृत्यु मूल प्रवृत्ति के रूप में प्रतिपादित किया, तो एडलर ने इस सिद्धान्त की आलोचना शुरू कर दी। एडलर ने अपधर्शी प्रेरणा शक्ति का नियम प्रतिपादित करते हुए कहा कि वातावरण कष्टप्रद होता है, अतः बच्चा जन्म से ही वातावरण का सामना अग्रधर्मी प्रेरणा शक्ति के माध्यम से करता है। प्रौढ़ावस्था में इस शक्ति का रूप बदल जाता है, अब वह नग्न रूप में व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित नहीं की जाती है। प्रौढ़ावस्था में आकर व्यक्ति इस शक्ति का प्रदर्शन परिमार्जित एवं समाज द्वारा अनुमोदित तरीके से करता है। खेल, प्रतियोगिता में भाग लेना इसी शक्ति की प्रेरणा होती है।

3.3.3 हीनता ग्रन्थि

एडलर ने हीनता की भावना को अपने अध्ययन में बड़ा महत्व दिया। उसने कहा कि विश्व कि प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी अंग की दुर्बलता या मानसिक कमजोरी के कारण अथवा आर्थिक या सामाजिक व्यवस्था के कारण हीनता आ जाती है। इसके साथ ही साथ एडलर ने यह भी कहा कि मानव शरीर की रचना इस प्रकार की होती है कि शरीर के अंग की कमी , दूसरे अंग के अधिक विकास द्वारा पूरी की जा सकती है।

स्त्रियों का लिंग निष्क्रिय होता है जबकि पुरूषों का लिंग क्रियाशील होता है। स्त्रियां इसे अपनी शारीरिक दुबर्लता मानकर पुरूषों से ईष्र्या करती हैं तथा इसी कारण उनमें हीनता की भावना आ जाती है। मनोविष्लेषण के इस सिद्धान्त का एडलर ने और भी अधिक सामान्यीकरण किया। एडलर के कहा कि केवल लिंगीय अभाव से ही हीनता की भावना आती है ऐसी बात नहीं है वरन् किसी स्त्री या पुरूष को कोई अंग दुर्बल है तो उस अंग के अभाव के कारण उसमें हीनता की भावना आ जायेगी।

कभी कभी मनुष्य अपनी अंगहीनता की पूर्ति मानसिक योग्यता के द्वारा भी करता है। इस प्रकार कोई व्यक्ति पूर्ण नहीं होता है। मनुष्य में कुछ न कुछ अभाव अवश्य ही होता है। एडलर ने तो यहाँ तक कह दिया है कि ‘‘ मानव होने का अर्थ ही उसमे अभाव होना है’’।मनुष्य की तुलना मे बच्चा अत्यन्त छोटा है। वह अपने को अत्यन्त छोटा समझता है। अतः बच्चे में हीनता की भावना आ जाती है। अतः वह शीघ्र से शीघ्र बड़ा बनना चाहता है। मनुष्य क्योकि बड़ा है इसीलिए वह बच्चे की दृष्टि में पूर्ण हैं। वह भी बड़ा होकर पूर्ण व श्रेष्ठ बन जाना चाहता है। जब वह बड़ा हो जाता है तो उसमें लघुता के स्थान पर अन्य शारीरिक अथवा मानसिक अभाव आ जाते हैं। अब वह बड़ा

होकर इन अभावों की पूर्ति करके श्रेष्ठ बनना चाहता है। इस प्रकार हीनता ग्रन्थि से सम्बन्धित व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ बनना चाहते हैं। सर्वश्रेष्ठ बनने के प्रयास के कारण उसमें सर्वश्रेष्ठता की भावना आ जाती हे। इस भावना को एडलर ने सर्वश्रेष्ठता ग्रन्थि के नाम से पुकारा। एडलर ने कहा कि हीनता ग्रन्थि के कारण ही सर्वश्रेष्ठता का उदय होता है।

3.3.4 सर्वश्रेष्ठता ग्रन्थि

मानव कार्यो के दो आधार बताये गये हैं- सुख दुख सिद्धान्त तथा जन्म मरण सिद्धान्त । एडलर ने दोनों ही सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया परन्तु कहा कि मानवीय कार्यो के प्रेरित करने में एकमात्र इन्ही का हाथ है- ऐसा नहीं है। मानव जीवन के यह सिद्धान्त मुख्य प्रेरक नहीं है। एडलर के विचार से मुख्य प्रेरक है- सर्वश्रेष्ठता ग्रन्थि। सर्वश्रेष्ठता ग्रन्थि का कार्य हीनता ग्रन्थि पर विजय प्राप्त करना है। जिस व्यक्ति में हीनता ग्रन्थि नहीं है उसमें सर्वश्रेष्ठता ग्रन्थि भी नहीं होगी। जिस व्यक्ति में हीनता ग्रन्थि है उसी में सर्वश्रेष्ठता ग्रन्थि भी होगी। इस प्रकार ये दोनो एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। दोनो ग्रन्थियां प्रायः एक ही व्यक्तिमें पाई जाती हैं। जिन व्यक्तियों में हीनता ग्रन्थि होती है वे अपनी हीनता को छुपाने के लिए सर्वश्रेष्ठता का प्रदर्शन करते हैं। उदाहरण के लिए झगड़े के समय शारीरिक रूप में दुर्बल व्यक्ति अधिक गुस्सा दिखाता है क्योंकि उसकी हीनता उसे इस बात को प्रेरित करती है कि गुस्सा दिखाकर प्रतिपक्षी पर भय या आतंक डाला जाय। क्रोध के माध्यम से वह अपनी शारीरिक दुर्बलता की पूर्ति करता है। इस प्रकार से सर्वश्रेष्ठता की भावना हीनता की भावना की सम्पूर्ति है। वैसे प्रत्येक व्यक्ति मे हीनता भावना तथा सर्वश्रेष्ठता भावना पायी जाती है। परन्तु जब ये भावनाएं सीमा से अधिक मात्रा में होती हैं तो व्यक्ति मानसिक रोगी समझा जाता है। सीमा से अधिक मात्रा में इन भावनाओं का होना ही ग्रन्थि कहलाता है। जब तक मनुष्य अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति स्वाभाविक रूप से करता है वह सीमा में रहता है और जब उसके कार्यो में अस्वाभाविकता आ जाती है तो वह सीमा पार कर जाता है।

3.3.5 जीवन शैली

मानव प्राणी जन्म से ही दुर्बल होता है। मुनष्य जन्म से ही कठिनाइयों का सामना करते स्वयं को असुरक्षित समझता है। इन कारणों से उनमे हीनता की भावना आ जाती है। हीनता की भावना के कारण मनुष्य सर्वश्रेष्ठ बनने के हेतु कार्य या क्रिया करते हैं। इन क्रियाओं में गति होती है। क्रिया तथा गति दोनेा का उद्देश्य सर्वश्रेष्ठता प्राप्त करना है। सर्वश्रेष्ठता प्राप्त करने की क्रिया, गति करने तथा उसके ढंग ही एडलर के अनुसार जीवन शैली कहलाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति सर्वश्रेष्ठता की तरफ अग्रसर होता है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के अग्रसर होने के माध्यम अलग-अलग होते हैं। कोई व्यक्ति यांत्रिक रूप से अपने वातावरण के साथ समायोजन प्राप्त नहीं कर सकता है। जीवन शैली द्वारा एक व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रदर्शित होता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सर्वश्रेष्ठता उद्देश्य को अलग तथा व्यक्तिगत रूप से देखता है। जीवन शैली बच्चे के व्यवहार की योग्यता को नियंत्रित करती है। जीवन शैली व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है। जीवन शैली के आधार पर ही चेतन, अचेतन, विवेचना, अभिनय, विश्राम, काम एवं सामाजिक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

प्रथम चार-पांच वर्षो तक बच्चा स्वयं के शरीर तथा वातावरण के अनुसार व्यवहार करता है। इसके उपरान्त रचनात्मक शक्ति या जीवन शैली का विकास होता है। फ्रायड के विपरीत एडलर ने कहा कि अहम अर्थात स्व या जीवन शैली का विकास जन्म से न होकर जन्म के चार पांच वर्ष बाद होता है और एक बार जब जीवन शैली का गठन हो जाता है तो उसके समस्त व्यक्तित्व का ही निर्माण हो जाता है। अहम् या जीवन शैली व्यक्तित्व

को इंगित करती है। इस प्रकार एडलर ने इदम तथा परा अहम् के स्थान पर अपना अध्ययन क्षेत्र केवल अहम को बनाया। अन्ना फ्रायड ने भी एडलर के इस तर्क का सैद्धान्तिक रूप से काफी समर्थन किया तथा ने जीवन शैली के अतिरिक्त सामाजिक रूचि तथा क्रिया की मात्रा दो ऐसे तत्व और बतलाये जो व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं।

3.4 सारांश

फ्रायड ने इड, इगो और सुपरइगो के माध्यम से व्यक्तित्व निर्माण के ऊपर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त फ्रायड ने अपने सिद्धान्त में मनःऊर्जा एवं लैंगिकता के प्रति बालक की चेतना के विकास के माध्यम से व्यक्तित्व विकास की अवधारणा को स्पष्ट किया है। कार्ल जुंग ने इगो के साथ-साथ व्यक्तिगत चेतन एवं सामूहिक चेतना के रूप में व्यक्तित्व की निर्माणकारी शक्तियों का उल्लेख किया है। हालांकि कार्ल जुंग ने अपना एक भिन्न एवं स्पष्ट सिद्धान्त देने का प्रयास किया है। किन्तु इनका सिद्धान्त किसी न किसी रूप में फ्रायड के सिद्धान्त से प्रभावित हैं।एडलर के स्वप्न विश्लेषण के सिद्धान्त की मुख्य विशेषता यह है कि यह वर्तमान समस्या के समाधान पर बल देता है जबकि इसका एक दोष यह भी है कि यह स्वप्न के निर्माण में अतीत के अनुभवों की भूमिका को स्वीकार नहीं करता है।

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त से आप क्या समझते है?
2. इड, इगो और सुपरइगो का व्यक्तित्व निर्माण पर क्या प्रभाव पड़ता है?
3. व्यक्तिव के जुंग के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें |
4. व्यक्तिव के एडलर के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें |
5. फ्रायड, जुंग एवं एडलर के व्यक्तित्व के सिद्धांतों की तुलनात्मक व्याख्या करें |

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. फ्रायड, एस0 बेसिक राइटिंग आफ सिगमण्ड फ्रायड, रैनडम हाउस, न्यूयार्क, 1938
2. फ्रायड, एस0 वियान्ड दि प्लीजर प्रिंसिपिल्स, लिवराइट, न्यूयार्क, 1922
3. फ्रायड, एस0 सिविलाइजेशन एण्ड डिसकनटेन्ट्स, होगार्थ, लंदन, 1930
4. फ्रायड, एस0 न्यू इन्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स आन साइकोएनालिसस-कार्लटन हाउस, न्यूयार्क, 1933
5. फ्रायड, एस0 ए जनरल इन्ट्रोडक्शन टु साइको एनोलिसस, पेरमाबुक्स, न्यूयार्क, 1953
6. रैंक, ओटो दि ट्रूमा आफ वर्थ, हरकोर्ट प्रेस, न्यूयार्क, 1929
7. रैंक, ओटो, आर्ट आर्टिस्ट, क्रियेटिव अर्ज एण्ड पर्सनाल्टी डेवलपमेंट, एल्फ्रेड ऐ नाफ, न्यूयार्क, 1932
8. मिश्रा, पी0डी0, व्यक्ति और समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010,

9. जुंग, डब्लू0डब्लू0के0 इवैलुएटिंग ट्रीटमेंट मैथेड्स फार डिप्रेसिव डिसआडर्स, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 124, 1968
10. जाको, इ0जी0 दि सोशल इपिडेमिओलोजी आफ मेंटल डिस आर्डर्स, रसेल सेज फाउण्डेशन, न्यूयार्क, 1960
11. जैक्सन, डी0डी0 दि इटियालोजी आफ सीजोफ्रीनिया, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क, 1960
12. सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
13. कोलमैन, एच0 हेल्पिंग, ट्यूपल, करेन हार्नीज साइकोएनालिटिक, एप्रोच साइन्स हाउस, न्यूयार्क, 1971
14. कालमैन, एफ0जे0 दि जेनेटिक्स आफ सीजोफ्रीनिया, जे0जे0 अगस्टीन, न्यूयार्क, 1938
15. मिश्रा, पी0डी0 बी0 मिश्रा असामान्य व्यवहार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982
16. सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
17. वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981
18. चैबे, सरयू प्रसाद, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2002
19. सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004
20. श्रीवास्तव, ज्ञानानन्द प्रकाश, शिक्षा मनोविज्ञान नवीन विचारधारायें, कान्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2002

इकाई-4

व्यक्तित्व के सिद्धान्त-II: करेन हार्नी और ऑटो रैंक

4.0 **उद्देश्य**

4.1 भूमिका

4.2 करेन हार्नी का व्यक्तित्व का सिद्धान्त

4.2.1 मनस्ताप सिद्धान्त

4.2.2 हार्नी का योगदान

4.3 ऑटो रैंक का व्यक्तित्व का सिद्धान्त

4.3.1 जन्म संघात (Birth Trauma)

4.3.2 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया

4.3.3 मनोचिकित्सा (Psychotherapy)

4.3.4 समाज एवं संस्कृति

4.3.5 व्यक्तित्व

4.3.6 संकल्प -शक्ति

4.3.7 जन्म संत्रास

4.4 सारांश

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.6 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्तों से परिचित कराना है। इस इकाई में करेन हार्नी के व्यक्तिवादी सिद्धान्त की व्याख्या की गयी है। साथ ही इन सिद्धान्तों में एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त आटो रैंक का है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

1.करेन हार्नी के सिद्धान्त पर प्रकाश डाल सकेंगे|

2.आटो रैंक के सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे

4.1 भूमिका

हार्नी ने सामान्य एवं असामान्य व्यवहारों का मूल निर्धारक इच्छाशक्ति को माना तथा व्यक्तिवादी मनोविज्ञान की स्थापना की। इन्होंने स्वप्न के संबंध में फ्रायड के साथ-साथ युंग के साथ भी असहमति व्यक्त करते हुए श्रेष्ठता प्रवृत्ति को सभी क्रियाओं का आधार माना और कहा कि व्यक्तिगत द्वन्द्वों का समाधान स्वप्नों के माध्यम से होता है। फ्रायड के समान हार्नी भी प्रारम्भ में मनोविश्लेषणात्मक सम्प्रदाय के समर्थक विद्वान थी। किन्तु बाद में इन्होंने फ्रायड के कतिपय विचारों से असहमति दर्शाते हुए अपना एक भिन्न सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। इसके माध्यम से इन्होंने सामान्य एवं असामान्य व्यवहार के बीच के अंतर को स्पष्ट करने का प्रयास किया।

4.2 करेन हार्नी का व्यक्तित्व का सिद्धान्त

करेन हार्नी फ्रायड की अनुयायी थी किन्तु इन्होंने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रायड के सिद्धान्तों से भिन्न रूप में प्रस्तुत किया हालाकि हार्नी ने फ्रायड के कुछ सिद्धान्तों को मूल रूप में ही स्वीकार कर लिया जैसे फ्रायड के द्वारा प्रस्तुत अचेतनात्मक अभिप्रेरणा का सिद्धान्त। हार्नी ने 1939 में New Ways in Psychoanalysis नामक पुस्तक में अपने विचारों को प्रस्तुत किया। इस पुस्तक में उन्होंने फ्रायड के बहुत से सिद्धान्तों को अस्वीकृत कर दिया। हार्नी ने काम वासना के महत्व को अस्वीकार करते हुए अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसे व्यक्तित्व के सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है।

हार्नी के अनुसार मनुष्य मात्र सुख सिद्धान्त के आधार पर ही अपनी क्रियाएं नहीं करता बल्कि बहुत सी मानवीय क्रियाएं सुरक्षा एवं संतोष के द्वारा नियंत्रित होती है। इस प्रकार 'सुरक्षा एवं संतोष' को हार्नी ने अपने विश्लेषण का मुख्य केन्द्रीय विषयवस्तु बनाया। इन्होने व्यक्तित्व को परिभाषित करते हुए सुरक्षा एवं संतोष को ही आधार बनाया। इनके अनुसार व्यक्तित्व का निर्माण सुरक्षा एवं संतोष के ही आधार पर ही होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हार्नी का संतोष का सिद्धान्त फ्रायड के सुख सिद्धान्त से ही प्रभावित है। वहीं इसमें सुरक्षा का तत्व एडलर के द्वारा प्रतिपादित आत्मसिद्धी के सिद्धान्त से प्रेरित लगता है। इस प्रकार हार्नी का सिद्धान्त कहीं न कहीं फ्रायड तथा एडलर के सिद्धान्तों के बीच एक मध्यवर्ती स्तर के सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है। फ्रायड जहां व्यक्तित्व निर्माण में बचपन के महत्व को स्वीकार करते है। वहीं हार्नी भी बचपन के महत्व को स्वीकार करते हुए भी फ्रायड के पुनरावृत्ति दबाव के सिद्धान्त को अस्वीकार कर देती है। इसके स्थान पर उनकी मान्यता है कि बच्चे का विकास माता पिता के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार पर निर्भर करता है। इनके व्यवहार पर ही गुदा अवस्था तथा पितृविरोधी ग्रन्थि का विकास निर्भर करता है। बच्चे में पितृविरोधी ग्रन्थि का निर्माण हो भी सकता है अथवा नहीं भी हो सकता है। इस प्रकार हार्नी के अनुसार मानव व्यवहार सामाजिक व्यवहारों पर निर्भर करता है। हार्नी ने व्यक्ति तथा व्यक्तित्व को परिवर्तनशील माना है। उनके अनुसार इन दोनो में परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इसीलिए हार्नी ने मृत्यु-मूल-प्रवृत्ति तथा इरोज को पूरी तरह अस्वीकृत कर दिया। हार्नी ने व्यक्तित्व के तीन प्रमुख प्रकार बताये हैं।

1. अनुपालक
2. उत्तेजक अथवा अग्रधर्शी
3. तटस्थ

हार्नी के अनुसार अनुपालक श्रेणी के व्यक्ति परनिर्भर होते हैं। ये सदैव अन्य व्यक्तियों से प्रेम तथा स्नेह प्राप्त करने की आशा करते हैं। ऐसे व्यक्तित्व का व्यक्ति निर्णय लेने में हिचकता है तथा स्वतंत्र ढंग से कार्य करने में संकोच करता है। ये प्रायः दूसरों के सहयोग से ही अपना कार्य करते हैं। जबकि उत्तेजक अथवा अग्रघर्षी व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को अपना विरोधी समझते हैं इनका किसी पर विश्वास नहीं होता है। इनके अंदर दूसरों पर शासन करने तथा उनका शोषण करने की प्रवृति होती है। ये अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किसी भी साधन को अपनाने मे संकोच नहीं करते हैं। वहीं तीसरी श्रेणी का व्यक्ति तटस्थ होता है ऐसे व्यक्ति किसी व्यक्ति से विशेष संबंध नहीं रखते हैं बल्कि ये आत्मनिर्भर होना चाहतें हैं ये एकाकी जीवन व्यतीत करने मे विश्वास रखते हैं तथा किसी के सहयोग को आवश्यक नहीं समझते हैं। हार्नी के अनुसार प्रत्येक मनःस्तापी व्यक्ति में उपर्युक्त गुण पाये जाते हैं जिस व्यक्ति में जिस गुण की बहुलता होती है उसे उन्हीं लक्षणों के आधार पर जाना जाता है।

4.2.1 मनस्ताप सिद्धान्त

हार्नी के व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए वातावरण के माध्यम से सामान्य व्यवहार का अध्ययन करती हैं। सामान्यतः का संबंध सदैव संस्कृति से होता है। इनके अनुसार जो व्यक्ति समाज तथा संस्कृति के साथ नहीं चल पाता वही मनस्तापी होता है। ऐसे व्यक्ति के द्वारा सदेव अपने वातावरण के साथ संघर्ष किया जाता है। हार्नी के अनुसार जब व्यक्ति को अपनी सुरक्षा के प्रति विश्वास नहीं रहता तो वह दुश्चिन्ता का शिकार हो जाता है तथा अपने आप को असुरक्षित अनुभव करता है। यह दुश्चिन्ता ही मनस्ताप का मूल कारण है। हार्नी के अनुसार यदि किसी बच्चे का बचपन कष्टपूर्ण हैं तथा उसके बचपन के अनुभव कष्टदायी हैं तो ऐसा बच्चा आगे चलकर एक मनस्तापी व्यक्ति बन जाता है। इस प्रकार हार्नी फ्रायड के द्वारा वर्णित सिद्धान्त मंे बचपन के महत्व को अपने सिद्धान्त में सम्मलित करती हैं। इनके अनुसार मनस्ताप उस समय भी पैदा हो जाता है जब किसी बच्चे को अपने माता पिता या समाज का स्नेह प्राप्त नहीं होता है। क्योकि स्नेह के अभाव मे बच्चा असुरक्षा का अनुभव करने लगता है तथा दुश्चिन्ता से ग्रसित हो जाता है। हार्नी के अनुसार मनस्तापी व्यक्ति अपनी असुरक्षा तथा चिंता को दूर करने के लिए तीन प्रकार से प्रयास करता है।

1. ऐसा व्यक्ति अन्य व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयार करता है। इन्हीं व्यक्तियों को हार्नी ने अनुपालन व्यक्तित्व वाले व्यक्ति कहा।

2. ऐसा व्यक्ति अन्य व्यक्त्यिों से सहयोग प्राप्त करने के स्थान पर अन्य व्यक्तियों के विपरीत जाने का प्रयास करता है। हार्नी ने इन्हें ही अग्रधर्षी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति कहा।

3. जबकि तीसरे प्रकार के मनस्तापी व्यक्ति वे होते हैं जो समाज से अलग थलग रहकर अपने दुश्चिन्ता को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। ये तटस्थ व्यक्तित्व वाले व्यक्ति कहलाते हैं।

इस प्रकार हार्नी अपने व्यक्तित्व प्रकारो का वर्गीकरण मनस्ताप के आधार पर करती हैं।

मनस्ताप के अन्य कारणों मे हार्नी ने नैतिक संघर्ष को एक मुख्य कारण बताया उनके अनुसार जब किसी व्यक्ति का जीवन एवं चरित्र संघर्षयुक्त हो जाता है तो प्रायः उसका व्यवहार असामान्य हो जाता है तथा उसमे मनस्ताप के गुण एवं लक्षण प्रकट होने लगते हैं। ऐसे व्यक्ति समाज मे रहते हुए भी समाज के अनेक मूल्यों को ठीक ढंग से समझ नहीं पाते हैं। जिसके कारण उनके चरित्र में संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। इन संघर्षो का सामना व्यक्ति प्रायः दो प्रकार से करते हैं। नैतिक संघर्ष के कारण उत्पन्न मानसिक समस्याओं से ग्रसित व्यक्ति कभी कभी अपने संघर्ष को दूर करने के लिए अन्य व्यक्तियों का सहयोग चाहता है वहीं इस सहयोग मे ही वह अपनी सुरक्षा का अनुभव करता है। ऐसा व्यक्ति कोई भी कार्य स्वतंत्र ढंग से नहहीं कर पाता। जबकि दूसरे प्रकार के व्यक्ति समाज से दूर रहकर ही अपनी

सुरक्षा प्राप्त करता है। ऐसे व्यक्तियों मे समाज के प्रति शत्रुतापूर्ण भावनाएं पाई जाती हैं तथा वे समाज से दूरी बनाकर रहते हैं।

4.2.2 हार्नी का योगदान

मानसिक समस्याओं के उपचार के क्षेत्र में हार्नी के विचारों एवं सिद्धान्त का अत्यन्त प्रभाव पड़ा हार्नी ने ही यह स्पष्ट किया कि मनस्तापी व्यक्तियों में भय लाचारी तथा असुरक्षा एवं एकाकीपन की भावना पायी जाती है। हार्नी ने मनस्ताप के कारणों को पूर्णतया व्यक्ति के पर्यावरण से संबंन्धित किया उन्होंने फ्रायड की कामवासना की अपूर्ति के सिद्धान्त को अस्वीकार करते हुए कहा कि वास्तव मे मनस्ताप के पीछे का कारण स्नेह का अभावहै। मनोचिकित्सा के क्षेत्र में हार्नी का यह योगदान अत्यन्त ही उल्लेखनीय है। फ्रायड ने जहां इड को अपने अध्ययन का केन्द्र बिन्दु बनाया था वहीं हार्नी ने इगो को अपने अध्ययन का केन्द्रीय बिन्दु बनाया। इसीलिए इसमे उन्होंने प्रदत्त गुणों के स्थान पर अर्जित गुणों को महत्व प्रदान किया और इस प्रकार मनोचिकित्सा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

4.3 आटो रैंक का व्यक्तित्व सिद्धान्त

आटो रैंक प्रकार्यवादी सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिक रहे हैं। जिन्होंने संकल्प शक्ति के माध्यम से व्यक्तित्व संबंधी समस्याओं के समाधान को प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में इनक जन्म अभिघात का सिद्धान्त भी महत्वपूर्ण है। आटो रैंक का व्यक्तित्व सिद्धान्त भी फ्रायडवादी विचारधारा का अनुसरण करती है। हालांकि इन्होंने जन्म अभिघात के माध्यम से मानव मूल प्रवृत्तियों के विकास का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनका यह मानना है कि यह

आटो रैंक व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्तों के प्रतिपादकों में अत्यन्त सम्मानित स्थान रखते हैं। इनकी ख्याति प्रकार्यात्मक सम्प्रदाय के विश्लेषको में रही है। इन्होंने व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं के माध्यम से अपने विचारों का प्रतिपादन किया हैं। इनके महत्वपूर्ण सिद्धान्तों मे जन्म अभिघात का सिद्धान्त महत्वपूर्ण रहा है जिसपर फ्रायड की विचारधारा का भी प्रभाव देखा जाता है जो निम्नवत् हैः-

4.3.1 जन्म संघात (Birth Trauma)

जन्म संघात (Birth Trauma) सम्प्रत्यय को मनोविज्ञान के सर्वप्रथम फ्रायड ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में स्थान दिया। जन्म अभिघात को व्यक्तित्व का केन्द्र सर्वप्रथम रैंक ने ही माना है। उनका विचार है कि गर्भस्थ शिशु के लिए गर्भाशय एक आनन्दपूर्ण परिस्थिति है जहाँ उसे अत्यन्त सुख प्राप्त होता है। मानव-जीवन में शिशु का जन्म एक तीव्रता आघातपूर्ण घटना है।

शिशु में जन्म अभिघात के कारण पीड़ादायक चिन्ता उत्पन्न होती है जिस रैंक आदिम चिन्ता कहते है। यह आदिम चिन्ता गर्भस्थ शिशु की आनन्दपूर्ण स्मृतियों को समाप्त कर देती है, यह दमन की प्रथम प्रक्रिया है। रैंक का विचार है कि शिशु में माँ के गर्भाशय में वापस जाने की इच्छा तो विघमान रहती है परन्तु उसमें गर्भस्थ जीवन की चेतन स्मृति समाप्त हो जाती है। जन्म अभिघात के समान दूसरी अभिघातपूर्ण घटना स्तन-त्याग है। रैंक यह मानते हैं कि जन्म अभिघात वैयक्तिकता और स्वायत्त इच्छा शक्ति के उत्पन्न होने का एक उपक्रम है।

4.3.2 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया

बचपन में बालक दूसरों पर निर्भर होते हैं अतः उनमें आत्म-निर्भरता के विकास की भावना पायी जाती है किन्तु यह कार्य अत्यन्त धीमी गति से होता है क्योंकि यह एक द्वन्द्वपूर्ण प्रक्रिया भी है। आत्मनिर्भरता के प्रत्येक चरण में बालक को किसी न किसी वियुक्ति का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए स्तन त्याग, बिना सहारे चलना, बिना सहारे भोजन करना, स्कूल जाना, विवाह करना आदि सभी के द्वारा व्यक्ति आत्म-निर्भर बनता है और इन सभी चरणों में किसी न किसी प्रकार की वियुक्ति अवश्य होती है- प्रथम प्रकार की वह वियुक्ति है जिसमें व्यक्ति अपनी इच्छा अनुसार अलग होता है। उदाहरण के लिए विवाह के समय वियुक्ति, तलाक के समय वियुक्ति, अधिक दिनों के लिए विदेश जाना आदि। इस प्रकार की इच्छायुक्त वियुक्ति अपेक्षाकृत कम अभिघातपूर्ण होती हैं क्योंकि इसमें व्यक्ति मानसिक रूप से पहिले से ही तैयार होता है। इच्छा भी सम्मिलित होती है। दूसरे प्रकार की वियुक्ति वह है जो आकस्मिक होती है। इस प्रकार की वियुक्ति अभिघातपूर्ण होती है क्योंकि के व्यक्ति की न तो इसमें इच्छा सम्मिलित होती है और न व्यक्ति इस प्रकार की वियुक्ति के लिए पहिले से तैयार होता है। इस प्रकार की वियुक्ति के कारण है- किसी प्रियजन की मृत्यु तथा स्तन त्याग आदि।

रैंक का विचार है कि वियुक्ति में जब इच्छा सम्मिलित होती है तब इस प्रकार की वियुक्ति व्यक्ति की अहं के विकास को वास्तविक बनाती है। अहं के इस प्रकार के विकास के विकास से अहं में आत्म-निर्भरता और स्वतन्त्रता के गुण विकास होता है। व्यक्ति में स्वतन्त्रता और आत्म-निर्भरता के स्थान पर आश्रितता का विकास होता है।

प्रत्येक प्रकार की वियुक्ति में कुछ न कुछ मात्रा में असुरक्षा की भावना को विकसित करती है। आकस्मिक वियुक्ति व्यक्ति की अपेक्षा अधिक मात्रा में वियुक्ति उत्पन्न करना है। जब नियुक्ति से सम्बन्धित आघात व्यक्ति से सम्बन्धित आघात व्यक्ति सहन नहीं कर पाता है जब व्यक्ति का व्यवहार असन्तुलित और असामान्य हो जाता है।

व्यक्तित्व विकास के चरण

रैंक का विचार है कि निम्न तीन चरणों के माध्यम से ही व्यक्ति को स्वायत्तता (Autonomy)प्राप्त होती हैः

1. प्रथम चरण: व्यक्ति के व्यवहार को दो प्रकार की शक्तियाँ निमन्त्रित करती हैं। पहिले पकार की शक्तियाँ बाह्य बल कहलाती है। उदहारण के लिए माता-पिता, समाज और नैतिक संहिता (Code) वह बाह्य के व्यवहार को नियन्त्रित करती है। दूसरे प्रकार की शक्तियाँ आन्तरिक बल कहलाती है। उदाहरण के लिए व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यताएँ, जैसे भूख, नियन्त्रित करती हैं। रैंक के अनुसार प्रथम अवस्था में व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करती है। रैंक के अनुसार प्रथम अवस्था में व्यक्ति इन बाह्य और आन्तरिक शक्तियों से सम्बन्धित व्यवहार को स्वेच्छा से करने लग जाता है। जब व्यक्ति बाह्य शक्तियों का अन्तःक्षेपित करता है तो बहुत कुछ सम्भावना होती है कि व्यक्ति का व्यवहार और व्यक्ति का व्यवहार और व्यक्तित्व समन्वित रहेगा। व्यक्ति सामाजिक मानकों के साथ तादात्मीकरण (Identification) भी स्थापित करता है। इस तादात्मीकरण से वह समाज के अन्य लोगों की भाँति बन जाता है और समाज में भिन्न रहने से जो पीड़ादायक अनुभव होते हैं उनसे उसे मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकार व्यक्ति में द्वन्द्व उत्पन्न होने की सम्भवना कम रहती है। इस अवस्था को प्राप्त करने वाला व्येक्ति एक औसत व्यक्ति होता हे जिसका व्यक्तित्व औसत सामान्य और औसत समायोजन वाला होता है।

2. **द्वितीय चरण** :- स्वायत्तता प्राप्त करने में व्यक्ति ऐसे मापदण्ड निर्मित करता है जो सामाजिक मापदण्डों से भिन्न होते है। उसका जीवन लक्ष्य, उसके आदर्श, नैतिकता सम्बन्धी विचार आदि सब कुछ समाज द्वारा

स्वीकृत तरीकों से भिन्न होते है। अतः इस कारण् के व्यक्ति में द्वन्द्व का रहना स्वाभाविक है। इस अवस्था में अन्तद्वन्द्व इस कारण भी उत्पन्न होता है। इच्छाशक्ति में विच्छेद होता है।

इस अवस्था को प्राप्त करने वाले व्यक्ति के अनेक प्रमुख लक्षण है, जैसे हीनता की भावना, अपराध की भावना, आत्म-आलोचना, अधिक उत्पादनशीलता, अधिक सृजनात्मकता आदि। चूँकि अवस्था को प्राप्त करने वाला व्यक्ति समाज में तादात्मीकरण स्थापित नहीं कर पाता है अतः उसमें समाज के कारण् द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं।

3. **तृतीय चरण**: एक प्रकार से यह तृतीय अवस्था प्रथम का ही उच्चतम रूप है। इस अवस्था की प्राप्ति प्रथम और द्वितीय अवस्था को पार करने के बाद प्राप्ति होती है। इस अवस्था में द्वितीय अवस्था की भाँति द्वन्द्व नहीं होते है। यह अवस्था परम आनन्द की अवस्था में होती है। इस अवस्था में व्यक्ति अपनी पतिभा को जगा लेता है। इस अवस्था को प्राप्त करने वाला व्यक्ति महान लेखक, कवि, वैज्ञानिक, कलाकार आदि कुछ भी बन सकता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व में सृजनात्मकता की विशेषता होती है।

रैंक का विचार है कि सभी प्रकार के मनस्ताप का कारण जन्म अभिघाद है। यह जन्म अभिघात व्यक्ति में चिन्ता का अगाध सागर उत्पन्न करता है। प्रत्येक वियुक्ति के समय व्यक्ति इस चिन्ता के सागर में डूब जाता है फलस्वरूप व्यक्ति में मानसिक विकार उत्पन्न होते है।

मानसिक विकारों के उत्पन्न होने का प्रमुख कारण व्यवहार सम्बन्धी सामाजिक मानक है। प्रत्येक मानसिक रोगी न अपने स्वयं के द्वारा निर्मित मानकों का पालन कर पाता है और मानसिक रोगी न अपने स्वयं के द्वारा निर्मित मानकों का जिक मानक है। प्रत्येक मानसिक रोगी न अपने स्वयं के द्वारा निर्मित मानकों का पालन कर पाता है और न वह समाज के मानकों के अनुसार चल पाता है। जब व्यक्ति सामाजिक मानकों के साथ तादात्मीकरण स्थापित नहीं कर पाता है, अपनी वैयक्तिकता स्थापित कर पाता है तो उसमें मानसिक विकार उत्पन्न हो जाता है।

4.3.3 मनोचिकित्सा (Psychotherapy)

मनोचिकित्सा में वियुक्ति से सम्बन्धित चिन्ता का निराकरण करना आवश्यक है। रैंक की मनोचिकित्सा पद्धति में रोगी के अचेतन के दमित विचारों और भावना ग्रन्थियों का विश्लेषण किया जाता है। रैंक फ्रायड की अपेक्षा संक्षिप्त किन्तु प्रभावी मनोचिकित्सा पद्धति को विकसित करना चाहता था। अमरीका में बसने के बाद रैंक के ने इच्छाशक्ति मनचिकित्सा पद्धति का विकास किया। प्रारम्भ में रैंक की चिकितसा पद्धति बहुत कुछ मनोविश्लेषण पर आधारित थी परन्तु इच्छाशक्ति-मनोचिकित्सा पद्धति का मनोविश्लेषण से कोई सम्बन्ध नहीं है।

इच्छाशक्ति-मनोचिकित्सा पद्धति रोगी के सक्रिय समायोजन पर आधारित है। इस चिकित्सा पद्धति का मुख्य उद्देश्य आत्म स्थापन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना है। इसमें रोगी को दो बातों के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है-(1) प्रथम यह है कि उसमें स्वास्थ्य-प्राप्ति की इच्छाशक्ति का विकास हो। (2) द्वितीय यह कि आत्म स्थापन में उत्पन्न अपराध की भावना से मुक्ति मिल सके।

आटो रेंक, फ्रायड का कट्टर अनुयायी था, परन्तु 1920 में इसने अपने विचारों को प्रकाश में लाने के लिए फ्रायड का साथ छोड़ दिया तथा स्वतन्त्र रूप में कार्य करने लगा। इसने भी एडलर तथा युग के समान फ्रायड के कुछ सिद्धान्तों का विरोध किया। इसके मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

4.3.4 जन्म संत्रास

जब तक शिशु गर्भ में रहता है, वह अत्यन्त सुखी और सुरक्षित रहता है। किन्तु जब उसका जन्म हो जाता है, तो उसे एक प्रकार का कठोर अनुभव होता है। इसलिए वह पुनः गर्भ में आना चाहता है। रेंक ने कहा कि पुरूष की सम्भोग की इच्छा- केवल गर्भाशय में जाने की पुनः एक लालसा है। प्रत्येक पुरूष पुनः गर्भ में जाना चाहता हैं, इसीलिए सम्भोग करता है। परन्तु उसे स्त्री के जननांगों को देखकर भय लगता हैं इस कारण वह माँ से भी भय करता है। पितृविरोधी ग्रन्थि के सम्बन्ध में रेंक ने कहा कि यह तो जन्म- चिंता की पुनरावृत्ति है। रेंक ने यह भी कहा कि स्त्री तथा पुरूष - दोनों ही स्त्री-जननांगों से ही घृणा करते हैं, और इस घृणा पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं हो पाता तो समलिंगीय काम-इच्छा जाग्रत हो जाती है। ये समस्त प्रक्रियाएँ दुःखदायी होती हैं। जन्म लेने का अर्थ है, दुःखपूर्ण वातावरण में पर्दापण करना। फ्रायड ने यह ता कहा था कि जन्म- प्रक्रिया दुःखदायी होती है, पर उसने जन्म-त्रास का उल्लेख नहीं किया था। पर रेंक ने कहा कि जन्म के समय शिशु को असहनीय दुःख या त्रास का अनुभव होता है। यही दुःख या त्रास बच्चे के जीवन में चिन्ता का रूप धारण कर लेता है। शिशु फिर अपनी चिन्ता से मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इसके लिए वह स्वतन्त्र रूप से इच्छा-शक्ति का प्रयोग करने लगता है।

4.3.5 संकल्प -शक्ति

बालक के जीवन में इच्छा-शक्ति का बड़ा महत्व है। इच्छा-शक्ति के विकास में तीन चरण होते है। सर्वप्रथमतः जब शिशु शैशवकाल में अपने माता-पिता के विरोधों तथा दबावों का विरोध करता है। जिस कहा। द्वितीयतः जब बालक ऐसे कार्य करता है जो सामाजिक दृष्टि से वांछनीय हैं, जब बालक वह कार्य करना चाहता है। जिन्हें दूसरें व्यक्ति करते हैं तथा उन वस्तुओं पर अधिकार करना चाहता हैं, जिन पर दूसरें व्यक्ति अधिकार करतें हैं तो इस प्रकार की इच्छा को रेंक ने प्रतिस्पर्धात्मक इच्छा कहा। तृतीयतः जब व्यक्ति अपनं आदर्शों तथा मान्यताओं के अनुसार कार्य करने लगता है तो इस प्रकार की इच्छा को रेंक ने 'विधायक इच्छा' कहा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिशु प्रारम्भ में माता-पिता का विरोध करता है। पर धीरे-धीरे वह माता-पिता में विरोधों का मूल्य समझकर उन्हीं के अनुसार कार्य करने लगता है। इस प्रकार इच्छा-शक्ति के निर्माण में माता-पिता का बड़ा हाथ रहता।

4.3.6 व्यक्तित्व

रेंक ने व्यक्तित्व के विकास की तीन अवस्थाँए बतलाई:

(अ) जब वह काम-इच्छा के जन्म तथा समाज के वातावरण में समायोजन स्थापित करता है तो यह व्यक्तित्व के विकास की प्रथम अवस्था है।

(ब) जब वह समाज के आदर्श एवं मूल्यों को ग्रहण करने की चेष्टा करता है तो यह विकास की दूसरी अवस्था है।

(स) जब वह प्रौढ़ावस्था में आ जाता है तो रेंक ने इस अवस्था को विकास की तीसरी अवस्था कहा है।

व्यक्तित्व के विकास के आधार पर रेंक ने तीन ही प्रकार के व्यक्तित्व का उल्लेख किया; यथा-

(अ) औसत प्रकार का व्यक्तित्व- इस प्रकार के व्यक्तित्व का व्यक्ति सदैव समझौते की चेष्टा करता है एवं संघर्षो से दूर रहता है।

(ब) मनस्तापी व्यक्तित्व- इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्तित्व वाला व्यक्ति समाज एवं वातावरण के प्रति घृणा प्रदर्शित करता है।

(स) सृजनात्मक व्यक्तित्व- इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से कार्य करने के इच्छुक होते हैं, सदैव रचनात्मक कार्यो में रूचि रखते हैं तथा अत्मा एवं इच्छा का इनमें अच्छा समन्वय होता है।

4.3.7 समाज एवं संस्कृति

रेंक ने जुंग की भाँति अनेक आदिम सभ्यताओं का भी अध्ययन किया। अनेक धर्मों का ज्ञान प्राप्त किया तथा इन सभ्यताओं तथा धर्मों में वर्णित योद्धाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया। ओडीपस गाथा की व्याख्या करते हुए रेंक ने कहा कि जन्म त्रासदायक है, अतः वह पुनः गर्भ में जाना चाहता हैं। परन्तु इस कार्य में वह पिता को विरोधी मानता है, अतः वह पितृ-विरोधी बन जाता है। दूसरी तरफ ओडीपस का पिता ल्यूस एक ऐसे व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जो काम को अस्वीकार करता है। क्योकि वह नहीं चाहता कि उसका कोई उत्तराधिकारी हो, स्वयं अपने आप को अमर उत्तराधिकारी बनाना चाहता है। वह सन्तान नहीं चाहता एवं अपने को अमर रखना चाहता है। फलतः बच्चे एवं पिता में संघर्ष पैदा होता है। इस प्रकार ओडीपस संघर्ष उस इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है जिसके अनुसार व्यक्ति न तो पुत्र बनना चाहता है और न पिता, वरन् स्वतन्त्र एवं स्वाधीन 'स्व' बनना चाहता है। यह व्यक्तिगत अहम् तथा काम अहम् के मध्य संघर्ष का द्योतक है। रेंक ने पितृ प्रमुख सभ्यता एवं मातृ-प्रमुख सभ्यता का भी विस्तृत रूप से उल्लेख किया।

अन्त में रेंक ने स्त्री एवं पुरूष के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये है। उनका ज्ञान भी जरूरी है। रेंक ने कहा कि पुरूषों में सृजनात्मक शक्ति अधिक होती है। तथा स्त्रियों में काम-शक्ति अधिक होती है। स्त्री अपने शरीर की संरचना के कारण सदैव संरक्षण के लिए चेष्टावान रहती हैं, जबकि पुरूष स्वार्थी एवं घमण्डी होता है, वह अपनी मर्यादा या अहम् के संरक्षण के लिए प्रयत्नशील रहता है अतः यह कहना कि स्त्री-पुरूष शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से समान होते है, एक भूल है। दोनों में बहुत अन्तर होता है उनके शरीर की संरचना पृथक होती है, उनकी मनोवैज्ञनिक विचारधाराएँ भित्र होती हैं, अतः वे कभी भी समान नहीं हो सकते। फिर भी एक-दूसरें का एक-दूसरे के बिना काम नहीं चल सकता,अर्थात् वे समान नहीं है वरन् एक-दूसरे के पूरक है।

4.4 सारांश

करेन हार्नी प्रारम्भ में फ्रायड की अनुयायी रही हैं। किन्तु आगे चल कर के इन्होंने अपने सिद्धान्त में कुछ परिवर्तन किया तथा कहा कि मानवीय क्रियायें मात्र सुख सिद्धान्त पर कार्य नहीं करती हैं। बल्कि यह सुरक्षा एवं संतोष द्वारा नियंत्रित होती है। मनोविश्लेषण के क्षेत्र में हार्नी का प्रमुख योगदान यह रहा कि इन्होंने मनस्ताप को विश्लेषण का मुख्य क्षेत्र माना तथा इसके कारणों को पूर्ण रूप से वातावरण से संबंधित बताया। इस प्रकार हार्नी का मनोचिकित्सा के क्षेत्र में अत्यन्त सराहनीय योगदान रहा है।

जन्म अभिघात को व्यक्तित्व का केन्द्र सर्वप्रथम रैंक के माना। रैंक का विचार है कि गर्भस्थ शिशु के लिए गर्भाशय एक आनन्दपूर्ण परिस्थिति है जहाँ उसे अत्यन्त सुख प्राप्त होता है। मानव-जीवन में शिशु का जन्म एक तीव्रता आघातपूर्ण घटना है। इसी प्रकार बालक को अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के आघातों को सहन करना पड़ता है। इसके लिए उसे अपनी इच्छाओं का दमन करना पड़ता है एवं सामाजिक रूप से आत्मक निर्भर होना पड़ता है जो उसके व्यक्तित्व के विकास का आधार बनता हैं।

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आटो रैंक के जन्म अभिघात सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
2. आटो रैंक का सिद्धान्त व्यक्तित्व विकास की व्याख्या करने में कहा तक उपयोगी है। स्पष्ट कीजिए।
3. करेन हार्नी के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
4. करेन हार्नी का स्वप्न सिद्धान्त फ्रायड एवं युंग के सिद्धान्तों से कहां तक भिन्न है? स्पष्ट कीजिए।

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हार्नी, के0 अवर इनर कन्फिलक्ट, डब्लू डब्लू नार्टन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1945
2. हार्नी, केटेन सेल्फ एनालिसिस, नार्टन, न्यूयार्क, 1942
3. हार्नी, कारेन दि न्यूरोटिक पर्सनाल्टी आफ अवर टाइम, नार्टन, न्यूयार्क, 1937
3. सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
4. वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981
5. चैबे, सरयू प्रसाद, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2002
6. सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004।
7. श्रीवास्तव, ज्ञानानन्द प्रकाश, शिक्षा मनोविज्ञान नवीन विचारधारायें, कान्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2002,

इकाई-05

मूल मनोसामाजिक प्रक्रियायें:अभिप्रेरणा एवं सीखना

Basic Psychological processes:Motivation & Learning

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 अभिप्रेरणा

- 5.1.1 प्रेरणा का अर्थ
- 5.1.2 प्रेरणा का परिभाषा
- 5.1.3. प्रेरणा का सिद्धान्त (अब्राहम मैस्लो का सिद्धांत)

5.2 सीखना

- 5.2.1 सीखने की परिभाषा
- 5.2.2 सीखने की परिभाषा
- 5.2.3 सीखने को प्रभावित करने वाले करक
- 5.2.4 सीखने के सिद्धान्त

5.3 सारांश

5.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.5 संदर्भ ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- अभिप्रेरणा की अवधारणा बता सकेंगे।
- अभिप्रेरणा का अर्थ तथा उसकी परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- अभिप्रेरणा की विशेषताओं तथा अभिप्रेरणा के महत्व के विषय में बता सकेंगे ।
- सीखने का अर्थ तथा परिभाषा बता पाने में सक्षम हो सकेंगे
- सीखने को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कर सकेंगे
- सीखने के नियम और सिद्धान्तों पर प्रकाश डाल सकेंगे ।

5.1 अभिप्रेरणा (Motivation)

अभिप्रेरणा एक मानवीय पहलू है, जो व्यक्ति को उसके लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रेरणा देती है। इसके साथ ही अभिप्रेरणा प्रबन्ध की एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित अथवा प्रोत्साहित किया जाता है। इसके माध्यम से व्यक्ति का मनोबल ऊंचा उठता है।

5.1.1 अभिप्रेरणा का अर्थ (Meaning of Motivation)

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभिपे्ररणा अति महत्वपूर्ण है। आज प्रत्येक व्यक्ति मानवीय अभिप्रेरण के बारे मे चिन्तनशील है। इस प्रकार मानवीय अभिप्रेरणा एक बहुचर्चित विषय बन गया है जो इस बात को स्पष्ट करता है कि मानवीय पहलू को अभिप्रेरित करने वाली परम्परागत विधियां आज बिल्कुल निष्क्रिय साबित हो चुकी है। अभिप्रेरणा, प्रबन्ध का एक व्यापक कार्य है, जो मानव शक्ति से संबंधित है। अतः ठीक ही कहा गया है कि ''अभिप्रेरणा प्रबन्ध का मानवीय पहलू है।''

प्रत्येक व्यक्ति में कार्य करने की क्षमता होती है लेकिन कार्य करने की क्षमता और इच्छा दो अलग-अलग तत्व है। एक व्यक्ति कितना भी योग्य, अनुभवी और कार्य करने की दक्षता रखता हो लेकिन यदि उसकी कार्य करने की इच्छा नहीं तो इन सभी का कोई महत्व नहीं रहता। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उस व्यक्ति की क्षमता के अनुसार कार्य करने की इच्छा जागृत की जाय। इस प्रकार किसी व्यक्ति की कार्य करने क्षमता को जागृत करने हेतु उसे अभिप्रेरित करना आवश्यक होता है जो ''अभिप्रेरणा'' कहलाता है। वास्तव मे अभिप्रेरणा एक ऐसी शक्ति है जो व्यक्तियों में कार्य करने की इच्छा जागृत करती है।

अभिप्रेरणा की विभिन्न परिभाषाओं एवं मानवीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अभिप्रेरणा में कई लक्षण होते हैं जो इसकी प्रकृति को स्पष्ट करते हैं। वस्तुतः अभिप्रेरणा प्रबन्ध की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों को कार्य करने के लिए प्रेरित अथवा प्रोत्साहित किया जाता है। अभिप्रेरणा द्वारा मानव शक्ति को एक वांछित दिशा में मोड़ा जा सकता है। अभिप्रेरणा एक सत्त प्रक्रिया है जिसका कभी अन्त नहीं होता। व्यक्तियों की कार्य के प्रति रूचि बनाये रखने के लिए निरंतर अभिप्रेरणा की आवश्यकता होती है। मानवीय आवश्यकताओं के बदलने पर अभिप्रेरणा के तरीकों में भी समय-समय पर परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है। अभिप्रेरणा मानवीय साधनों से गतिमान होता है। केवल मनुष्यों को ही अभिप्रेरित किया जा सकता है। अभिप्रेरणा का सम्बन्ध भावनाओं एवं आकांक्षाओं के प्रकटन से है; अतः मशीन, पूँजी जैसी निर्जिव वस्तुओं को अभिप्रेरित नहीं किया जा सकता। अभिप्रेरणा का सम्बन्ध मनोविज्ञान से है जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर ही उदय होता है। मानव की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे भोजन, हवा, पानी, वस्त्र, आराम, आत्म सम्मान, सुरक्षा एवं आवास आदि का मानवीय व्यवहार पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है और ये सभी अचेतन रूप से अभिप्रेरक का कार्य करती हैं।

प्रत्येक मनुष्य एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में होता है और उसके शरीर के किसी भी भाग को उससे अलग नहीं किया जा सकता है। अतः मनुष्य सम्पूर्ण रूप से अभिप्रेरित होता है, उसके किसी एक भाग को पृथकतया अभिप्रेरित नहीं किया जा सकता है। संगठन के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मानवीय आवश्यकताओं के अनुरूप सम्पूर्ण व्यक्ति को अभिप्रेरित करने की आवश्यकता होती है। मनुष्यों को अभिपे्ररित करने के लिए अभिप्रेरणा की विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। ये विधियाँ आर्थिक एवं अनार्थिक दोनों प्रकार की हो सकती है। आर्थिक अभिप्रेरणा में मजदूरी में वृद्धि, अधि लाभांश, पुरस्कार आदि एवं अनार्थिक अभिप्रेरणा में प्रशंसा, प्रबन्ध में हिस्सा, मानवोचित व्यवहार, सेवा-सुरक्षा आदि सम्मिलित हैं। आवश्यकताएँ अभिप्रेरणा की जननी है अतः अभिप्रेरणा मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का एक साधन है। मानव की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति

हेतु प्रबन्धकों द्वारा विभिन्न अभिपे्ररणा विधियों का प्रयोग किया जाता हैं। अभिप्रेरणा से मानवीय कार्य-सन्तुष्टि को बल मिलता है। मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अभिप्रेरणा प्रदान किया जाता है। अतः अभिपे्ररणा ही सन्तुष्टि का मूल कारण है, परन्तु आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से मानव में पुनः अधिक कार्य करने की अभिरूचि जाग्रत होती है। अतः इस स्थिति में अभिप्रेरणा सन्तुष्टि का परिणाम है। अभिप्रेरणा को मनोबल से भिन्न समझना चाहिए।

5.1.2 अभिप्रेरणा का परिभाषा

अभिप्रेरणा को अंग्रेजी में Motivation कहते हैं। इस शब्द की उत्पत्ति अंग्रेजी के Motum शब्द से हुई है जिसका शब्दकोष के अनुसार अर्थ है कि व्यक्ति में किसी ऐसी शक्ति का होना जो उसे कार्य की इच्छा को जागृत करने हेतु हमें उसे अभिप्रेरित करना होता है। जिसे अभिप्रेरणा कहते है। अभिप्रेरणा को विभिन्न विद्धानों ने विभिन्न ढंग से परिभाषित किया है।

अभिप्रेरणा की कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार है:-

केरोल शार्टल के अनुसार, *''अभिप्रेरणा एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति या निर्दिष्ट दिशा में अग्रसर होने की इच्छा या तनाव है।''*

डेल एस. बीच के अनुसार, *''अभिप्रेरणा को एक लक्ष्य या पारितोषण प्राप्त करने की शक्ति के विस्तार की इच्छा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।*

माइकल जे. जुसियस के अनुसार, *''अभिप्रेरणा स्वयं को या किसी अन्य व्यक्ति को इच्छित कार्य करने हेतु प्रोत्साहित करने की क्रिया है अथवा एक वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए सही बटन दबाना है।''*

स्टेनले वेन्स के अनुसार, *''अभिप्रेरणा के अन्तर्गत कोई भी ऐसी भावना या इच्छा सम्मिलित होती है जो किसी व्यक्ति की इच्छा को इस प्रकार बना देती है कि वह कार्य करने को प्रेरित हो जाय।*

मेक्फारलैण्ड के अनुसार, *अभिप्रेरणा एक विधि है जिसमें संवेगों, उद्वेगों, इच्छाओं, आंकाक्षाओं, प्रयासों एवं आवश्यकताओं द्वारा व्यवहार का निर्देशन, नियंत्रण एवं स्पष्टीकरण किया जाता है।*

जुसियस एवं श्लेण्डर के अनुसार, *अभिप्रेरणा किसी व्यक्ति को इच्छित कार्य करने हेतु अभिप्रेरित करने की क्रिया हैं।*

राबर्ट ड्यूबिन के अनुसार, *''अभिप्रेरणा उन शक्तियों का समूह है जो किसी संगठन में एक व्यक्ति का कार्य प्रारम्भ करने और उसपर बने रहने को प्रेरित करता है।''*

ओवन के अनुसार, *''अभिप्रेरणा इस तथ्य का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का एक व्यवस्थित तरीका है कि कोई व्यक्ति अपनी शक्तियों के प्रवाह की अन्य दिशा की बजाय एक विशेष दिशा ही क्यों चुनता है।''*

विलियम जी. स्काट के अनुसार, *''अभिप्रेरणा शक्तियों को इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य करने के लिए प्रेरित करने की एक प्रक्रिया है।''*

विलियम ग्लूक के अनुसार, *''अभिप्रेरणा आन्तरिक स्थिति है जो मानवीय व्यवहार को अर्जित, प्रवाहित एवं क्रियाशील रखती है।*

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि अभिप्रेरणा से आशय उस मनोवैज्ञानिक उत्तेजना से है जो व्यक्तियों को कार्य के प्रति प्रोत्साहित करती है, कार्य में गति बनाये रखती है और अधिकतम संतुष्टि प्रदान करती है।

परम्परागत प्रबन्ध के अन्तर्गत कर्मचारियों की इच्छाओं, भावनाओं, अभिलाषाओं आदि को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। कर्मचारी को दास बनकर सेवा नियोजक के यहां कम वेतन पर अधिक समय तक कार्य करना होता था। कर्मचारी को उत्पादन के अन्य साधनों के समान केवल एक साधन मात्र ही माना जाता था जिसके श्रम को वस्तु की भांति क्रय-विक्रय किया जा सकता था। सेवानियोजकों की यह धारणा थी कि कर्मचारियों के लिए कल्याणकारी कार्य करना उनके अभिप्रेरणा का कोई महत्व नहीं था। लेकिन वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रादुर्भाव और परिस्थितियों में तीव्र गति से परिवर्तन ने सेवानियोजकों को मानवीय सम्पदा पर सर्वाधिक ध्यान देने के लिए बाध्य कर दिया और कर्मचारी के श्रम को क्रय-विक्रय की वस्तु न मानकर उत्पादन का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाने लगा। फलतः अभिप्रेरणा की आवश्यता एवं महत्व को स्वीकार किया गया।

'कार्य की क्षमता' और 'कार्य करने की इच्छा' दो अलग-अलग तथ्य हैं। एक व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, तकनीकी सभी दृष्टियों से कार्य करने के योग्य हो लेकिन वह कार्य करना हीं चाहता अर्थात् उसकी कार्य करने की इच्छा नहीं है और इस हेतु उसे अभिप्रेरित किया जाये।

वास्तव में संस्था के कर्मचारियों को आवश्यक अभिप्रेरणायें प्रदान करने से निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति अत्यन्त सरल हो जाती है। अभिप्रेरणाओं से कर्मचारियों की कार्य करने की इच्छा जाग्रत हो जाती है और उनके प्रयास निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर ही होते हैं। एक संस्था के पास भले ही प्रचुर मात्रा में वित्तीय साधन हो, उच्च किस्म का कच्चा माल हो, आधुनिक मशीने हों और प्रशिक्षित कर्मचारी हों लेकिन उत्पादन में वृद्धि उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि कर्मचारियों में कार्य करने की इच्छा जाग्रत न हो। अतः कर्मचारियों की कार्य करने की इच्छा जाग्रत कर निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उन्हें मौद्रिक एवं अमौद्रिक प्रेरणायें दिया जाना आवश्यक है। वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रादुर्भाव के साथ-साथ ही सौहार्दपूर्ण मानवीय सम्बन्धों की स्थापना की ओर सभी का ध्यान आकृष्ट किया है। मानवीय सम्बन्ध विचारधारा इस तथ्य पर बल देती है कि कर्मचारी पहले मानव है और बाद में कर्मचारी। अतः उसके साथ मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। अब यह विचारधारा पुरातन है कि जो कर्मचारी को उत्पादन के अन्य साधनों के समान क्रय-विक्रय की वस्तु मानकर चलती थी। वित्तीय और अवित्तीय प्रेरणायें इस दिशा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

उत्पादन के विभिन्न साधनों में 'मानव' एक महत्वपूर्ण साधन है। इस साधन के सदुपयोग पर ही संस्था की प्रगति का मुख्य आधार है अतः उन्हें विभिन्न प्रकार की अभिप्रेरणायें प्रदान की जानी चाहिए। अभिप्रेरित कर्मचारी अपनी पूर्ण योग्यता एवं क्षमता से कार्य करता है और संस्था का विकास ही अपना ध्येय समझता है। कर्मचारियों को आवश्यक प्रेरणायें प्रदान करने से सौहाद्रपूर्ण श्रम सम्बन्धों का निर्माण किया जा सकता है और औद्योगिक अशान्ति को दूर किया जा सकता है। श्रम सम्बन्धों में कटुता आने का प्रमुख कारण कर्मचारियों को ठीक ढंग से अभिप्रेरित न करना माना गया है। अभिप्रेरित कर्मचारी सकारात्मक विचारधारा अपनाते हैं। अभिप्रेरणाओं से जहां एक ओर उनकी कार्यकुशलता एवं मनोबल में वृद्धि की जाती है, वहां दूसरी ओर उनकी शिकायतों एवं परिवेदनाओं में भी कमी आती है। फलतः प्रबन्ध और श्रम के मध्य अशान्ति या मन-मुटाव का वातावरण उत्पन्न ही नहीं हो पाता। इस प्रकार अभिप्रेरणाओं का प्रबन्ध एवं श्रम के मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना के लिए विशेष महत्व हैं। अभिप्रेरणायें प्रदान करके कर्मचारियों का परिवर्तनों के प्रति जो नकारात्मक दृष्टिकोण होता है उसे सकारात्मक रूख में परिवर्तन किया जा सकता है। इस वैज्ञानिक युग में परिवर्तनों की भरमार है और उनके प्रति

नकारात्मक रूख अपनाकर सफलता की कामना करना बड़ी भूल है। अतः अभिप्रेरित कर्मचारी सहर्ष ही इन परिवर्तनों को स्वीकार करने का मानस बना लेता है और उनकी क्रियान्वित हेतु उपयोगी सुझाव भी प्रस्तुत करता है। कर्मचारियों की अनुपस्थिति में कमी लाने में तो अभिप्रेरणायें सहायक हैं ही, साथ ही उनके आवागमन को रोकने के लिए तो अभिप्रेरणा की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। अभिप्रेरित कर्मचारी अपवाद स्वरूप परिस्थितियों में ही एक संस्था को छोड़कर अन्य संस्था में सेवा करने का विचार बनाता है। कर्मचारियों को सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, आर्थिक सभी प्रकार की आवश्यकताओं की संतुष्टि प्रदान करने हेतु वित्तीय और अवित्तीय प्रेरणायें दी जानी आवश्यक है। कर्मचारियों की कार्य संतुष्टि के लिए अभिप्रेरणाओं का विशेष महत्व है। संस्था की सम्पूर्ण कार्यक्षमता में वृद्धि करने के लिए भी अभिप्रेरणा का महत्व बढ़ता जा रहा है। नवीन एवं आधुनिक साधनों के प्रयोग हेतु भी कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना आवश्यक है। अभिप्रेरणा प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रबन्धकों को मानवीय व्यवहार का विश्लेशण एवं अध्ययन कर अवसर मिलता है। इससे वे मानव व्यवहार को और अधिक अच्छी तरह समझते हुए स्वयं व्यवहार कुशलता का परिचय देते हैं। इस प्रकार अभिप्रेरणा प्रबन्ध विकास में सहायक हैं। संस्था की ख्याति में वृद्धि हेतु अभिप्रेरणा का विशेष स्थान है। अभिप्रेरित कर्मचारी उसी संस्था में कार्य करना पसन्द करते हैं और दूसरी संस्थाओं के कुशल कर्मचारी भी उस संस्था की ओर आकर्षित होते हैं।

5.1.3 प्रेरणा के सिद्धान्त (अब्राहम मैस्लो)

अब्राहम एच. मैस्लो एक सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थे जिनका चिन्तन एवं लेखन मानव सहित जीव जन्तुओं के व्यवहार के विविध पक्षों से सम्बन्धित रहा है। यहां प्रस्तुत विवरण मे मैस्लो के अभिप्रेरणा सम्बन्धी विचारों का संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण किया जा रहा है:-

अभिप्रेरणा सिद्धान्त के तर्कवाक्य या प्रस्ताव:

अभिप्रेरणा को नवीन रूप में मैस्लो ने सन् 1938 में प्रस्तुत किया था। अभिप्रेरणा के आधुनिक अर्थ से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जो कार्य करने की क्षमता तथा कार्य करने की इच्छा के मध्य सम्पर्क का कार्य करती है। यह प्रक्रिया आवश्यकताओं से शुरू होती है तथा लक्ष्यों या प्रेरणाओं को प्राप्त करती है। इस बीच उत्प्रेरक या चालक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

आपने सन् 1943 में पत्रिका के 5वें अंक में प्रकाशित अपने लेख में अभिपे्ररणा सिद्धान्त की मूलभूत बातों (प्रस्तावों) के सन्दर्भ में चर्चा की है। यह प्रस्ताव निम्नलिखित हैं :-

1. अभिप्रेरणा सिद्धान्त का मूल रूप से मनुष्य की एकीकृत सम्पूर्णता पर निर्भर है अर्थात अभिप्रेरणा में बहुधा सम्पूर्ण व्यक्ति प्रभावित होता है न कि व्यक्ति का एक भाग।
2. अभिप्रेरणा सिद्धान्त मे भूख उत्प्रेरक ही मुख्य केन्द्रीय बिन्दु नहीं है।
3. अभिप्रेरणा सिद्धान्त अन्तिम लक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए न कि आंशिक हो न कि चेतन।
4. अभिप्रेरणा द्वारा व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति या संस्तुष्टि एक साथ हो सकती है।
5. समस्त सावयवी स्थितियों को अभिप्रेरित करने वाली स्थितियों के रूप में देखा जाता है।
6. मनुष्य की समस्त आवश्यकताएं प्रबलता या अपनी अतिशक्ति द्वारा ही व्यवस्थित होती है।

7. अभिप्रेरणाओं का वर्गीकरण उत्प्रेरको की विशिष्टता या सामान्यीकरण के स्तर की समस्या के आधार पर होना चाहिए।

8. अभिप्रेरणा सिद्धान्त मानव केन्द्रित है।

9. अभिप्रेरणा में क्षेत्र की स्थिति पर भी विचार किया जाना चाहिए।

10. अभिप्रेरणा सिद्धान्त व्यवहारवादी उपागम का समानार्थी नहीं है।

मैस्लों ने उपर्युक्त वर्णित तर्कवाक्य या प्रस्ताव या आधारभूत मान्यताएं इस उद्देश्य के साथ प्रस्तुत की थीं कि जब भी कोई सैद्धान्तिक दृष्टि से अभिप्रेरणा का अध्ययन करें तो इन्हें ध्यान मे रखें।

मैस्लों ने अभिप्रेरणा सिद्धान्त का आवश्यकताओं की क्रमबद्धता नामक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है, वह मुख्य रूप से अभिप्रेरणा सिद्धान्त के बहुलवादी या अनेकवादी सिद्धान्तों की श्रेणी मे आता है। बहुलवादी या अनेकवादी सिद्धान्त मानव की न केवल एक आवश्यकता को प्रेरणा का बिन्दु हीं नहीं मानता है साथ-साथ कई आवश्यकताओं की पूर्ति महत्वपूर्ण मानता है। मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्रियों तथा प्रबन्ध वैज्ञानिक ने संगठन मे मानव की निम्नांकित आवश्यकताओं के बारे में चर्चा की है:-

a. शारीरिक या जीवन-निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताएं।
b. सुरक्षा स्थायितव तथा निश्चितता की आवश्यकताएं।
c. समाजिक आवश्यकताएं।
d. सम्मान एवं स्वाभिमान की आवश्यकताएं।
e. आत्मसिद्ध की आवश्यकताएं।
f. अच्छे कार्य की पहचान या मान्यता की आवश्यकताएं।
g. अन्य आवश्यकताएं।

अब्राहम मैस्लो बहुलवादी सिद्धान्त के समर्थक हैं, जिन्होंने आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। मैस्लों ने अपने लेख द्वारा यह सिद्ध किया कि मनुष्य की आवश्यकताएं अनन्त है। अतः उन्हें एक साथ संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। संगठन तथा व्यक्ति का रिश्ता व्यक्ति की आवश्यकताओं के स्वरूप एवं पूर्ति पर निर्भर करता है।

शुरूआत में मैस्लों ने उपरोक्त (a से e तक) वर्णित पांच प्रकार की आवश्यकताएं ही बताई थी किन्तु बाद में उन्होंने शारीरिक आवश्यकताओं एवं सुरक्षा आवश्यकताओं के मध्य उत्तेजना आवश्यकताओं सहित अन्य स्तरों की आवश्यकताओं में भी स्तरों को बढ़ाकर समाहित किया था। सन् 1963 में मैस्लों ने कहा था - ***आवश्यकताओं की क्रमबद्धता सम्बन्धी मेरे विचार को सैकडों पुस्तकों मे तथा पचासों तरह से चित्रित किया जा चुका है लेकिन मुझे नहीं लगता कि ऐसी भी कोई स्थिति सचमुच आती होगी जब मनुष्य की कोई इच्छा शेष न रहे।***

मैस्लों ने यह भी माना है कि उनका यह सिद्धान्त मैक्स वैथीमायर अल्फ्रेरड एडलर वाल्टर बी कैनन तथा अन्य विद्वानों के विचारों का सम्मिश्रण भी है अतः इसे सामान्य गतिशील सिद्धान्त भी कहा जा सकता है।

मैस्लों ने बताया कि सर्वप्रथम मनुष्य की शारीरिक या दैहिक आवश्यकताएं यथा भूख, प्यास कामवासना तत्पश्चात सुरक्षा आवश्यकताएं यथा प्राकृतिक विपत्तियां, खतरें अभाव तथा आपराधिक गतिविधियों से सुरक्षा

इत्यादि है। तीसरे चरण में समाजिक आवश्यकताएं तथा अपनत्व तथा प्यार की आवश्यकताएं आती है। व्यक्ति प्रेम सौहार्द सहयोग तथा मित्रता चाहता है। इसके पश्चात मुनष्य स्वाभिमान की आवश्यकताओं जैसे सफलता , सम्मान प्रतिष्ठा पहचान मान्यता तथा सत्ता की कामना करता है। पांचवे एवं शीर्ष शिखर पर वह चरमोत्कर्ष या आत्मसिद्धि की आवश्यकता अर्थात आगे बढने की इच्छा, सफलता के साथ कार्य में निपुणता तथा स्वयं की एक विशिष्ट पहचान चाहता है। इन सब आवश्यकताओं की क्रमशः पूर्ति या संस्तुष्टि ही अभिप्रेरणा प्रदान कर सकती है।

मैस्लों के इस अभिप्रेरणा सिद्धान्त की मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित है:-

1. व्यक्ति की आवश्यकताएं क्रमशः निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर जाती है। भोजन पानी कामवासना निम्नतम आवश्यकताएं है तो आत्मसिद्धि की आवश्यकता उच्चतम है। शारीरिक एवं सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं को मैस्लों ने जन्मजात आवश्यकताएं तथा सामाजिक स्वाभिमान एवं आत्मसिद्धि की आवश्यकताओं को अर्जित आवश्यकताएं बताया है।

2. निम्न श्रेणी की आवश्यकताएं पूरी होने या संस्तुष्टि होने या संस्तुष्टि मिलने पर उच्च श्रेणी की असंतुष्टि या आवश्यकता अपना स्थान बनाती है।

3. जब तक निम्न श्रेणी की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होगी तब तक उच्च श्रेणी की आवश्यकता अपना स्थान नहीं बना सकती है।

4. मैस्लों का मानना है कि जो आवश्यकताएं हमेशा संस्तुष्टि प्राप्त करती रही हों उन आवश्यकताओं की कभी पूर्ति नहीं भी हो पाती है, तो व्यक्ति एक सीमा तक सहन करने की क्षमता भी विकसित कर लेता है।

5. मैस्लों यह भी मानते हैं कि जिस आवश्यकता की जितनी कम संस्तुष्टि होती है, वह आवश्यकता व्यक्ति के लिए उतनी ही प्रभावी होती जाती है। मैस्लों ने इसे अतृप्त आवश्यकताओं का अभाव एवं प्रभुत्व नाम दिया है।

6. मैस्लों यह कहते हैं कि संतुष्ट आवश्यकता मानवीय व्यवहार को अभिप्रेरित नहीं कर सकती है।

7. मैस्लों यह भी स्वीकारते हैं कि मानव के लिए स्वयं में पूर्ण संस्तुष्टि हो जाने की स्थिति कभी नहीं आती है अतः अभिप्रेरणा का आधार सदैव बना रहता है।

8. मनुष्य की आवश्यकताएं जितनी उच्च स्तरीय होंगी, जीवन रक्षा की दृष्टि से उनका महत्व उतना ही कम होगा लेकिन वैचारिक महत्व ऊँचा होगा।

9. कोई भी व्यक्ति अपना आत्म मूल्यांकन उच्च स्तरीय आवश्यकताओं के आधार पर ही करता है।

10. मैस्लों ने यह भी बताया है कि आवश्यकताओं की इस क्रमबद्धता मे कोई जडत्व नहीं है अर्थात किसी व्यक्ति के लिए सामाजिक आवश्यकताएं सर्वाधिक महत्वपूर्ण है तो कोई स्वाभिमान को महत्वमपूर्ण मानता है। कोई व्यक्ति थोडे में से ही संतुष्ट हो जाता है या प्रसन्न हो जाता है तो कोई मानसिक रूप से अपरिपक्क हो सकता है। एक आवश्यकता जब लम्बे समय तक पूरी होती है तो वह प्रभावित करने की क्षमता खो देती है।

11. संतुष्टि एक तुलनात्मक शब्द है। एक के बाद दूसरी आवश्यकता यकायक नहीं उभरती है बल्कि यह क्रमबद्ध किन्तु अनिश्चितकालीन प्रघटना है।

12. मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं सारी दुनिया में एक जैसी है अर्थात इनमें समाज एवं संस्कृति से बहुत अधिक अंतर नहीं आता है।

आवश्यकताओं की क्रमबद्धता

मैस्लों ने आवश्यकताओं की क्रमबद्धता इस प्रकार वर्णित की है:-

1. शारीरिक आवश्यकताएं (Physiological Needs)

मनुष्य प्रथमतः भोजन तथा अन्य दैहिक सुखों के बारे में सोचता है इससे आगे तब ही सोचेगा जबकि शारीरिक आवश्यकताएं पूरी हो जायेगी अर्थात भूखे पेट भजन हीं होते। इन आवश्यकताओं में हवा पानी रोटी कपड़ा मकान निद्रा तथा सेक्स सम्बन्धों की इच्छा पूर्ति सम्मिलित है।

2. सुरक्षा की आवश्यकताएं (Safety and Security Needs)

प्रत्येक व्यक्ति खतरों तथा विपत्तियों से अपना बचाव करना चाहता है। जिस प्रकार एक बच्चा अपनी सुरक्षा के प्रति आशंकित रहता है किन्तु माता पिता के आश्वासन एवं संरक्षण में सुरक्षित महसूस करता है उसी प्रकार व्यक्ति, सरकार तथा अपने संगठन से सुरक्षा चाहता है। शनैः शनैं वह सुरक्षा के प्रति आश्वस्त होता चला जाता है। इसी प्रकार सुरक्षा आवश्यकताओं में मैस्लों ने ेमबनतपजल शब्द पृथक से प्रयुक्त किया है जो यह बताता है कि व्यक्ति सुरक्षा की गारंटी, स्वतंत्रता तथा भयमुक्ति चाहता है। खतरों से मुक्ति , आजीविका की चिन्ता से छुटकारा, संरक्षण, स्थायित्व तथा तनावांे एवं हानि से मुक्ति भी इसी श्रेणी में सम्मिलित है। इस स्तर पर वयक्ति भविष्य की चिन्ता भी करता है। यदि सुरक्षा खतरें में है तो व्यक्त् िआगे की आवश्यकता पर विचार नहीं करता है।

3. सामाजिक या अपनत्व प्यार की आवश्यकताएं (Love and Belongingness Needs)

शरीर के सुख तथा सुरक्षा की आवश्यकताएं पूरी होने पर व्यक्ति चाहता है कि उसे संगठन या समाज से स्नेह ममता प्यार मित्रत्रा तथा शुभकामनाएं मिले। इन आवश्यकताओ में प्रमुखतः माता पिता, पति पत्नी, भाई बहिन, बच्चे तथा मित्र है और इसके पश्चात अन्य व्यक्तियों का अपनत्व जरूरी सा लगता है। यह आवश्यकताएं शारीरिक तथा सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति होते ही सामने आने लगती है। प्रत्येक व्यक्ति प्रेम, मैत्री सहयोग अपनत्व तथा सम्बद्धता चाहता है। इसीलिए वह अनौपचारिक संगठनों तथा अन्य संघों का सदस्य बनता है।

4. स्वाभिमान एवं प्रतिष्ठा सम्बन्धी आवश्यकताएं (Esteem Needs)

मनुष्य में स्वाभिमान या प्रतिष्ठा, पहचान तथा शक्ति की भी आवष्यकता होती है। व्यक्ति चाहता है कि लोग उसका सम्मान करें, इज्जत दें, उसे प्रभावशाली समझे और उसके कार्य को मान्यता मिले। आत्मसम्मान तथा स्वाभिमान की यह आवश्यकताएं दों प्रकार की है।

सामान्यतः उपलब्धि की आवश्यकताएं आत्मविश्वास, शक्ति, स्वाग्रह तथा आत्मनिर्भरता के रूप में व्यक्त होती है जबकि मान्यता की आवश्यकताएं दूसरों से सम्मान की अन्य की तुलना में, समाज में प्रतिष्ठा, ध्यानाकर्षण तथा महत्वपूर्ण व्यक्ति बनने की इच्छा के रूप में अभिव्यक्ति होती है। यदि ये आवश्यकताएं पूरी न हो तो व्यक्ति हीन कमजोर असहाय तथा कुठित महसूस करता है। यह आवश्यकताएं व्यक्ति के व्यक्तित्व को ढालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी पद के प्रभाव तथा शक्ति से जुड़ा शब्द है जबकि म्ेजममउ व्यक्ति के कार्य का मूल्यांकन तथा समाज द्वारा प्रदर्शित आदर है। यह आवश्यकताएं व्यक्ति के महत्व को प्रगट करती है तथा व्यक्ति में आत्मविश्वास उत्पन्न करती है। मैस्लों कहते हैं कि संगठनात्मक जीवन में इन आवश्यकताओं का बहुत बड़ा

महत्व है किन्तु दुखद पक्ष यह है कि औद्योगिक एवं वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों के निम्न स्तरीय पदों पर काग्ररत व्यक्तियों की इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बहुत कम अवसर उपलब्ध होते हैं।

5. आत्मसिद्धि या चरमोत्कर्ष सम्बन्धी आवश्यकताएं (Self Realization)

पांचवे चरण में आत्मसिद्धि या चरमोत्कर्ष की आवश्यकता आती है। आत्मसिद्ध नामक यह शब्द प्रथम बार कुर्ते गोल्डस्टीन एवं कार्ल रोजर्स द्वारा प्रयुक्त किया गया है। यह मानव की उच्चतम आवश्यकता है जिसमें जीवन के अर्थ तथा लक्ष्य को खोजा जाता है। जब अन्य सभी आवश्यकताएं पूरी हो जाती है, तो व्यक्ति बैचेनी अनुभव करता है तथा अपने प्रिय कार्य क्षेत्र या शौक में प्रवीणता प्राप्त करना चाहता है। उदाहरण के लिए कोई आदर्श पिता बनना चाहता है तो कोई आदर्श शिक्षक बनने की अभिलाषा रखता हैं। वैसे यह आवश्यकता व्यक्ति में सृजनशीलता के लिए आवश्यक है। आत्मसिद्ध वह व्यक्ति स्वयं में होता है जो मिथ्या, आडम्बरपूर्ण बेइमान तथा झूठे चरित्र का पता लगाने की असाधारण क्षमता रखता है तथा सामान्यतः लोगों के बारे मंे सही सही मूल्यांकन कर सकता है। वह अपराध भावना चिन्ता अनावश्यक शर्म से दूर होता है तथा आत्मकेन्द्रित होने के बजाय समस्या केन्द्रित हो जाता है। वह अकेलापन और निजत्व पसन्द करता है तथा अमर्यादित स्थिति में भी अपनी मर्यादा बनाये रखता है। रहस्मयी अनुभवों से युक्त ऐसा व्यक्ति स्वतंत्रता प्रेमी परमानन्द मानवतावादी करूणायुक्त लोकतांत्रिक विनोदी मौलिक तथा साधन एवं साध्य में अन्तर करने वाला होता है। निस्संदेह समाज एवं संगठन में आत्मसिद्धि तक पहुॅचने वाले व्यक्ति बहुत कम होते हैं। मैस्लों के अनुसार ऐसे व्यक्ति परिश्रमी कर्मठ तथा महत्वाकांक्षी होते हैं। इनके लिए अभिप्रेरणा केवल चरित्र विकास चरित्र की अभिव्यक्ति तथा विकास है। भारत में ऐसा माना जाता है कि महात्मा गांधी आत्मसिद्धि तक पहुच चुके थे। जहाँ तक अब्राहम एच0 मैस्लों की निजी मान्यता का प्रश्न है, वे मानते है कि उन्हें ब्रूरकलिन कालेज में मिले नृशास्त्री रूथ बेनीडिक्ट तथा गेस्टाल्ट मनोविज्ञानी मैक्स वर्थेमर आत्मसिद्धि प्राप्त व्यक्ति थे अर्थात ये दोनो विद्वान मैस्लों के आदर्श हैं। इसके अतिरिक्त मैस्लों ने अब्राहम लिंकन थामस जैफरसन अलबर्ट आइन्सटीन ई0 रूजवेल्ट, जेन एडमस विलियम जेम्स तथा अल्बर्ट श्वेटजर सहित कुल 24 व्यक्तियों से प्रत्यक्ष मुलाकात करके या उनकी जीवनी देखकर उन्हें आत्मसिद्ध प्राप्त व्यक्ति माना था।

मैस्लों ने अभिप्रेरणा का आवश्यकताओं की क्रमबद्धता नामक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है, वह मुख्य रूप से अभिप्रेरणा के बहुलवादी या अनेकवादी सिद्धान्तों की श्रेणी मे आता है। बहुलवादी या अनेकवादी सिद्धान्त मानव की न केवल एक आवश्यकता को प्रेरणा का बिन्दु हीं नहीं मानता है साथ-साथ कई आवश्यकताओं की पूर्ति महत्वपूर्ण मानता है। मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्रियों तथा प्रबन्ध वैज्ञानिक ने संगठन मे मानव की निम्नांकित आवश्यकताओं के बारे में चर्चा की है:-

- शारीरिक या जीवन-निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताएं।
- समाजिक आवश्यकताएं।
- सम्मान एवं स्वाभिमान की आवश्यकताएं।
- आत्मसिद्ध की आवश्यकताएं।
- सुरक्षा स्थायितव तथा निश्चितता की आवश्यकताएं।
- अच्छे कार्य की पहचान या मान्यता की आवश्यकताएं।
- अन्य आवश्यकताएं।

बहुलवादी सिद्धान्त के समर्थक अब्राहम मैस्लो हैं, जिन्होंने आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। मैस्लों ने अपने लेख द्वारा यह सिद्ध किया कि मनुष्य की आवश्यकताएं अनन्त है। अतः उन्हें एक साथ संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। संगठन तथा व्यक्ति का रिश्ता व्यक्ति की आवश्यकताओं के स्वरूप एवं पूर्ति पर निर्भर करता है।

शुरूआत में मैस्लों ने उपरोक्त वर्णित पांच प्रकार की आवश्यकताएं ही बताई थी किन्तु बाद में उन्होंने शारीरिक आवश्यकताओं एवं सुरक्षा आवश्यकताओं के मध्य उत्तेजना आवश्यकताओं सहित अन्य स्तरों की आवश्यकताओं में भी स्तरों को बढ़ाकर समाहित किया था।

सन् 1963 में मैस्लों ने कहा था - आवश्यकताओं की क्रमबद्धता सम्बन्धी मेरे विचार को सैकडों पुस्तकों मे तथा पचासों तरह से चित्रित किया जा चुका है लेकिन मुझे नहीं लगता कि ऐसी भी कोई स्थिति सचमुच आती होगी जब मनुष्य की कोई इच्छा शेष न रहे।

मैस्लों ने यह भी माना है कि उनका यह सिद्धान्त मैक्स वैथीमायर अल्फ्रेड एडलर वाल्टर बी कैनन तथा अन्य विद्वानों के विचारों का सम्मिश्रण भी है अतः इसे सामान्य गतिशील सिद्धान्त भी कहा जा सकता है।

मैस्लों ने बताया कि सर्वप्रथम मनुष्य की शारीरिक या दैहिक आवश्यकताएं यथा भूख, प्यास कामवासना तत्पश्चात सुरक्षा आवश्यकताएं यथा प्राकृतिक विपत्तियां, खतरें अभाव तथा आपराधिक गतिविधियों से सुरक्षा इत्यादि है। तीसरे चरण में समाजिक आवश्यकताएं तथा अपनत्व तथा प्यार की आवश्यकताएं आती है। व्यक्ति प्रेम सौहार्द सहयोग तथा मित्रता चाहता है। इसके पश्चात मुनष्य स्वाभिमान की आवश्यकताओं जैसे सफलता , सम्मान प्रतिष्ठा पहचान मान्यता तथा सत्ता की कामना करता है। पांचवे एवं शीर्ष शिखर पर वह चरमोत्कर्ष या आत्मसिद्धि की आवश्यकता अर्थात आगे बढने की इच्छा, सफलता के साथ कार्य में निपुणता तथा स्वयं की एक विशिष्ट पहचान चाहता है। इन सब आवश्यकताओं की क्रमशः पूर्ति या संस्तुष्टि ही अभिप्रेरणा प्रदान कर सकती है।

5.2 सीखने का अर्थ

सीखना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जो प्राकृतिक एवं सामाजिक दोनों रूपों से चलती रहती है। प्राकृतिक रूप से प्रत्येक जीव कुछ जन्मजात प्रवृत्तियांँ लेकर जन्म लेता है जो प्रारम्भिक प्रतिक्रियाओं की दिशा निर्देशित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ जन्मजात गुण होते हैं जिसके माध्यम से प्रारम्भिक प्रतिक्रियाओं का निर्धारण होता है। इन प्रतिक्रियाओं के माध्यम से वह स्वयं को पर्यावरण के अनुसार बनाने का प्रयत्न करता है। इसलिए व्यक्ति उन प्रतिक्रियाओं को बार-बार अभ्यास द्वारा सीखता है जो वातावरण के लिए उपयुक्त होती है। इस अर्थ में हम सीखना इस प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं कि वातावरण के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया को अपनाने की प्रक्रिया ही सीखना है।

सीखने से हमारा तात्पर्य ''संचयी उन्नति'' से भी होता है। सीखने में विकास का आकलन उन परिवर्तनों द्वारा मापा जाता है जो सीखने की क्रिया के समय होते हैं। जीवन के प्रारम्भिक दिनों में सीखने की प्रक्रिया अपरिष्कृत रूप से होती है तथा उनकी प्रतिक्रियायें दोषपूर्ण भी हो सकती हैं। पर धीरे-धीरे शिक्षा, अभ्यास एवं प्रभाव से यह परिष्कृत होती जाती हैं। आयु के साथ ही साथ विचारों में अनिश्चितता एवं अस्थिरता कम होती जाती हैं। इस प्रकार जिन कार्यो को प्रारम्भ में सीखने में कठिनाई का अनुभव होता है धीरे-धीरे वह उन कार्यो को सरलता से करने लगता है।

सीखने का अभिप्राय यांत्रिक विधि से अभ्यास के माध्यम से तथ्यों को प्राप्त करना मात्र ही नहीं होता है वरन् सीखने में साधन, मूल्यांकन एवं वस्तुओं का नियोजन भी शामिल होता है। इस प्रकार इनकी कई अर्थो में व्याख्या करनी पड़ती है। अतः हमें सीखने की परिभाषा पर पूर्ण रूप से विचार कर लेना चाहिए।

इन अनुभवों से व्यवहार में रूपान्तर होता रहता है। इस प्रक्रिया में निम्न कारकों का समावेश होता है।

प्रौढ़ता

व्यक्तित्व विकास में सीखना और प्रौढ़ता दोनों ही सहायता पहुँचाते हैं। प्रौढ़ता एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। प्रौढ़ता में वृद्धि के साथ-साथ सीखने में भी वृद्धि होती है। पर प्रौढ़ता के आधार पर ही सीखने की प्रक्रिया होती है। जन्म के पश्चात् एक निश्चित आयु में चलना तथा उसके बाद बोलना प्रारम्भ करता है। धीरे-धीरे प्रौढ़ता में वृद्धि के साथ उसके व्यवहार में परिपक्वता आने लगती है। प्रौढ़ता एक स्वाभाविक अभिवृत्ति होती है। जो बिना किसी विशिष्ट परिस्थितियों शिक्षा व अभ्यास आदि के ही अनवरत रूप से चलती रहती है। विभिन्न बालकों की वातावरण एवं परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी भिन्न हो फिर भी उनमें यह अभिवृद्धि अवश्य होती है।

उत्तेजक और प्रत्युत्तर

सीखने की प्रक्रिया में उत्तेजक एवं प्रत्युत्तर भी महत्वपूर्ण होते हैं। जब मनुष्य को उत्तेजना मिलती है तो वह उसके प्रति प्रत्युत्तर करता है जो वातावरण परिस्थिति के साथ-साथ बदलते रहते हैं। प्रत्युत्तर का यह रूपान्तर सीखने में सहायक होता है जो जन्म से प्रारम्भ हो जाता है।

आदत

मनुष्य का व्यवहार आदत पर निर्भर होता है। सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ आदत में भी परिवर्तन होता है। आदत किसी कार्य को स्थायी प्रकार से करना है। यह चेतन स्तर से प्रारम्भ होती है परन्तु बार-बार अभ्यास के कारण स्वतः संचालित होने लगती है।

सीखने के उद्देश्य को प्रमुख रूप से दो भागों में बाँट सकते हैं (क) ज्ञानोपार्जन और (ख) साहचर्य से सीखना

ज्ञानोपार्जन

इसका अभिप्राय मानसिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन तथा आत्मनियंत्रण से है। मस्तिष्क के सीखने की शक्ति को किस प्रकार विकसित किया जाय तथा किस ढंग से सीखने की प्रक्रिया में वृद्धि की जाये जिससे ज्ञानोपार्जन हो सके इससे प्रभावित होते हैं। इस प्रकार ज्ञानोपार्जन के कई उपभेद हो सकते हैं जो निम्न हैं

प्रत्यक्षीकरण

किसी क्षण विशेष में किसी वस्तु अथवा घटना के बारे में जब इन्द्रियों द्वारा हमारा सीधा सम्बन्ध उससे स्थापित किया जाता है तो उससे सम्बन्धित विशेष जानकारी ही प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाती है। संवेदना के बाद की अवस्था प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाती है। जबकि संवेदना शुद्ध इन्द्रिय ज्ञान होता है। इससे हमारे पूर्व के अनुभवों का कोई सम्बन्ध नहीं होता है। अतः संवेदना के द्वारा किसी वस्तु का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो पाता है। हम वस्तु को देखने सुनने एवं स्पर्श करने के बावजूद भी कोई निर्णय नहीं कर पाते हैं। जब हम पूर्व अनुभवों द्वारा निर्णय अवस्था पर पहुँच जाते हैं तो प्रत्यक्षीकरण होता है। जब कोई पदार्थ हमारी ज्ञानेन्द्रिय के सम्पर्क में आता है तो प्रत्यक्षीकरण होता है। जब कोई पदार्थ हमारी ज्ञानेन्द्रिय के सम्पर्क में आता है तो पूर्व अनुभव के आधार पर उसे विशेष की संज्ञा देते हैं यही प्रत्यक्षीकरण कहलाता है।

संकल्पना ज्ञान

संगठित ज्ञान जो सामान्य विचारों के रूप में होते हैं संकल्पना ज्ञान कहलाती है तथा किसी विशेष प्रत्यक्षीकरण से उच्च स्तर पर होते हैं। प्रत्यक्षीकरण में हमें विशेष परिस्थिति अथवा विशेष व्यक्ति का ज्ञान होता है। संकल्पना में सामान्य अथवा सार्वभौमिकता का बोध होता है।

साहचर्य से सीखना

साहचर्य से सीखने का अभिप्राय यह है कि विभिन्न प्रत्ययों में ऐसे सम्बन्ध स्थापित किये जाये कि एक प्रत्यय का पुनः स्मरण कर लिया जाये तो अन्य जो प्रत्यय उससे सम्बन्धित हों वह सब भी पुनः स्मरण कर लिये जाये और उनकी पहचान हो जाये। इस प्रकार का सीखना स्मृति के अन्तर्गत आता है।

ज्ञानोपार्जन की यह विधि भावात्मक तत्व पर निर्भर होती है। किसी संवेगात्मक वर्णन द्वारा हम प्रभावित होकर भावों, आदर्शो मनोवृत्ति आदि पर रसानुभूति पूरक ज्ञान प्राप्त करते हैं तो वह 'रसानुभूति' कहलाता है।

कौशल अर्जन द्वारा हम संवेदनात्मक प्रक्रियाओं को समझते और उन्हें सीखते हैं उदाहरणार्थ लिखना-पढ़ना, संगीत एवं चित्रकारी आदि।

5.2.1 सीखने की परिभाषा

सीखने की प्रक्रिया को लेकर विद्वानों में अत्यन्त उत्सुकता देखी जाती रही हैं, जो परिभाषाओं के रूप में निम्नवत् हैं-

किम्बल यंग के अनुसार ''सीखने को प्रत्युत्तर व्यवस्था में हुए एक परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कि जानबूझ कर अथवा अचेतन रूप से नवीन अथवा पुराने प्रत्युत्तरों द्वारा लाया गया है।''

बर्नहट के अनुसार ''सीखना व्यक्ति के कार्यो में एक स्थायी संपरिवर्तन लाना है जो निश्चित परिस्थितियों में किसी इच्छा को प्राप्त करने अथवा किसी समस्या को सुलझाने के प्रयास में अभ्यास द्वारा लाया जाता है।

व्यक्ति के कार्यो पर निर्भर करने वाली संस्था एक सक्रिय प्रक्रिया है। यद्यपि मानसिक अभिवृद्धि अथवा प्रौढ़ता विकास की प्रक्रिया है। इस संदर्भ में व्यक्ति बहुत कम कुछ कर सकता है।

''अनुभव द्वारा व्यवहार में होने वाले परिवर्तन को ही सीखना कहते हैं'' व्यक्ति क्या सीखता है? इसका निर्धारण शारीरिक स्वास्थ्य एवं परिस्थिति पर आधारित होता है।

मनुष्य वातावरण के प्रभाव से भी बहुत अधिक प्रभावित होता है। वह अपने चारों ओर की परिस्थिति से नहीं बच सकता है। मानव में रुचि निपुणता एवं योग्यता सभी सीखने की क्रिया की ही उपज होती हैं।

इस प्रकार, सीखने का अभिप्राय किसी निश्चित परिवेश में समस्या के समाधान के हेतु व्यवहार में स्थायी अथवा अस्थायी परिवर्तन का होना होता है। यह परिवर्तन सीखने के तरीकों पर निर्भर करता है। सीखने के तरीकों के विषय में विद्वानों ने कई आधारों को महत्वपूर्ण बताया है, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नवत् है-

1. निरीक्षण से सीखना 2. सूझ से सीखना 3. अनुकरण से सीखना 4. प्रयास एवं त्रुटि से सीखना

1. निरीक्षण से सीखना

उपरोक्त तीनों विधियाँ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। निरीक्षण वस्तुतः प्रत्यक्षीकरण ही है। उसमें अवधान को भी शामिल कर लिया जाता है। अतः निरीक्षण का अभिप्राय किसी वस्तु पर ध्यान को केन्द्रित करना होता है। इसके

केन्द्रीयकरण से प्रत्यक्षीकरण और स्पष्ट हो जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में मूर्त वस्तुओं पर ध्यान केन्द्रित होता है पर आयु वृद्धि के साथ अमूर्त वस्तुओं पर भी अवधान होने लगता है।

2. सूझ से सीखना

मनुष्य अपनी सूझ से सीखता है। निरीक्षण की अन्तिम क्रिया सूझ समझी जाती है। मनुष्य किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तरीके सोचता है वह स्थिति को समझकर उसके लिये उपयुक्त क्रिया का चुनाव करता है। उस स्थिति का प्रत्यक्षीकरण होने पर सूझ सक्रिय हो जाती है। निरीक्षण द्वारा किसी वस्तु विशेष पर ध्यान केन्द्रित करके उसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना होता है जबकि सूझ से अर्थ है कि निरीक्षण क्रिया का अन्त सफलता पूर्वक हो गया है और वस्तु सम्बन्धी सही जानकारी प्राप्त कर ली गयी है। सूझ ध्यान के केन्द्रीयकरण के आग्र की स्थिति है जिस पर सम्पूर्ण सफलता स्थिर है। साधारण रूप से वे क्रियायें सूझ द्वारा सीखने की क्रियायें कहलाती हैं जो व्यक्ति की स्थिति का अवलोकन करके समस्या को पूर्णरूप से समझने योग्य बनाती है। लगभग सभी क्रियाओं में सूझ की आवश्यकता होती है। सूझ व्यक्ति को उस समय सहायता देती है जब गन्तव्य तक पहुँचने में अनेकों रुकावटें आती हैं। उस समय किसी वस्तु विशेष सम्बन्धी ज्ञानार्जन करने में बाधाओं को हटाकर सूझ सीखने से सहायता पहुँचती हैं। सूझ द्वारा सीखने में सामान्यीकरण एवं भेदभाव की प्रक्रिया को प्रयोग में लाता है।

3. अनुकरण से सीखना

इसके अन्तर्गत दूसरे व्यक्तियों द्वारा किये गये कार्यो की पुनरावृत्ति की जाती है। सदैव अनुकरण अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति का ही किया जाता है। अनुकरण कभी जान में कभी अनजान में होता है इसमें अनुकरण एक उद्दीपक के समक्ष होना चाहिये जिससे व्यक्ति की क्रियाशक्ति सक्रिय हो सके। ज्ञात एवं अज्ञात अनुकरण के द्वारा परम्परागत व्यवहार समाज के नैतिक सिद्धान्त एवं विचारधारा सम्बन्धित तत्व व्यक्ति में आते हैं।

4. प्रयास एवं त्रुटि से सीखना

इस प्रकार से सीखने को सफल प्रतिक्रियाओं के चुनाव द्वारा सीखना भी कहते हैं। इसमें साधन एवं साध्य का सम्बन्ध प्रत्यक्षीकरण स्पष्ट न होकर अत्यन्त नहीं के बराबर होता है। यह प्रवृत्ति पशुओं में अधिक पाई जाती हैं। वे विविध प्रतिक्रियाओं को दोहराते हैं उसमें से चुनाव द्वारा सफल एवं लाभदायक को ग्रहण करते हैं अन्य को छोड़ते जाते हैं। यह समस्या की आवश्यकता तथा मंतव्य के बारे में भली-भाँति समझता है तथा इसके द्वारा सुधार सम्भव होता है। इसका आधार निश्चय ही बौधिक एवं तार्किक पूर्ण होता है। इस प्रकार प्रयास एवं गुण का नियम सीखने की प्रक्रिया का मूलमंत्र है। सफल एवं सुधरे प्रयासों द्वारा समस्या का हल करते हैं। प्रयास एवं त्रुटि से सीखने में स्थिति की सामान्य चेतना की सहायता से सीखता है। मानव में पशुओं की अपेक्षा मार्ग पहचानने की शक्ति अधिक होती है यह मानसिक शक्ति प्रकृति से प्राप्त करता है जिससे सुगमता से भूतकाल के मार्गो का स्मरण कर लेता है तथा भविष्य के मार्गो की कल्पना भी कर सकता है।

5.2.2 सीखने को प्रभावित करने वाले कारक: (Factors affecting learning)

सीखना एक गतिशील क्रिया है यह क्रियाहीन ज्ञान का शोषण नहीं है। वास्तविक सीखना अपने अनुभवों को उपयोगी बनाना है। क्रिया द्वारा सीखने का वस्तु के साथ सीधा सम्बन्ध होता है यह पुस्तकीय ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण होता है। सीखने में प्राणी अपने वातावरण में प्रतिक्रिया करता है। चालकों के आन्तरिक अनेकों कारक मनुष्यों की सीखने की क्रिया को प्रभावित करते हैं जो इस प्रकार हैं

(1) मनोवैज्ञानिक दशायें (2) सामाजिक दशायें (3) शारीरिक दशायें (4) वातावरण सम्बन्धी दशायें।

मनोवैज्ञानिक दशाओं के सीखने में अभिप्रेरणा का महत्व होता है। सीखने के द्वारा ही वह वातावरण में प्रतिक्रिया करता है। सीखने वाले की आन्तरिक क्रिया को हम प्रेरणा के द्वारा उत्पन्न करते हैं। अभिप्रेरणा के विभिन्न रूपों पर बल, उत्तेजना, रुचि एवं उद्देश्य आदि निर्भर होते हैं। अभिप्रेरणा व्यक्ति को क्रियाशील बनाती है। प्रतिक्रिया, रुचि एवं प्रयत्न उसके परिणाम हैं। सभी प्रकार का सीखना एक लक्ष्य रखता है। प्रेरक प्राणी की शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दशाएँ हैं जो उसे निश्चित रूप से कार्य करने की ओर आकर्षित करती हैं। प्रेरक कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे आवश्यकता, रक्षा, तनाव, व्यवहार, रुचि आदि।

प्रेरकों के प्रकार- प्रेरका दो प्रकार के होते हैं- (1) आन्तरिक प्रेरणा और (2) बाह्य प्रेरणा।

1. आन्तरिक प्रेरणा (Internal Motivation)

यह जन्मजात होती है। व्यक्ति के जीवन का एक बड़ा भाग खाने-पीने, परिवर्तन और काम की अभिलाषा में ही व्यतीत हो जाता है। जब कभी व्यक्ति की सुरक्षा पर आपत्ति आती है तो परिणामस्वरूप कठोर परिश्रम करता है, विचारों में पूर्णता लाता है, दूसरों पर दोषारोपण कर सकता है। इन विकल्पों में से एक को अपना लेता है। इस प्रकार इन प्रेरकों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

प्रेरक जो प्रारम्भिक मूल आवश्यकताओं पर निर्भर होते हैं। इस प्रकार के प्रेरक हमारी श्वांस क्रिया, हृदयगति, रक्तवाहन, पाचन क्रिया, सूचना आदि संवेदन गति अंगों के कार्य आते हैं।

2. बाह्य प्रेरक (External Motivation)

सीखने की प्रक्रिया आन्तरिक प्रेरक की अनुपस्थिति में भी प्रगतिशील रहनी चाहिए। अपूर्ण मानसिक विकास, परिणाम को समझने की अकुशलता, आन्तरिक प्रेरणा में बाधक बन सकती है। बाह्य प्रेरक सीखने की क्रिया को बाहर के प्रेरकों द्वारा प्रोत्साहित करती है। यह किसी भी स्थित रूप में बनावटी नहीं होती है। व्यक्ति के स्वभाव के आन्तरिक रूप में प्राकृतिक क्रिया पर आधारित होना चाहिए। मूल भावनायें ही सहज ध्यान का सूत्र होती हैं। यदि हमारी बुद्धि को सम्यक् दिशा की ओर मोड़ दिया जाय तो इन प्रेरणाओं के साथ महान शक्ति होती है। जो सीखने वाले की क्षमता पर निर्भर रह सकती है। इस प्रकार बाह्य प्रेरक निम्न हैं-

सीखने की प्रक्रिया में प्रशंसा तथा आरोप का भी प्रभाव पड़ता है। इसमें प्रशंसा तथा आरोप एक प्रेरक के रूप में कार्य करता है। प्रशंसित कार्यो को हम सीखते हैं तथा आरोपित व्यवहार को हम छोड़ते चलते हैं।

व्यक्ति में प्रतिद्वन्दिता जो ईष्र्या, क्रोध आदि अथवा समूहों की प्रतिद्वन्दिता, जो घृणा उत्पन्न करती है, किसी भी रूप से सराहनीय नहीं है। पर यदि प्रतियोगिक तथा प्रतिद्वन्दिता पर अधिक जोर दिया जाय तो सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने में सफल हो जायेंगे। अधिकांश खोजें यह सिद्ध करती हैं कि प्रतिद्वन्दिता प्रेरक एक शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न करता है।

ये प्रेरणा के सबसे अच्छे साधन के रूप में कार्य करते हैं। समाज में मनुष्य को विशेष प्रकार के व्यवहार को दूर करने के हेतु प्रेरित किया जाता है यदि वह उसके अनुकूल क्रिया करता है तो प्रशंसा तथा पुरस्कार प्राप्त होता है और यदि प्रतिकूल दिशा में कार्य करता है तो दण्ड की भी व्यवस्था होती है जो निन्दा के रूप में भी दिखाई पड़ती हैं।

सीखने की प्रक्रिया में प्रेरकों के कार्य

गेट्स के अनुसार सीखने की प्रक्रिया में तीन प्रेरक मुख्य रूप से कार्य करते हैं जो इस प्रकार हैं

(1) प्रेरक व्यवहार को शक्तिवान क्षमतावान बनाते हैं- प्रेरक के द्वारा ही हमारे अन्दर क्रियाशक्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार भूख और प्यास हमारे अन्दर ग्रांथिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। प्रशंसा, आरोप, पुरस्कार दण्ड आदि क्षमतावान उत्तेजक है जो हमारे कार्यो को प्रभावित करते हैं। ये सीखने की क्रिया में सहायक होते हुये किसी विशेष दिशा में कार्य करने को प्रेरित करते हैं।

(2) व्यवहार का चुनाव है- प्रेरक हमारे व्यवहार को चुनने वाले होते हैं। प्रेरक व्यक्ति को किस प्रकार उत्तेजना विशेष के प्रति प्रतिक्रिया करने को तैयार करते हैं। यह भी बताते हैं कि व्यक्ति किस अवस्था में कैसा व्यवहार करेगा। जैसे यदि समाचार पत्र व्यक्ति को दिया जाय तो उसी भाग को पढ़ेगा जिसके लिए प्रेरणा होगी।

(3) प्रेरक द्वारा व्यवहार संचालन- प्रेरक व्यवहार को चुनते ही नहीं वरन् उनका संचालन भी करते हैं। सन्तुलित भावना जागृत करके व्यवहार का संचालन करते हैं।

सीखने में सामाजिक दशायें

मानव सीखने की प्रक्रिया को सामाजिक दशायें काफी हद तक प्रभावित करती हैं इनमें से निम्न प्रमुख हैं:

(अ) अनुकरण- मनुष्य के अर्जित व्यवहार में अनुकरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बालक जैसा दूसरों को करता देखता है वैसा ही स्वयं भी करने लगता है। अनुकरण की देन उसके जन्मजात स्वभाव का सामाजिक रूप है।

(ब) निर्देश- मनुष्य एक दूसरे से निर्देश द्वारा सीखता है। इसमें मनुष्य दूसरे के विचार एवं क्रियाओं को बिना हिचकिचाहट संकोच के स्वीकार कर लेता है।

(स) सहानुभूति- जिस कार्य के लिए दूसरों से सहानुभूति मिलती है उसको जल्दी सीख लेता है। बच्चे को उस कार्य को सीखने में कठिनाई नहीं होती है जिस क्रिया के पीछे परिवार के सदस्यों की सहानुभूति होती है।

(द) प्रतियोगिता और सहयोग- प्रतियोगिता सीखने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण कारक है। सीखने की प्रक्रिया प्रतियोगिता के तत्वों के समावेश से तेज हो जाती है। इसी प्रकार जिन कार्यो के लिये दूसरे व्यक्तियों का सहयोग मिलता है उसे सीखने में आसानी हो जाती है।

शारीरिक दशायें

(1) संवेदना, प्रत्यक्षीकरण और सीखना

संवेगता के पाँच प्रमुख द्वार हैं-दृष्टि, घ्राण, स्पर्श, श्रव्य एवं स्वाद। सम्पूर्ण ज्ञान का आधार प्रत्यक्षीकरण ही है। यदि कोई संवेदन अंग दोषपूर्ण होगा तो उस अंग से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करने में कठिनाई का अनुभव होता है। जैसे अन्धा बालक आँख से सम्बन्धित संवेदना प्राप्त नहीं कर पाता है। यह इसे अपने स्पर्श ज्ञान से प्राप्त करता है। प्रत्येक सीखने का आधार प्रत्यक्षीकरण होता है। प्रत्यक्षीकरण की प्रत्येक क्रिया में वस्तु विशेष के गुणों की प्रशंसा निहित होती है। सीखने की क्रिया हमारी ज्ञानेन्द्रियों की परिपक्वता पर आधारित है।

(2) शारीरिक अवस्था:सीखना एक बड़ी सीमा तक शारीरिक अवस्था पर निर्भर होता है। आयु, परिपक्वता, तापमान, दिन का समय तथा वे सब तत्व जो थकान उत्पन्न करते हैं इसके अन्तर्गत शामिल होते हैं।

(3) थकान

थकान तीन प्रकार की होती है (1) मांसपेशिक (2) संवेदनात्मक (3) मानसिक। थकान तामसिक पदार्थों की उत्पत्ति या आक्सीजन के अभाव या अन्य कारणों से पैदा होती हैै। शारीरिक थकान, मानसिक थकान को उत्पन्न करती है।

परिवेश सम्बन्धी दशायें

परिवेश एक बड़ी सीमा तक कार्य की शक्ति को बढ़ाने में सहायक है। नशीली वस्तुओं के सेवन से सीखने में क्षणिक उन्नति तो हो सकती है पर स्थायी रूप से नहीं। कार्य कुशलता में वृद्धि आराम, भोजन तथा सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा ही हो सकती है।

आदत एवं व्यवहार

किसी कार्य को स्थायी प्रकार से करना आदत है। यह चेतन स्तर से निर्मित होती है पर बार-बार अभ्यास से स्वतः चालित होने लगती है। अच्छी आदत प्रेरक के रूप में तथा बुरी आदत अवरोध के रूप में कार्य करती है। आदतें स्वयं सीखी जाती है पर एक बार सीखने के बाद वह व्यवहार पर अपना नियंत्रण कर लेती है। आदत हमारी प्रकृति के लचीलापन तथा धारण करने की शक्ति पर निर्भर करती है। आदत इस प्रकार से कार्य को सरल बना देती है। जब कार्य बार-बार दोहराया जाता है तो वह सरल हो जाता है। आदत कार्य को अधिक सही बना देती है। जब कार्य कारने की आदत पड़ जाती है तो व्यवहार सुगमता से होता है तथा थकावट कम आती है। आदत कार्य के लिए चेतन ध्यान को कम कर देती है। आदत बिना चेतन नियंत्रण से होती है।

5.2.3 सीखना एवं परिपक्वता (Maturation & Learning)

विकास के क्रम के दो रूप होते हैं प्रथम सीखना एवं दूसरा परिपक्वता। विशेष रूप से क्रिया का प्रारम्भ परिपक्वता के साथ-साथ होता है। जब व्यक्ति में कार्य करने की परिपक्वता उत्पन्न हो जाती है तो वह बिना प्रयास के सीख लेता है। एक निश्चित आयु में एक निश्चित प्रकार का सीखना सम्भव होता है।

5.2,4 सीखने के सिद्धान्त

सीखना एक महत्वपूर्ण मनो-सामाजिक प्रक्रिया है, जिसको लेकर मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किये तथा विभिन्न नियमों की स्थापना भी की। इनमें थार्नडाइक सबसे महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने सीखने के विषय में सबसे पहले अध्ययन किया एवं अपने प्रयोगों के आधार पर कुछ विधियों का प्रतिपादन किया। सीखने के इन नियमों की उत्पत्ति प्रयोग विधि द्वारा हुआ। सीखने के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

थार्न डाइक का सीखने का सिद्धान्त

थार्न डाइक ने सीखने का सिद्धान्त दिया। उनके अनुसार सीखना व्यवहार की स्वतंत्र इकाइयों का संगठन है। इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना संबंध की रचना से होता है। सीखने के नियमों की रचना थार्न डाइक ने ही की है। सीखने के इन नियमों की उत्पत्ति प्रयोग विधि द्वारा हुआ।

इनमें तीन प्रमुख नियमों का समावेश होता है। (1) अभ्यास का नियम (2) प्रयास का नियम एवं (3) तत्परता का नियम।

अभ्यास का नियम- इसको प्रमुख दो भागों में विभक्त किया गया (1) उपयोग का (2) अनुपयोग का नियम।

उपयोगिता का नियम

यह नियम उपयोगिता के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसके अनुसार यदि किसी ज्ञात स्थिति और प्रतिक्रिया में परिवर्तनात्मक सम्बन्ध बना दिया जायें और अन्य दशायें समान रहने पर इस सम्बन्ध की शक्ति बढ़ जाती है। अर्थात् व्यक्ति परिस्थितियों के अनुरूप अपने व्यवहार को परिवर्तित कर लेना है।

अनुपयोगिता का नियम

इस नियम की मान्यता के अनुसार जब कोई वस्तु किसी उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक नहीं होती है, तो उसकी उपयोगिता प्रभावित हो जाती है अर्थात् जब एक लम्बी अवधि तक स्थिति और प्रतिक्रिया में परिवर्तनात्मक सम्बन्ध नहीं बनाया जाता है तो सम्बन्ध शक्ति क्षीण हो जाती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नियंत्रित परिस्थितियों में यदि शेष दशायें वैसी ही रहती हैं तो अभ्यास द्वारा शक्ति बढ़ जाती है और अभ्यास की कमी स्थिति और प्रतिक्रियाओं में एक साथ कार्य करते हैं। हम स्वतन्त्रता से आनंद मिलने वाली क्रियाओं को दोहराते हैं तथा दुःख मिलने वाली क्रियाओं को छोड़ते जाते हैं। अभ्यास के द्वारा एक विषय को दृढ़ करते हैं तथा अभ्यास की कमी से विषय की स्मृति कमजोर हो जाती है। अभ्यास न करने का समय जितना अधिक होगा स्मृति में उतनी ही अधिक हानि होगी। मानवीय मस्तिष्क बार-बार प्रयोग में आने वाली वस्तुओं को धारण कर लेता है। वह शब्द जिन्हें हम बहुधा लिखते हैं बहुत ही कम अवस्थाओं में गलत होते हैं तथा लिखने तथा वार्तालाप में कम आने वाले शब्दों को अधिक भूलते हैं। उपयोगिता और अनुपयोगिता के दो रूप सीखने तथा भूलने के समानान्तर चलते हैं। उपयोग से धारण करते हैं तथा अनुपयोग से भूलते हैं। जिसका हम अभ्यास नहीं करते वह बिना सीखा रह जाता है।

प्रयास का नियम

इस नियम के अनुसार व्यक्ति उस कार्य को करने के लिए अधिक अभिप्रेरित होता है जिसको करने के पश्चात् उसे सुख एवं आनंद की प्राप्ति होती है। अर्थात् जब परिणाम सुखप्रद या संतोषप्रद होते हंै तो हम उस प्रतिक्रिया को बार-बार दोहराते हैं। संतोषप्रद परिणाम शक्तिवर्धक होते हैं और कष्टकारक स्थिति तथा प्रतिक्रिया के सम्बन्ध को निर्बल बना देते हैं। संवेगात्मक स्थिति सीखने के अनुभव में शामिल होती है। सफलता और विफलता निश्चित सीमा तक सीखने की प्रक्रिया को प्रमाणित करती है।

तत्परता का नियम

इस नियम के अनुसार जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिये तैयार होता है तो वह प्रक्रिया उसे सुख पहुंचाती है पर इसके विपरीत दशा होने पर मानसिक संघर्ष होता है। जब व्यक्ति सीखने को तैयार नहीं होता है तो दुख की अनुभूति होती है और उसे संतोष और असंतोष मिलता रहता है। जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिये तैयार होता है तो उसे शीघ्र सीखता है और संतोष भी अधिक मात्रा में मिलता है। अपेक्षाकृत जब सीखने को तैयार नहीं होता है। किसी समस्या के सम्बन्ध में तत्परता उसकी समाधान करने की इच्छा के समान है।

इस प्रकार अभ्यास का नियम, प्रभाव का नियम तथा तत्परता का नियम अलग अलग न होकर एक दूसरे पर निर्भर है। साथ ही साथ एक दूसरे से सम्बन्धित भी है। अभ्यास पर तत्परता और संवेगात्मक प्रभाव दूसरे व्यक्ति में तत्परता के प्रभाव को निश्चित करते हैं।

सम्बद्ध प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त

यह शरीर विज्ञान का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक महान वैज्ञानिक पावलोव थे। अपने इस संदर्भ में 1904 में विशेष प्रायोगिक अनुसंधान किये, सामान्य रूप से पावलव के प्रयोग का विषय कुत्ते के मुख से लार

गिरने की क्रिया है। यह एक यांत्रिक ग्रन्थिगत प्रतिक्रिया है जिसकी उत्तेजना भूख की स्थिति में भोजन कामुख से होना होता है वह प्रतिक्रिया जो प्रारम्भिक उत्तेजक से भिन्न किसी अन्य उत्तेजक से जागृत होती है उसे नियंत्रित उत्प्रेक्षा कहते हैं।

पावलोव ने इस प्रकार प्रयोग किया कि एक नली इस प्रकार कुत्ते के मुंह से जोड़ दी गयी कि जिनी लार भोजन खाते समय निकले वह एक मापक प्याले में एकत्र होती रहे। पावलोव ने प्रयोग में देखा कि खाना खाने पर ही कुत्ते के प्याले में लार नहीं गिरता है वरन् खाना लाने की पदचाप, थाली जिसमें भोजन मिलता है प्राप्त करते ही लार गिरने की प्रतिक्रिया जागृत हो जाती है। पावलोव ने इस प्रतिक्रिया का अध्ययन करेन के लिए कुत्ते को भोजन से पूर्व नियमित रूप से घंटी देना प्रारम्भ किया। इस प्रकार भोजन घंटी की क्रमबद्ध उत्तेजना के द्वारा अन्त में यह निरीक्षण में आया कि कुत्ते के मुख से लार गिराने में घंटी ही समय हो जाती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सम्बद्धता एक साधारण क्रिया है जो एक उत्तेजक का दूसरे के साथ यांत्रिक स्थानापन्न है। यह एक त्रुटिपूर्ण विचार है। सम्बद्ध क्रिया इतनी सरल नहीं है और न ही इतनी यांत्रिक है। कृत्रिम उत्तेजक द्वारा सीखना इतना सरल नहीं जितना कि यहां पर दिखाया गया है। सम्बद्ध प्रतिक्रिया का सिद्धान्त हमारे बहुत से भय, घृणा और ऐसी प्रतिक्रिया जो व्यक्ति जगह और वस्तु आदि के संबंध में होती है और हमारे साधारण रूप से समझ में नहीं आती है उनकी व्यवस्था करने में उपयोग किया जाता है। यह सिद्धान्त यह भी बताता है कि मानव व्यवहार इतना अतार्किक क्यों होता है। यह हमारे अन्य विश्वासों पर भी प्रकाश डालता है। बहुत से व्यक्ति बिल्ली रास्ता काट जाए तो उसक मार्ग पर नहीं जाएगें उनका विश्वास है कि उस समय उस रास्ते पर जाने से कोई संकट आ जाएगा। बिल्ली का रास्ता काटना एवं दुर्भाग्य का आ जाना किसी घटना के कारण संबंधित हो सकता है पर व्यक्ति उसी सम्बद्धता के आधार पर अंधविश्वास बना लेता है। इसी अंधविश्वास के कारण दूसरे व्यक्ति भी भय प्रदर्शित करते हैं।

इस प्रकार से सीखना नकारात्मक भी हो सकता है। इसके उत्पन्न होते ही बालक इच्छित और अनिच्छित सम्बद्धता से बंध जाता है। उसकी भूख, प्यास और प्रेम की इच्छा को इस प्रकार सम्बद्ध किया जाता है कि वह सब बालकों की आज्ञा पालन करने लगता है। साथ ही ऐसे अनुभव भी प्राप्त होते हैं जो समूह में या जोड़े में एक साथ मिलत हैं। बालक बिजली के करेंट से डरने लगता है क्योंकि जब बिजली चमकती है तो उसकी मां उसे डराती है परिणामस्वरूप उम्र भर बिजली से डरता रहता है। यह समझना कठिन है किस प्रकार निरर्थक स्थिति को भी तीव्र उत्तेजक के कारण प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

हमारी सभी आदतें जिनमें भाषा का भी समावेश होता है सम्बद्धता का ही परिणाम है। हमारा संवेगात्मक जीवन भी इसी की उपज है। जब सम्बद्धता की क्रिया सफल हो जाती है तो विशिष्ट उत्तेजक विशिष्ट क्रिया की ओर संकेत करता है। व्यवहार संज्ञा लिप्त हो जाता है।

समझ का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त में यह बताना शक्ति से परे है कि उच्च विचार या ऐच्छिक क्रियायें क्या हैं। यद्यपि यह ठीक है कि यह सिद्धान्त एक विशेष प्रकार के सीखने की क्रिया का वर्णन करता है पर गूढ़ विचार श्रृंखला के बारे में उत्तर देने में सफल नहीं हो पाता है।

अवयवीवाद सम्बद्ध प्रत्यावर्तन के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए सीखने की क्रिया का लक्ष्य दूसरी ओर निर्देशित करता है। कोहलर ने अपने 1917 में किए गए प्रयोगों के आधार पर अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने की क्रिया में विशेष गुण यह है कि क्रिया के अन्तर्निहित तत्वों

में संबंध स्थापित हो जाता है। कोई भी सम्बद्धता उस समय तक उत्पन्न नहीं की जा सकती है जब तक कि यह संबंध उपस्थित न हो। बालक सर्प से इसलिए नहीं डरता है क्योंकि उसे यह नहीं पता होता है कि सर्प हानिकारक है। भय को संबंधित करने का सरल उपाय यह है कि मां-बाप को संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को देखने दिया जाए। समझ द्वारा सीखने से हम सम्पूर्ण परिस्थितियों को एक साथ देखते हैं। यह तभी उत्पन्न होती है जब व्यक्ति स्थिति को सम्पूर्ण रूप से समझने की सफलता रखता है। हमारी सूझ वही कार्य करती है जहाँ समस्या का प्रत्यक्षीकरण होता है। कठिनाई के तत्वों और उद्देश्यों को समझने की क्षमता होती है। समझ के द्वारा सीखने में दो परस्पर परिवर्तनशील कार्यों का सम्मेलन होता है। जो सामान्यी करण तथा विभेदीकरण है।

5.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पष्चात् अभिप्रेरणा के अर्थ एवं विषेषताओं के विषय में ज्ञान प्राप्त किया इसके पष्चात् अभिप्रेरणा के उद्देष्य तथा उसके महत्व का भी अध्ययन किया। साथ ही सीखने की अवधारणा तथा उद्देश्यों के विषय में अध्ययन किया। सीखने के प्रकार तथा सीखने को प्रभावित करने वाली दशाओं के विषय में ज्ञान प्राप्त किया तथा अन्त में सीखने के कारक सीखने के नियम तथा सीखने के सिद्धान्तों के विषय में अध्ययन किया।

5.4 संदर्भ ग्रंथ

- शर्मा, सुनीता, व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त, रावत प्रकाशन, 2012,
- शर्मा, सीमा, सामान्य मनोविज्ञान यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2011,
- मूरजानी, जानकी, सामाजिक मनोविज्ञान, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2007,
- मिश्रा, एम0के0 असामान्य मनोविज्ञान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2011,
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981
- सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004।
- सिंह, रतन, सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009,
- चैबे, सरयू प्रसाद, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2002
- मिश्रा, पी0डी0, एवं मिश्रा बीना, व्यक्ति एवं समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010,
- वर्मा प्रीती, श्रीवास्तव डी0एन0 सामान्य मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2007
- यादव के0एन0 सिंह यादव रामजी, तुलनात्मक और शिक्षा मनोविज्ञान अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2008
- मिश्रा महेन्द्र कुमार विकासात्मक मनोविज्ञान, यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि. जयपुर, प्रथम संस्करण, 2007
- कटारिया, सुरेन्द्र, प्रशासनिक चिंतक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर एवं दिल्ली, 2005,
- मैस्लो, ए. एच., मोटीवेशन एण्ड पर्सनालिटी, हारपर एण्ड रो, न्यूयार्क, 1954।
- सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981

- सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004।

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

- अभिप्रेरणा के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
- अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।
- मैस्लो के आवश्यकता पदानुक्रम के विभिन्न सोपानों का वर्णन कीजिए।
- मैस्लों के सिद्धान्त में आवश्यकताओं पर प्रकाश डालिए
- सीखने से आप क्या समझते है? सीखने के अर्थ एवं परिभाषाओं का उल्लेख कीजिए।
- सीखने के कौन-कौन से सिद्धान्त है? व्याख्या कीजिए।

इकाई-6

मूल मनोसामाजिक प्रक्रियायें:प्रत्यक्षीकरण एवं समाजीकरण

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 **प्रत्यक्षीकरण (Perception)**

- 6.2.1 प्रत्यक्षीकरण का अर्थ
- 6.2.2 प्रत्यक्षीकरण की परिभाषा
- 6.2.3 प्रत्यक्षीकरण के आधार
- 6.2.4 प्रत्यक्षीकरण की अध्ययन विधियां

6.3 **समाजीकरण (Socialization)**

- 6.3.1 समाजीकरण का अर्थ
- 6.3.2 समाजीकरण की परिभाषा
- 6.3.3 समाजीकरण के अभिकरण
- 6.3.4 परिवार
- 6.3.5 विद्यालय
- 6.3.6 पड़ोस
- 6.3.7 खेल समूह
- 6.3.8 धार्मिक संस्थायें
- 6.3.9 राजनैतिक संस्थायें
- 6.3.10 आर्थिक संस्थायें
- 6.3.11 विवाह संस्था

6.4 सारांश

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.6 संदर्भ ग्रंथ

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण के अर्थ तथा परिभाषाओं एवं आधार तथा अध्ययन विधियों का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य समाजीकरण के विषय में परिचय कराना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समाजीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन कर सकेगें एवं इसके महत्व से परिचित भी हो सकेगें।

प्रस्तुत इकाई में सामाजीकरण के अर्थ, परिभाषा एवं अभिकरणांे का उल्लेख है। सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति का विकास इस भांति होता है कि हम उसे सामाजिक प्राणी कह सकते हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से ही व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित होता हैं।

समाजीकरण मूलभूत मनोसामाजिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने संस्कृति के गुणों का आन्तरीकरण करता है एवं एक सामाजिक व्यक्ति के रूप में अपनी भूमिकाओं का अर्थ समझता है एवं उनका निर्वहन करता है।

प्रस्तुत इकाई में प्रत्यक्षीकरण पर विचार किया गया है। प्रत्यक्षीकरण का अर्थ परिभाषाएं तथा प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रियाओं का विष्लेशण किया गया है। प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने पर्यावरण से संबंध स्थापित करता है, परिवर्तनों की सूचना प्राप्त करता है एवं सत्य का पता लगाता है। प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमता में वृद्धि करती हैं।

6.2 प्रत्यक्षीकरण

प्रत्यक्षीकरण का सामान्य अर्थ वास्तविकता का सही एवं समुचित संज्ञान होने से है। यह व्यक्ति की वह शक्ति है जिसके माध्यम से वह अपने पद एवं स्थिति के अनुरूप भूमिकाओं का अनुमान लगता है एवं उनका निर्वहन करता है। वास्तव में यह व्यक्ति की वह मनोवैज्ञानिक शक्ति है जो वह वातावरण के साथ अपना तादाम्य स्थापित करने में प्रयोग करता है।

6.2.1 प्रत्यक्षीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति अपने वातावरण से सूचनाओं को प्राप्त करता है तथा उसके अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता में वृद्धि करता है तत्पश्चात् और समायोजन प्राप्त करने का भी प्रयास करता रहता है। प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण निम्नवत् किया जा सकता हैं-

प्रत्यक्षीकरण को स्पष्ट करते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार प्रकट किया है जिससे प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे

हैबर के अनुसार, प्रत्यक्षीकरण प्रक्रियाओं में वे सभी प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं जिनका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों पर पड़ने वाली उद्दीपन ऊर्जा का, उद्दीपन की अनुक्रिया को तथा इस उद्दीपन की समाप्ति तक न मिटने वाली स्मृति की सूचना देने वाले अनुभवों के रूप में अनुवादित या व्याख्या करना है।

आरजनेक के अनुसार, प्रत्यक्षीकरण प्राणी का एक मनोवैज्ञानिक प्रकार्य है जिसका सम्बन्ध वातावरण की स्थिति या परिवर्तनों की सूचना ग्रहण करने की कार्य प्रणाली है।

इसी प्रकार फोर्गस ने प्रत्यक्षीकरण को स्पष्ट करते हुए कहा कि यह वातावरण से सूचना का अवशोषण करने वाली प्रक्रिया है जिसकी चार अवस्थाएँ हैं-

- ज्ञानेन्द्रियों से भौतिक ऊर्जा ग्रहण करना।
- सूचना देने वाले स्नायु आवेग के रूप में भौतिक ऊर्जा का रूप परिवर्तित होना।
- स्नायु आवेग के मस्तिष्क में पहुँचने पर मध्यस्तात्मक क्रियायें उत्पन्न होना।
- प्रत्यक्षपरक अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार प्रकट होना।

प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रियाओं का विश्लेषण

प्रत्यक्षीकरण में निम्न प्रक्रियायें पायी जाती हैं:

प्रतीकात्मक प्रक्रिया

ज्ञानेन्द्रियों के समक्ष उद्दीपन होने पर ये प्रभावित होती है, जिससे नाड़ी प्रवाह ज्ञानवाही नाड़ियों के द्वारा होता हुआ सुषुम्ना और उसके बाद में मस्तिष्क में पहुँचता है जिससे संवेदना होती है।

एकीकरण प्रक्रिया

उद्दीपन के फलस्वरूप संवेदनाओं तथा उत्पन्न विशेषताओं के ज्ञान में एकीकरण होता है। जिनका सम्बन्ध संवेदना तथा वस्तुस्थिति से नहीं होता है, अलग हो जाती हैं।

भावात्मक प्रक्रिया

उद्दीपन का अर्थ व्यक्ति का स्पष्ट हो जाना है तथा इस अर्थ के साथ सुख-दुख, प्रेम-घृणा आदि संवेग जुड़ जाते हैं। फलस्वरूप प्रत्यक्षपूरक अनुभव होता है।

उपरोक्त विश्लेषण से प्रत्यक्षीकरण की विशेषतायें प्रकट होती हैं, जैसे प्रत्यक्षीकरण एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसका प्रथम क्रार्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उद्दीपकों को ग्रहण करना है। द्वितीय स्तर में भौतिक ऊर्जा को ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से स्नायु आवेग में परिवर्तन करना है। तृतीय स्तर पर स्नायु, आवेग जब मस्तिष्क में पहुँचते हैं तो अनेक संवेदनायें होती हैं। इनमें चयन होता है तथा व्यक्ति को प्रत्यक्षपरक अनुभव होता है। प्रत्यक्षीकरण की स्थिति में उद्दीपन से सम्बन्धित संवेदनाओं में एकता और संगठन होता है। केवल अर्थपूर्ण उत्तेजनाएं व्यक्ति को आकर्षित करती हैं। प्रत्यक्षीकरण चुनाव तथा ध्यान पर आधारित है। बिना माध्यम के प्रत्यक्षीकरण सम्भव नहीं है यदि हम किसी वस्तु को ध्यान से नहीं देखेंगे तो सामने होने पर भी प्रत्यक्षीकरण प्रायः कम होता है। प्रत्यक्षीकरण पूर्व अनुभव पर बहुत कुछ निर्भर होते हैं। सीखना प्रत्यक्षीकरण का महत्वपूर्ण साधन है। सामाजिक सम्बन्ध की सफलता उसके प्रत्यक्षीकरण तथा निर्णय की शुद्धता पर आधारित होती है। प्रत्यक्षीकरण वस्तुगत न होकर आत्मगत होता है। विचारधारा का प्रभाव सामाजिक प्रत्यक्षीकरण पर पड़ता है।

6.2.2 प्रत्यक्षीकरण के आधार

व्यक्ति वस्तुओं तथा व्यक्तियों का प्रत्यक्षीकरण न करके स्वयं का प्रत्यक्षीकरण करता है। निम्नलिखित तत्व प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते हैः

(1) पूर्व अनुभव

(2) मनोवृत्ति

(3) ज्ञानेन्द्रियाँ

(4) मस्तिष्क की क्रियाशीलता

(5) प्रत्यक्षकर्ता की क्षमता

(6) अभिप्रेरणा का प्रभाव

(7) सूचनाओं की मात्रा एवं उनका अनुक्रम

(8) प्रात्यक्षिक बल

(9) सेट का प्रभाव

(10) पुनर्बल

(11) संदर्भ का प्रभाव

(12) मूल्य व्यवस्था

प्रत्यक्षीकरण पर पूर्व अनुभव का महत्वपूर्ण हाथ होता है। वह किसी स्थिति अथवा वस्तु का अर्थ तभी लगा सकता है। जब उसके समान की अन्य वस्तुओं से भी परिचित हो। किसी व्यक्ति अथवा सम्बन्ध का आँकन पूर्व अनुभव पर ही निर्भर होता है। उदाहरण के लिए यदि हम पानी में किसी समय डूबने से बच जाते हैं, पानी से डरने लगते हैं। गाड़ी जब आती है तो हम उसे बिना देखे जानलेते हैं कि गाड़ी आ रही है ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमें पूर्व अनुभव है कि इस प्रकार की आवाज केवल गाड़ी जाने पर ही होती है।

प्रत्यक्षीकरण पर मानसवृत्ति का भी प्रभाव पड़ता है। मानसवृत्ति का तात्पर्य व्यक्ति की मानसिक विशेषता, स्वभाव, योग्यता, स्तर, मनोवृत्ति, अभिप्रेरणा आदि से है। इस प्रकार की वृत्तियाँ व्यक्ति का ध्यान उत्तेजकों की ओर आकृष्ट करती हैं तथा उत्तेजकों के प्रति आककिर्षत करती है।

ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही प्रत्यक्षीकरण सम्भव होता है। अलग-अलग ज्ञानेन्द्रियाँ अलग-अलग कार्य करती हैं। परन्तु उनमें सहयोगिक भाव पाया जाता है। यदि ज्ञानेन्द्रियों में कोई खराबी उत्पन्न हो जाती हैं तो प्रत्यक्षीकरण उचित नहीं हो पाता है।

व्यक्ति को मस्तिष्क के कारण ही बाह्य विषय का ज्ञान होता है। मस्तिष्क द्वारा ही विभिन्न वस्तुओं तथा उसके परस्पर सम्बन्धों को जाना जाता है। प्रत्यक्षकर्ता की क्षमता तथा प्रत्यक्षीकरण में सम्बन्ध है। क्षमता से तात्पर्य निर्णयों की संगति की मात्रा है। निर्णय की क्षमता व्यक्ति की विशेषताओं पर निर्भर होती है। बुद्धि,बल,मानसिक योग्यता, वायु, स्तर आदि के प्रभाव पड़ते हैं।

व्यक्ति को क्रियाशील बनाने में प्रेरणा का प्रमुख हाथ होता है। व्यवहार की उत्पत्ति प्रेरणा से ही होती है। यह मानसिक क्रियाओं को प्रभावित करती है। जब व्यक्ति को भूख लगती है तो उसे भोजन सम्बन्धित चीजें अधिक दृष्टिगोचर होने लगती हैं। उसे होटल तथा चाय की दूकान अवश्य दिखायी देती है। इसी प्रकार यदि आप पुस्तक लेने के लिए बाजार जा रहे हैं तो पुस्तकों की दूकान जरूर देखेंगे।

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के लिए काफी सूचनाओं की आवश्यकता होती है क्योंकि सामाजिक कारक अनेक होते हैं और वह सभी किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। सूचनाओं का रूप भी होना आवश्यक होता है।

जो वस्तुयें अथवा स्थितियाँ सामाजिक दृष्टि से मूल्यवान होती है और व्यक्ति की आवश्यकताओं से भी सम्बन्धित होती हैं उनमें आकर्षण अधिक होता है। एक अध्ययन में मर्फी ने यह पाया कि गरीब घर के बच्चे पैसे का आकार अधिक बड़ा बनाते है जबकि धनवान घर के बच्चे दोटा आकार । उन्होंने दो बच्चों के दो समूह एकत्र किया। एक समूह गरीब बच्चों का था तथा दूसरा अमीर बच्चों का। उन्हें एक एक सिक्के की आकृति बनाने को कहा गया। अमीर बच्चों ने दोटी आकृति बनाई जबकि गरीब बच्चों ने बड़ी आकृति बनाई। गरीब बच्चों के लिए पैसे का अधिक मूल्य होता है। जबकि अमीर बच्चे इसको महत्व कम देते हैं कयोंकि उहें आसानी से मिल जाते हैं।

प्रत्यक्षीकरण पर पुनर्बल का प्रभाव पड़ता है। जब एक वस्तु या स्थिति से उसे ज्ञान हो जाता है या उसे पुरस्कार मिल जाता है तथा उसकी संतुष्टि हो जाती है तो वह उस स्थिति तथा वस्तु का प्रत्यक्षीकरण शीघ्र कर लेता है। उदाहरण के लिए कई प्रकार के डिब्बे बालक को दिखाये जायें और मिठाई वाले डिब्बे को ढूँढ़ने के लिए कहा जाय तो वह एक बार तो सभी डिब्बे को देखेगा जब तक मिठाई का डिब नहीं मिलेगा परन्तु वार से मिठाई का डिब्बा वह जल्दी पहचान लेगा।

कोई भी प्रत्यक्षीकरण शून्य में नहीं होता है बल्कि किसी न किसी सन्दर्भ में होता है। ये सन्दर्भ कई प्रकार के हो सकते हैं। अतः इन्द्रिय सन्दर्भ का प्रभाव, इन्द्रिय-पेशीय अन्तःक्रिया सन्दर्भ का प्रभाव आदि।

जिन मूल्यों में व्यक्ति की अधिक रूचि होती है तथा उसके लिए महत्वपूर्ण होते हैं व्यक्ति उनका प्रत्यक्षीकरण जल्दी कर लेता है। उदाहरण के लिए जो व्यक्ति धार्मिक होता है वह धर्मस्थलों का प्रत्यक्षीकरण शीघ्र कर लेता है।

प्रत्यक्षीकरण के आधार के विश्लेषण से यह पता चलता है कि इसका संबंध व्यक्ति के अनुभवों से है क्योंकि व्यक्ति के विगत अनुभव प्रत्यक्षीकरण को उत्पन्न करते हैं अर्थात् जिस वस्तु स्थिति अथवा घटना को वह एक बार अनुभव कर लेता है या देख लेता है उसी प्रकार की स्थिति, घटना या वस्तु फिर उपस्थित होती है तो वह उसे शीघ्र ही प्रत्यक्षीकृत कर लेता है। समाजीकरण तथा प्रवीणता अथवा सीखना ही प्रत्यक्षीकरण के प्रमुख तत्त्व हैं। प्रत्यक्षीकरण की 3 श्रेणियाँ हैं:

1. अभेदक: इस अवस्था मेंजन्म से कुछ महीने तक अपने पराये में शिशु को ज्ञान नहीं होता है। वह मानव तथा पशु में भी अन्तर नहीं कर सकता है।

2. भेदकः इस अवस्था में आयु बढ़ने तथा चेतन का विकास होने से भेद करना सीख लेता है तथा भेद के आधार पर प्रत्यक्षीकरण करता है।

3. सम्बन्ध स्थापनः इस अवस्था में भेद करने की क्षमता को विकसित करने के पश्चात उसके गुणों को जानता है तथा सम्बन्ध के आधार पर व्यक्तियों की भिन्नता करता जाता है।

प्रत्यक्षीकरण की एक अन्य प्रक्रिया व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण है। जिसके द्वारा दूसरे व्यक्तियों के सम्बन्ध में धारणायें, मत या मनोवृत्तियों का निर्माण होता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रत्यक्षीकरण पर केवल संवेदनाओं का ही प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि यह अन्य व्यक्तियों से प्राप्त सूचनाओं पर भी निर्भर करता है।

एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में विचार एवं धारणायें एवं भावनायें प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते हैं। व्यक्तियों के विचार तथा धारणायें कुछ तथ्यों पर निर्भर करते हैं। जैसे-

1. अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्राप्त सूचना।

2. अन्तःक्रिया की मात्रा।

3. सम्बन्धों की मात्रा।

जब किसी व्यक्ति के विषय में केवल परिचय ही होता है तो उसके विषय में ज्ञान भी सीमित होता है अतः अनुक्रिया सीमित होती है। परन्तु अन्तःक्रिया की मात्रा बढ़ने से ज्ञान की वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण का क्षेत्र भी बढ़ता है।

6.2.3 प्रत्यक्षीकरण की अध्ययन विधियां

प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई विधियों की चर्चा की है जो अन्य मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन में भी काम आती है। इनकी सहायता से प्रत्यक्षीकरण को समझना सरल हो जाता है। प्रत्यक्षीकरण की अध्ययन विधियां निम्नलिखित हैं-

1. विटमर रंभ-परीक्षण विधि

परीक्षण निर्माण भेद के गुणात्मक पहलू के अध्ययन के लिए यह विधि सर्वोत्तम् मानी गयी है। इस परीक्षण विधि में पाशल नामक मनोवैज्ञानिक का भारी योगदान है जिसने 10021 बालिकाओं एवं स्त्रियों पर तथा 1221 बालकों तथा पुरूषों पर इस विधि के प्रयोग किए और इसे प्रमाणिक रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2. मीनेसोटा स्थान संबंधी परीक्षण विधि

मीनेसोटा स्थान संबंधी परीक्षण विधि का मुख्य लक्ष्य स्थान प्रत्यक्षीकरण का ज्ञान प्रापत करना ही है। यह लिंक द्वारा प्रतिपादित आकार बोर्ड परीक्षणों का ही परिमार्जित और विकसित रूप है। लिंक के बोर्ड में अनेक आकार प्रकार के गहरे स्थान होते हैं जिनके अनुसार इनमें फिट आने वाले लकड़ी के टुकड़े बने होते हैं। इन टुकड़ों को गहन निरीक्षण द्वारा ही भेद जाना जा सकता है। कुछ टुकड़े एक-दूसरे से इतने भिन्न होते है कि उन्हें पहचानना कठिन नहीं होता। प्रयोज्यों को निर्देश दिया जाता है कि वे टुकड़ों को इन गहरे स्थानों में फिट करें। प्रत्येक प्रयोज्य को केवल तीन प्रयास करने का अवसर दिया जाता है। बाद में मूल्यांकन द्वारा की गयी अशुद्धियों के आधार पर कर लिया जाता है।

3. कार्ड चयन की विधि

सबसे पहले बर्गस्ट्राम ने निषेधात्मक स्थानान्तरण के प्रयोग के लिए कार्ड छांटने की विधि का उपयोग किया। इसमें प्रयोज्य को कार्ड छांटने का निर्देश दिया जाता है और वह छांटे कार्डों को उनके अनुरूप खानों में रखता जाता है। इसमें उसकी भिन्नता के प्रत्यक्षीकरण को समझ लिया जाता है। जो प्रयोज्य अधिक कुशल होते हैं वे शीघ्र ही अनुरूप खानों में कार्डों को जमा कर देते हैं।

4. वेलिंग की खूंटी बोर्ड विधि

इसमें चार ऐसे बोर्ड होते हैं जिनमें छः-छः छेद होते है। इनमें उनके आकार-प्रकार के अनुरूप खूंटियां फिट करनी पड़ती है। यदि एक बोर्ड में गोल खूंटियों का व्यवस्थापन करना होता है तो दूसरे वर्गाकार खूंटियों का तीसरे में तीन गोलाकार तो तीन वर्गाकार, चैथे में दो गोलाकार, दो वर्गाकार और दो त्रिकोणाकार खूंटियों को व्यवस्थित करना होता है। पहले दो बोर्डों में केवल क्रियात्मक सहनियम की आवश्यकता होती है, परन्तु अन्तिम दो बोर्डों में क्रियात्मक सह नियम के साथ-साथ विभेदीकरण की योग्यता भी आवश्यक होती है। स्टेचर तथा वाल्डविन द्वारा क्रियात्मक नियंत्रण तथा आकार प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन के लिए इन सभी वर्गों के बोर्डों का प्रयोग किया गया।

5. निराकरण विधि

इस विधि में प्रयोज्यों को निराकरण पत्र दिया जाता है जिसमें प, फ, म या त, थ, द जैसे अक्षरों को शीघ्र काटने का निर्देश दिया जाता है। प्रयोज्य की योग्यता का मूल्यांकन दिए गए अक्षरों की संख्या, अशुद्ध कटे अक्षरों की संख्या, छोड़े गए अक्षरों की संख्या से किया जाता है। जो कम से कम समय में शुद्धतर अक्षर काट सकता है वह प्रत्यक्षीकरण में उतना ही कुशल मान लिया जाता है।

6. प्रत्यक्षीकरण विस्तार विधि

इस विधि में ध्यान विस्तार विधि की भांति समान चित्रों और उपकरणों का उपयोग किया जाता है। इसी कारण मनोवैज्ञानिक ध्यान विस्तार विधि को ही प्रत्यक्षीकरण अध्ययन की विधि मान बैठे हैं।

समाजीकरण का अर्थ

समाजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो किसी मानव प्राणी को एक जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करता है। समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से ही व्यक्ति अपनी इच्छाओं को सामाजिक ढंग से पूरी करना सीखता है। व्यक्ति की मूल रूप से दो प्रकार की आवश्यकतायें होती हैं- जन्मजात तथा अर्जित। इन आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए उसे अनेक उपाय सीखने होते हैं। जब एक विशिष्ट उपाय से किसी एक आवश्यकता की संतुष्टि हो जाती है तो वह उस आवश्यकता की संतुष्टि के लिए सदैव वही उपाय करता है। बार-बार उपाय के प्रयोग के फलस्वरूप यह उसके व्यवहार का अंग बन जाता है। धीरे-धीरे अनेक तरीके उसके व्यवहार का अंग बनते जाते हैं। उपायों को वह अन्तःक्रिया के फलस्वरूप सीखता है। प्रारम्भ में जब उसकी मूल आवश्यकता केवल भोजन की होती है। इसके लिए वह रोने का प्रत्यक्ष तरीका अपनाता है परन्तु आयु बढ़ने के साथ-साथ रोने की संख्या में कमी आती है और निर्धारित सामाजिक ढंग द्वारा इनकी पूर्ति करता है। इसी प्रकार अन्य आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए वह सामाजिक स्वीकृत तरीकों को सीखता है। इस सीखने के पीछे हमारा मुख्य उद्देश्य सामाजिक अनुकूलन प्राप्त करना होता है। जिस प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति समाज के अनुकूल बनता है उसे ही समाजीकरण कहते हैं। मानव तथा पशु में अन्तर केवल आवश्यकताओं की पूर्ति के ढंगों तथा व्यवहार द्वारा स्पष्ट होता है। पशु सदैव एक सा व्यवहार करता है परन्तु मानव के व्यवहार में परिवर्तन आता रहता है तथा वह मानवीय स्वरूप को धीरे-धीरे प्राप्त करता है। समाज के रीति रिवाज, प्रथायें, रूढ़ियाँ, विश्वास आदि ग्रहण करना ही समाजीकरण कहलाता है।

सामान्यतया व्यक्ति अकेला नहीं रहना चाहता क्योंकि जन्म के समय से ही वह दूसरों पर निर्भर होता है। प्रारम्भ में उसका सामाजिक भागीकरण कम होता है परन्तु धीरे-धीरे इसमें वृद्धि होती जाती है। प्रत्युत्तर में भी भिन्नता देखने को मिलती है। इन प्रत्युत्तरों का कारण व्यक्ति का दूसरों पर आश्रित होना है। इन प्रत्युत्तरों का प्रकार सामाजिक सम्बन्धों की विशिष्टता पर निर्भर होता है। सामाजिक सम्बन्ध सामाजिक प्रतिमान निश्चित करते हैं तथा व्यक्ति इन प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार करता है। तथा उनको अपनी आदत का अंग बनाता है। ये आदतें व्यक्तित्व की स्थायी विशेषतायें बन जाती हैं।

व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं उसकी सामाजिक भावना का विकास साथ-साथ होता है। उम्र के बढ़ने पर बालकों में सामाजिक रूचि का विकास होता है। वह अन्य बालकों के साथ खेलता है तथा क्रिया-कलापों में भाग लेता है। वह दूसरों पर अपना प्रभाव डालना सीखता है तथा आत्म सम्मान की भावना का विकास करता है। धीरे-धीरे वह समाज के सभी गुणों को अपने व्यवहार का अंग बना लेता है। वह सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण का एक जिम्मेदार अंग बन जाता है। अतः जिस तरीके से व्यक्ति समाज के अनुकूल बनता है, उसकी विशेषताओं को ग्रहण करता है तथा सामाजिक जीवन के ढंग अपनाता है उसे समाजीकरण कहते हैं।

समाजीकरण को प्रक्रिया व्यक्ति को उन तरीकों से सुसज्जित करती है जो सामाजिक व्यवहार के अंग माने जाते हैं। वह व्यवहार के तरीकों, नियमों, परम्पराओं, रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, कानूनों आदि का पालन करना समाजीकरण द्वारा सीखना है। समाजीकरण के मुख्यता निम्न कार्य हैः

समाजीकरण द्वारा व्यक्ति में व्यक्ति व्यवहार उत्पन्न करता है । रीति-रिवाजों, विधियों तथा परम्पराओं, धर्म, संस्कृति आदि का अध्ययन कराता है। व्यक्ति इससे संस्कृति का अभिन्न अंग बनाता है। समाजीकरण द्वारा

अन्तःक्रिया का विकास होता है। प्रत्यक्षीकरण का विकास समाजीकरण पर निर्भर है। यह शारीरिक व मनोसांवेगिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के ढंग जानता है। इससे सांवेगिकता का विकास होता है। समाजीकरण से उचित अनुचित का ज्ञान होता है। उचित अनुचित जानने की शक्ति विकसित होती है। निर्णय करने की क्षमता उत्पन्न होती है। वास्तविक जीवन लक्ष्य का निर्धारण होता है। आत्म मूल्यांकन की क्षमता का विकास होता है। अनुभव से सीखने की सामथ्र्य उत्पन्न होती है समायोजन की क्षमता का विकास होता है।

समाजीकरण प्रक्रिया की प्रक्रिया में निम्न प्रकार से चलती है:

1. पालन-पोषण: पालन-पोषण के ढंग बच्चों के व्यवहार को निश्चित करते हैं। माता-पिता द्वारा जिस प्रकार बच्चे का पालन-पोषण किया जाता है तथा जैसा सामाजिक पर्यावरण प्राप्त होता है उसी के अनुरूप उसमें गुण आते हैं, विचारों एवं भावनाओं का विकास होता है तथा प्रत्यक्षीकरण विकसित होता है।

2. सहानुभूति: बालक सहानुभूति के आधार पर ही सम्बन्ध स्थापन का कार्य प्रारम्भ करता है। उसमें अपनत्व की भावना विकसित होती है तथा आत्म ज्ञान उत्पन्न होता है। वह इसके परिणामस्वरूप बाह्य व्यक्ति तथा आत्मीय व्यक्ति में भेद करता है।

3. आत्मीकरण: समाजीकरण की प्रक्रिया आत्मीकरण से ही बढ़ती है। बालक माता-पिता से आत्मीकरण करने में न केवल सुरक्षा अनुभव करता है बल्कि उन कार्यों को भी करना भली प्रकार से सीखता है। वह जब बच्चा बड़ा होता है तो समूहों से भी आत्मीकरण करता है। वह किसी क्लब का सदस्य बनता है और बाद में उसे अपना कहते हुए अपनाने भी कहने लगता है।

4. अनुकरण: अनुकरण चेतन के द्वारा होता है तबकि आत्मीकरण अचेतन के द्वारा कार्य करता है। बालक अनुकरण के माध्यम से ही भाषा का विकास करता है और व्यवहार करना सीखता है।

5. सहकारिता: सहकारिता अथवा सहयोग व्यक्ति की मौलिक आवश्यकता है। समाज एवं व्यक्ति का अस्तित्व सहयोग पर निर्भर है। उदाहरण के लिए यदि माँ बच्चे को दूध न पिलायें तथा देखरेख न करे तो उसका जीवित रहना असम्भव होगा। इसी प्रकार इसकी अनेक आवश्यकताओं की संतुष्टि सहायक क्रियाओं द्वारा सम्भव होती है।

6. निर्देशन: निर्देशों के आधार पर बालक सामाजिक नियमों व परम्पराओं का पालन करना सीखता है। उदाहरण के लिए जब कोई घर में अतिथि आता है तो बालक से अभिवादन करने को कहा जाता है इससे बालक अभिवादन करना सीख लेता है।

7. पारस्परिक व्यवहार: बालक जब बड़ा होता है अन्य बालाकों के साथ खेल समूह का निर्माण करता है। इससे वह खेल समूह के नियमों, कानूनों को सीखता है। दूसरों को प्रभावित करता है तथा स्वयं प्रभावित होता है। दूसरों के साथ उठना, बात-चीत करना, बैठना, खेलना, इत्यादि बालक को समाजीकरण की ओर ले जाता है।

8. **सामाजिक सीखना**: परिवार का प्रमुख कार्य सामाजिक शिक्षा देना होता है। यह शिक्षा चार तत्वों पर आधारित होती है।

(अ) चालकः चालक वह शक्ति है जो किसी कार्य को करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। परिवार का प्रमुख कार्य चालक उत्पन्न करना है जिससे बालक सीखने की क्रिया में भाग ले।

(ब) संकेतः परिवार संकेतों को सिखाता है। बालक संकेतों के आधार पर ही प्रतिक्रिया की ओर बढ़ता तथा उसी दिशा में कार्य करना प्रारम्भ करता भी है।

(स) प्रत्युत्तरः परिवार बालक को सिखाता है कि किस समय में कौन सा प्रत्युत्तर होगा। जब बालक को किसी प्रकार का कार्य करने से परिणाम प्राप्त होता है तो वह संतुष्ट होता है।

(द) पुष्टीकरणः बालक जब पुरस्कृत हो जाता है तो वह उसी प्रकार का व्यवहार बार-बार करता है और उसे अपने जीवन का अंग बना लेता है।

9. पुरस्कार एवं दण्ड: बालक उन कार्यो को करना सीखता है जिनकों करने से उसकी प्रशंसा की जाती है। इसके विपरीत जिन कार्यो को करने से दण्ड मिलता है या हतोत्याहित किया जाता है उनकों नहीं करता है। इस विधि की सहायता से ही बालक दैनिक क्रिया उचित समय एवं स्थान पर करना सीखता है, उसे खाने का ढंग आता है, तथा आवश्यक संतुष्टि के तरीकों को जानता है।

समाजीकरण की परिभाषा

समाजीकरण सीखने की प्रक्रिया है जिसका प्रारम्भ बचपन से ही हो जाता है। प्रारम्भ में इसकी गति अत्यन्त तीव्र होती है जो आगे चल कर क्रमशः शिथल होती जाती है किन्तु यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो निरनतर चलती रहती है। समाजीकरण को अनेक ढंग से पारिभषित करने का प्रयास किया गया है। समाजीकरण को हम निम्नलिखित परिभाषाओं से समझ सकते हैं:

न्यूमेयर - **व्यक्ति के सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित होने की प्रक्रिया को ही समाजीकरण कहते हैं।**

जानसन, एच.एम.- ***सामाजीकरण एक प्रकार का सीखना है जो सीखने वाले को सामाजिक कार्य करने के योग्य बनाता है।***

जानसन के अनुसार-

- यह सीखने की प्रक्रिया है।
- सीखने में सामाजिक कार्यों को कर सकने में समर्थ होता है।

ग्रीन.ए.डब्लू- ***समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति का विकास इस भाँति होता है कि हम उसे सामाजिक प्राणी कह सकते हैं।***

ग्रीन के अनुसार:

- समाजीकरण एक प्रक्रिया है जो निरन्तर कार्य करती रहती है।
- इस प्रक्रिया का कार्य व्यक्तित्व का विकास करना है।
- सामाजिक गुणों का ग्रहण इस प्रक्रिया से सम्भव होता है।
- सामाजिक गुण तथा व्यवहार अर्जित होता है।

यंग, किंवाल:- ***समाजीकरण का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिससे व्यक्ति समाजिक और सांस्कृतिक संसार में प्रवेश करता है जिससे वह समाज का और उसके विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है और जो समाज की मान्यताओं को स्वीकार करने को प्रेरित करती हैं।***

यंग की परिभाषा में निम्न विशेषताएँ हैं:-

- समाजीकरण सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया है।
- इस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनता है।

- वह समाज का आवश्यक अंग बनता है।
- विभिन्न समूहों की सदस्यता ग्रहण करता है।
- समाज की मान्यताओं को मानना सीखता है।

गिलिन जे. एल. ऐण्ड गिलिन जे.पी. - समाजीकरण से हमारा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति समूह का क्रियात्मक सदस्य बनता है, उसी के स्तर के अनुसार कार्य करता है, लोकाचार, परम्परा तथा सामाजिक परिस्थितियों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करता है।

समाजीकरण के अभिकरण

समाजीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है। जिसमें विभिन्न संस्थाओं अथवा अभिकरणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी व्यक्ति के समाजीकरण में मात्र एक अभिकरण का योगदान नहीं होता बल्कि समय-समय पर विभिन्न अभिकरसाोंं के माध्यम से व्यक्ति समाजीकृत होता रहता है। प्रायः समाजीकरण का कार्य निम्न **अभिकरण के माध्यम से सम्पन्न होता है।**

6.3.5 परिवार

व्यक्ति का प्रारम्भिक समाजीकरण परिवार से ही प्रारम्भ होता है। बालक का प्रारम्भिक जीवन इसी संस्था में व्यतीत होता है। जिससे वह परिवार की संस्कृति का अभिन्न अंग बन जाता है। परिवार में रह कर ही बालक आवश्यकताओं की पूर्ति के ढंगों को जानता है। समाज और संस्कृति के आधारभूत तत्व प्राप्त करता है। अनौपचारिक शिक्षा ग्रहण करता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता का ज्ञान प्राप्त करता है। रीति-रिवाजों, परम्पराओं तथा विश्वास का ज्ञान प्राप्त करता है। प्रेम की भावना का विकास होता है। सहयोग करना सीखता है। स्वार्थ त्याग की भावना विकसित होती है। सहिष्णुता का ज्ञान तथा उनका पालन करना सीखता है। कर्तव्यों का ज्ञान तथा उनका पालन करना सीखता है। आज्ञा पालन की योग्यता का विकास होता है। परिश्रम करना सीखता है। अनुशासन भी सीखता है। सामंजस्य करने की क्षमता का विकास होता है।

6.3.6 पड़ोस

पड़ोस से बालक अनेक सामाजिक गुण सीखता है तथा व्यवहार का अर्थ समझता है। पड़ोस जैसा होता है बालक भी उसी का अंग बनता है और उसकी विशेषताओं को ग्रहण करता है।

6.3.7 विद्यालय

परिवार के पश्चात् विद्यालय का स्थान महत्व की दृष्टि से आता है। क्योंकि विद्यालय में बालक के बौद्धिक ज्ञान एवं तार्किक क्षमता का विकास करता है। विद्यालय का पर्यावरण बालक पर अमिट प्रभाव डालता है। बालक पर विद्यालय का निम्न प्रभाव पड़ता हैः

बालक की विचारधारा का निर्माण होता है। भावनाओं की दिशा निर्धारित होती है। अनुशासन का ढंग विकसित होता है। सामूहिक कार्यो को प्रोत्साहन मिलता है। विचारों का आदान-प्रदान होता है।सहकारिता की भावना विकसित होती है। कार्य रुचि उत्पन्न होती है। परिवार से प्राप्त गुणों में गहनता एवं निखार आता है।

विद्यालय के परिवेश के 3 अंग हैंः (1) अध्यापकों का व्यवहार तथा माध्यम (2) बालकों का स्तर तथा व्यवहार (3) पठन-पाठन सामग्री। निरंकुश प्रवृत्ति के अध्यापक बालक में समाज विरोधी तथा हीन भावना उत्पन्न करते हैं।

अति सीधे अध्यापकों से बालक अनुशासनहीनता सीखता है। इसी प्रकार सहपाठियों का भी प्रभाव बालक पर पड़ता है।

खेल समूह

खेल समूह के माध्यम से बालक अन्तः क्रिया में भाग लेना सीखता है तथा पारस्परिक प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता आदि सीखता है। साधारणतः खेल समूह से निम्न लाभ होते हैं

- बालक आदान-प्रदान सीखता है।
- सामाजिक एवं सामूहिक कार्यो में रुचि होती है।
- समूहों में भाग लेना सीखता है।
- समूह एवं दल बनाना सीखता है।
- उत्तरदायित्व ग्रहण करना सीखता है।
- भूमिका निर्वहन का महत्व जानता है।
- प्रतियोगिता की भावना विकसित होती है।
- नियमों तथा कानूनों का पालन करना सीखता है।

6.3.8 धार्मिक संस्थायें

धर्म का प्रमुख कार्य उत्तम आचरण का विकास करना है। व्यक्ति धर्म के प्रभाव के कारण ही उचित अनुचित, अच्छा-बुरा, स्वर्ग-नरक आदि का अर्थ समझता है तथा धार्मिक बन्धनों को पवित्र बंधन मानता है।

6.3.9 राजनैतिक संस्थायें

राजनैतिक जागरूकता एवं सहभागिता सामाजिक जीवन का प्रमुख अंग है। व्यक्ति ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत, जिला पंचायत, राज्य के विधान मंडल आदि के द्वारा व्यवहार एवं रहन-सहन के तरीके सीखता है। कानून का ज्ञान होने पर वह व्यवहार का रूप बदल देता है। तानाशाही शासन में असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है।

6.3.10 आर्थिक संस्थायें

आर्थिक पर्यावरण मानव जीवन तथा सामाजिक ढाँचे का विकास करता है। उदाहरण के लिए समुद्री तट पर जो लोग मछली पकड़ने और समुद्री व्यापार करने का कार्य करते हैं। उसमें व्यापारिक योग्यता का समुचित विकास होता है।

6.3.11 विवाह संस्था

विवाह के उपरान्त पति-पत्नी पारस्परिक रहन-सहन सीखते हैं। उनमें समायोजन की क्षमता उत्पन्न होती है। आचार-विचार, रहन-सहन, रुचि-अभिरुचि, ज्ञान-अज्ञान आदि का अनुकूलन करना आता है। बच्चे होने पर पिता को उत्तरदायित्व ग्रहण करना आता है।

6.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद समाजीकरण के अर्थ एवं परिभाषा की में जानकारी प्राप्त की। इसके साथ ही समाजीकरण के अभिकरण के बारे में भी जानकारी मिली जिसके अंतर्गत एक बालक सामाजिक प्राणी बनता है और समाज के अनुरूप व्यवहार करना सीखता है।

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

- प्रत्यक्षीकरण के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।
- प्रत्यक्षीकरण की अध्ययन विधियों का उल्लेख कीजिए।
- समाजीकरण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
- समाजीकरण के अभिकरण कौन-कौन से है? व्याख्या कीजिए।

6.6 संदर्भ ग्रंथ

- शर्मा, सुनीता, व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त, रावत प्रकाशन, 2012,
- शर्मा, सीमा, सामान्य मनोविज्ञान यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2011,
- मूरजानी, जानकी, सामाजिक मनोविज्ञान, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2007,
- मिश्रा, एम0के0 असामान्य मनोविज्ञान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2011,
- सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981
- सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004।
- सिंह, रतन, सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009,
- चैबे, सरयू प्रसाद, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2002
- मिश्रा, पी0डी0, एवं मिश्रा बीना, व्यक्ति एवं समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010,
- वर्मा प्रीती, श्रीवास्तव डी0एन0 सामान्य मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2007
- यादव के0एन0 सिंह यादव रामजी, तुलनात्मक और शिक्षा मनोविज्ञान अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2008
- मिश्रा महेन्द्र कुमार विकासात्मक मनोविज्ञान, यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि. जयपुर, प्रथम संस्करण, 2007
- कटारिया, सुरेन्द्र, प्रशासनिक चिंतक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर एवं दिल्ली, 2005,

इकाई-07

मूल मनोसामाजिक प्रक्रियाएं -III: मनोवृत्ति एवं पूर्वाग्रह

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 मनोवृत्ति (Attitude)

7.2.1 मनोवृत्ति का अर्थ

7.2.2 मनोवृत्ति के प्रकार

7.2.3 मनोवृत्ति के मापन

7.3 पूर्वाग्रह (Prejudice)

7.3.1 पूर्वाग्रह का अर्थ

7.3.2 पूर्वाग्रह की प्रकृति एवं परिभाषाएं

7.3.3 पूर्वाग्रहके करक

7.3.4 पूर्वाग्रहों के प्रकार

7.3.5 पूर्वाग्रहों के लाभ एवं हानियाँ

7.4 सारांश

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.6 संदर्भ ग्रंथ

7.0 इकाई के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- मनोवृत्तियों को परिभाषित कर पाने में सक्षम होंगे
- मनोवृत्तियों के विभिन्न प्रकारों के विषय में बता सकेंगे
- मनोवृत्तियों के मापन की विभिन्न विधियों पर प्रकाश डाल सकेंगे
- पूर्वाग्रह का अर्थ तथा परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे
- पूर्वाग्रह के कारक की विषेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे
- पूर्वाग्रह के प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे
- पूर्वाग्रह को कम करने के उपाय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में मानव व्यवहार की अवधारणा का विष्लेषण किया गया है। मानव व्यवहार अवयव के शारीरिक एवं मानसिक पक्षों की अभिव्यक्ति का परिणाम है। इसकी अभिव्यक्ति उद्देष्यों एवं विषयों के प्रति होती है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के विष्वास, मनोवृत्ति, सहयोग, सहानुभूति, अनुकरण तथा अन्य सभी वैज्ञानिक एवं जैविकीय तत्व प्रदर्षित होते हैं। यह व्यवहार जैविकीय तथा सामाजिक सम्प्रेरकों द्वारा निर्देषित होता है। अन्य अर्थ में मानव व्यवहार पर जैविकीय एवं सामाजिक कारक अपना प्रभाव डालते हैं तथा एक विषेष व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं। मानव व्यवहार के मूलाधारों पर चर्चा इस इकाई के अन्त में की गई है।

7.2 मनोवृत्ति (Attitude)

मानव व्यवहार एक जटिल व्यवस्था है। मानव के आस-पास का वातावरण मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करता है। मानव व्यवहार व्यक्ति द्वारा समाज में रहते हुए प्राप्त किए जाते हैं वहीं दूसरी ओर व्यक्ति उसे अपने परिवेश से भी प्राप्त करता है।

7.2.1 मनोवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषाएं Meaning and Definitions of Attitude)

मनोवृत्ति व्यक्ति की एक आन्तरिक दशा है जो उसे कोई कार्य करने अथवा छोड़ने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रवृत्ति के कारण ही व्यक्ति उन वस्तुओं की ओर अधिक अग्रसर होता है जिनको वह अधिक पसंद करता है तथा नापसंद की वस्तुओं से दूर भागता है। इस प्रकार मनोवृत्ति एक मानसिक तत्परता की अवस्था है जो पूर्व अनुभवों द्वारा संगठित होती है जो व्यक्ति के प्रत्यन्तर का निर्दिष्ट गतिगामी प्रयत्न उन सब वस्तुओं तथा स्थितियों के प्रति करती है जिनसे वह संबन्धित है। मनोवृत्ति किसी घटना,व्यक्ति आदर्श इत्यादि से संबन्धित पक्ष तथा विपक्ष दोनों में होती है। इस कारण मनोवृत्तियों में रूचि-अरूचि, अच्छा-बुरा, अनुकूल-प्रतिकूल आदि सभी प्रकार के भावों का समावेश होता है। मनोवृत्तियों द्वारा ही व्यवहार की दिशा का निर्धारण होता है। मनोवृत्तियाँ कई प्रकार की होती है जैसे-सामाजिक, विशिष्ट व्यक्तियों के प्रति, विशिष्ट समूहों के प्रति। सामाजिक मनोवृत्ति में प्रतिस्पर्धा, सहयोग, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि सम्मलित होती है। विशिष्ट व्यक्तियों के प्रति व्यवहार सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होता है। जैसे माता-पिता तथा भाई-बहन के साथ हमारा व्यवहार भिन्न होता है।

अभिरूचियों या अभिवृत्तियों का सम्बन्ध विभिन्न परिस्थितियों वस्तुओं, व्यक्तियों एवं समूहों के प्रति व्यक्ति के विचारों, अनुभूति एवं दृष्टिकोण से है। ये किसी वस्तु या विषय के प्रति व्यक्ति की मानसिक प्रतिक्रिया या प्रतिबिम्ब हैं। उदाहरण के लिए, यदि हम किसी व्यक्ति से यह पूछते हैं कि अन्रतजातीय विवाह के प्रति आपके क्या विचार हैं? पूंजीवाद के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है? अथवा कष्ट के प्रति आपकी क्या अनुभूति है? तो जो उत्तर हमें प्राप्त होंगे, वे ही उन विषयों के प्रति व्यक्ति की मानसिक प्रतिछाया होगी, इसे ही हम मनोवृत्ति कहते हैं। दूसरे शब्दों में, किसी भी परिस्थिति, व्यक्ति, घटना, विषय एवं वस्तु के प्रति व्यक्ति की जो विशिष्ट मानसिक दशा होती है, उसे ही मनोवृत्ति कहते हैं।

अभिरूचि मानव के विविध अनुभवों का फल होती है। यह व्यक्ति के लिए प्रेरणात्मक होती है। इससे प्रेरित होकर व्यक्ति अनेक कार्य करता है। मनोवृत्ति अनुभवों द्वारा संगठित होती है। मानव व्यवहार को समझने में मनोवृत्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मनोवृत्तियों को ज्ञात करना, उनका वर्गीकरण करना एवं उन्हें मापना भी सम्भव है। यही कारण है कि समाज मनोविज्ञान में मनोवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है। मनोवृत्तियों के अध्ययन के आधार पर सामाजिक समस्याओं को भी समझा जा सकता है। हम मनोवृत्तियों की जानकारी के आधार पर

लोगों के व्यवहार को सरलता से समझ सकते हैं, उनके बारे में भविष्यवाणी कर सकते हैं तथा उन्हें नियन्त्रित करने का प्रयास कर सकते हैं।

अभिवृत्तियों को निम्नलिखित विद्वानों ने भी परिभाषित करने का प्रयास किया हैः

आलपोर्ट के अनुसार, *''मनोवृत्ति मानसिक तथा स्नायुविक तत्परता की एक स्थिति है, जो अनुभव के द्वारा निर्धारित होती है और जो उन समस्त वस्तुओं तथा परिस्थितियों के प्रति हमारी प्रतिक्रियाओं को प्रेरित एवं निर्देशित करती है, जिनसे कि वह मनोवृत्ति संबन्धित है।''*

क्रेच तथा क्रचफील्ड के अनुसार, *''व्यक्ति को अपनी दुनिया के किसी पक्ष से संबन्धित प्रेरणात्मक, संवेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक और ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के सुस्थिर संगठन को मनोवृत्ति कहकर परिभाषित किया जा सकता है।''*

वी.वी. अकोलकर, *''एक वस्तु या व्यक्ति के विषय में सोचने व अनुभव करने तथा उसके प्रति एक विशेष ढंग से कार्य करने की तत्परता की स्थिति को मनोवृत्ति कहते हैं।''*

न्यूकाम्ब के अनुसार, *''अभिवृत्ति किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना, विचार अथवा मूल्य के प्रति एक विशेष ढंग से अनुभव करने, क्रिया करने तथा व्यवहार करने की प्रवृत्ति है।''*

मनोविज्ञान परिभाषा कोश के अनुसार, *''अभिवृत्ति सामाजिक पर्यावरण के सम्पर्क में आने पर मन में किसी वस्तु, व्यक्ति, आदि के प्रति अनुकूल या प्रतिक्रिया करने की एक सुनिश्चित स्थायी प्रकृति है।''*

थर्सटन के अनुसार, *''किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के पक्ष या विपक्ष में सकारात्मक या नकारात्मक भाव की तीव्रता को मनोवृत्ति कहते हैं।''*

इन उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति किसी विषय, व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति, आदि के प्रति व्यक्ति की जागरूक मानसिक प्रतिक्रिया है जो उसे एक विशेष प्रकार से सोचने एवं कार्य करने को पे्ररित करती है।

अभिवृत्तियों की विशेषताएं (Characteristics of Attitude)

अभिवृत्तियों (मनोवृत्तियों) की विशेषताओं के आधार पर हम मनोवृत्ति की प्रकृति को और अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं।

शैरिफ ने निम्नलिखित विशेषताओं का वर्णन किया है:

(1) किसी भी वस्तु या व्यक्ति के प्रति मनोवृत्ति को समाज द्वारा सीखा जाता है। हम अछूत जातियों के प्रति भेद-भाव रखने की मनोवृत्ति को सामाजिक सम्पर्क द्वारा सीखते हैं, यह जन्मजात नहीं होती है। कोई भी व्यक्ति साम्यवाद विरोधी अथवा पूंजीवाद के पक्ष में मनोवृत्ति को लेकर पैदा नहीं होता है। उसकी मनोवृत्तियां तो समाज के सम्पर्क से बनती हैं।

(2) मनोवृत्तियों को सामाजिक सम्पर्क के द्वारा सीखा जाता है। अतः एक बार जिस मनोवृत्ति को अपना लिया जाता है, वह बहुत कुछ स्थायी रूप से व्यक्ति में मौजूद रहती है, यद्यपि उसमें परिवर्तन भी किया जा सकता है, किन्तु यह एक कठिन एवं लम्बी प्रक्रिया है।

(3) किसी भी मनोवृत्ति का निर्माण शून्य में नहीं होता है। इसके लिए दो बातों का होना आवश्यक है-एक, व्यक्ति जिसके मस्तिष्क में मनोवृत्ति का निर्माण होता है और दूसरी, कोई व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति, विषय एवं घटना का होना जिसके प्रति व्यक्ति मनोवृत्ति का निर्माण करता है। इस प्रकार मनोवृत्ति का सम्बन्ध सदैव ही किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति व्यक्ति के विचारों, व्यवहारों या क्रियाओं से होता है।

(4) मनोवृत्ति का सम्बन्ध किसी एक समय में एक ही वस्तु, व्यक्ति और घटना से भी हो सकता है और कई वस्तुओं, व्यक्तियों एवं घटनाओं से भी। अलग-अलग वस्तुओं एवं विषयों के प्रति एक ही व्यक्ति की मनोवृत्ति भिन्न-भिन्न हो सकती है तथा विभिन्न समूहों की मनोवृत्तियों में भी भिन्नता पायी जाती है।

(5) मनोवृत्ति व्यक्ति को किसी वस्तु, घटना, परिस्थिति या विषय के प्रति एक विशेष प्रकार से क्रिया करने की प्रेरणा देती है।

(6) मनोवृत्ति एक व्यक्ति की भी हो सकती है और सारे समूह तथा समाज की भी। उदाहरणार्थ, विधवा-पुनर्विवाह के पक्ष एवं विपक्ष में व्यक्ति एवं समाज दोनों मनोवृत्ति देखी जा सकती हैं। व्यक्ति एवं समाज की मनोवृत्ति में समानता एवं विभिन्नता हो सकती है।

शैरिफ द्वारा बतायी गयी विशेषताओं के अतिरिक्त मनोवृत्ति की विशेषताओं का कुछ अन्य विद्वानों ने भी उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं:

(7) व्यक्ति या समूह किसी वस्तु, व्यक्ति, विषय, घटना, परिस्थिति, आदि के प्रति ही मनोवृत्ति का निर्माण करते हैं। इसके अभाव में मनोवृत्ति नहीं बन सकती है। जब तक व्यक्ति या समूह के सामने कोई व्यक्ति या वस्तु न हो तब तक उसके प्रति मनोवृत्ति कैसे बन सकती है।

(8) मनोवृत्ति के साथ व्यक्ति के संवेग भी जुड़े होते हैं। जिस अध्यापक के प्रति हमारी मनोवृत्ति सकारात्मक होती है उसके प्रति हम प्रेम, श्रद्धा, भक्ति एवं सहयोग के भाव रखते हैं, दूसरी ओर जिन लोगों के प्रति हमारी मनोवृत्ति प्रतिकूल होती है, उनके प्रति हम घृणा, क्रोध एवं उत्तेजना का प्रदर्शन करते हैं।

(9) अनेक बार तो मनोवृत्तियों का निर्माण जान-बूझकर एवं चेतन रूप में किया जाता है, किन्तु कई बार वे हमारे अचेतन मन की उपज होती हैं और हम स्वयं भी नहीं जानते है कि कौन-सी मनोवृत्ति किस कारण से पैदा हुई। मनोवृत्तियों का विकास एक लम्बे समय के अनुभवों एवं घटनाओं के जमाव के कारण होता है।

(10) मनोवृत्ति का सम्बन्ध व्यक्ति की किसी-न-किसी आवश्यकताओं एवं समस्याओं से होता है। जाति-प्रथा एवं संयुक्त परिवार को बनाये रखने, दहेज, बाल-विा◌ाह, विधवा पुनर्विवाह, राजनीतिक दल, विदेशी व्यापार, सरकार द्वारा ऋण देने, मद्यनिषेध, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, पर्दा-प्रथा, आदि अनेक विषयों से संबन्धित यदि हम कोई मनोवृत्ति रखते हैं तो इसका कारण है कि हम किसी-न-किसी रूप में इन बातों से जुड़े हुए हैं। ये व्यक्ति की किसी-न-किसी आवश्यकता की पूर्ति करती हैं।

(11) हम उसी व्यक्ति, विषय या परिस्थिति के प्रति मनोवृत्ति प्रकट करते हैं जिनसे हम परिचित हैं, अनजान व्यक्ति या विषय के प्रति हम मनोवृत्ति नहीं बना सकते।

उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट है कि किसी वस्तु, विषय, व्यक्ति, व्यक्ति, परिस्थिति एवं घटना, आदि के प्रति व्यक्ति अपने मन में जो विचार रखता है, जो व्यवहार एवं दृष्टिकोण प्रकट करता है, उसे हम मनोवृत्ति कहते हैं। यह मनोवृत्ति जन्मजात नहीं होती वरन् समाज द्वारा सीखी जाती है। मनोवृत्तियां काफी हद तक स्थायी होती हैं। यद्यपि ये परिवर्तित भी होती हैं। मनोवृत्तियों का सम्बन्ध व्यक्ति की किसी-न-किसी आवश्यकता एवं समस्या से होता है। मनोवृत्ति के साथ व्यक्ति के संवेग जुड़े होते हैं। यह व्यक्ति के व्यवहार को तय करती हैं, उसे नियन्त्रित करती हैं और दिशा निर्देश देती हैं।

7.2.2 मनोवृत्ति के प्रकार (Types of Attitude)

सामान्यतः अभिवृत्तियों को अनुकूलता व प्रतिकूलता के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है-

1. धनात्मक अभिवृत्ति- यदि अभिवृत्ति की प्रकृति किसी व्यक्ति, वस्तु आदि के प्रति अनुकूल है तो उसे धनात्मक अभिवृत्ति कहते हैं।

2. ऋणात्मक अभिवृत्ति- धनात्मक अभिवृत्ति के उलट यदि अभिवृत्ति किसी वस्तु, विचार या व्यक्ति के प्रति प्रतिकूल है तो उसे ऋणात्मक या नकारात्मक अभिवृत्ति कहा जाएगा।

3. तटस्थ अभिवृत्ति- यदि किसी व्यक्ति, विचार व वस्तु आदि के प्रति अभिवृत्ति न तो अनुकूल हो या न प्रतिकूल हो तो उसे तटस्थ अभिवृत्ति कहते हैं।

आलपोर्ट ने भी तीन प्रकार की अभिवृत्तियों का वर्णन किया है-

1. सामाजिक अभिवृत्तियां- वे अभिवृत्तियों जो व्यक्तियों, वस्तुओं, परिस्थितियों से संबंधित होती है, उन्हें सामाजिक अभिवृत्तियां कहते हैं।

2. विशिष्ट व्यक्तियों के प्रति अभिवृत्ति- वे अभिवृत्तियां जो किसी खास, विशिष्ट व्यक्तियों के प्रति निर्मित की जाती है, उन्हें विशिष्ट अभिवृत्तियां कहते हैं।

3. विशिष्ट समूहों के प्रति अभिवृत्ति- वे अभिवृत्तियां जो किसी विशेष समूह, जाति, धर्म, संस्था के प्रति निर्मित की जाती है, उन्हें विशिष्ट समूह अभिवृत्तियां कहा जाता है।

7.2.3 मनोवृत्ति के मापन (Measuring Attitudes)

अभिवृत्तियों के मापन की निम्नलिखित विधियां प्रयोग में लायी जाती है-

1. क्रम निर्धारण विधि
2. मान विधि
3. परोक्ष विधि

1. क्रम निर्धारण विधि

इस विधि में निर्णायक विविध साधनों का उपयोग करके अभिवृत्ति की माप करते हैं। अतः निर्णायकों के निर्णयों का मध्यमान निकालकर अभिवृत्ति की माप कर ली जाती है। इस विधि के विभिन्न अंग निम्न है-

वस्तु के प्रति मूक व्यवहार- इसमें प्रयोज्य की अभिवृत्ति उसके व्यवहार द्वारा आंकी जाती है। अभिवृत्ति का मूल्यांकन व्यवहार के आधार पर होने से कठिनाई यह है कि प्रयोज्य कभी-कभी अभिवृत्ति के अनुकूल व्यवहार नहीं करता। अतः मूल्यांकन शुद्ध नहीं हो पाता।

शब्द द्वारा- व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति के अनुसार ही बातचीत करता है, भाषण करता है, और लिखता है। इस प्रकार व्यक्ति की बातचीत, लेख और भाषण को जानकर उसकी अभिवृत्ति का पता चल पाता है। परन्तु ये तभी उपयोगी

सिद्ध होते हैं जब ये कथन पूर्वग्रह और पक्षपात से रहित होती हैं। कभी-कभी कथनों के अभिवृत्ति के अनुकूल शुद्धता भी नहीं होती। ऐसी दशा में शाब्दिक कथन से अभिवृत्ति ठीक नहीं पायी जाती।

वैयक्तिक अभिलेख- डायरी, आत्म चरित्र, पत्र, स्वयं के अनुभव आदि व्यक्तिगत अभिलेख अभिवृत्ति के प्रकाशन के अच्छे साधन होते हैं। परन्तु इसमें प्रत्येक के व्यक्तिगत अभिलेख सुलभ नहीं होते।

गौण सहायक स्रोत- इन स्रोतों के अन्तर्गत चेहरे की भाव-भंगिमा, स्वर, ध्वनि आदि तथ्य आते हैं। विशेषज्ञों द्वारा उनको समझा जाता है। इन्हें समझकर अभिवृत्ति का अनुमान लगा लिया जाता है।

चिकित्सीय उपचार- मनोचिकित्सक इस विधि में व्यक्ति से बातचीत करता है और उसकी अभिवृत्ति का पता लगा लेता है। व्यक्ति अनजाने ही अपनी अभिवृत्ति की ओर संकेत कर जाता है। इससे मनोचिकित्सक व्यक्ति की अभिवृत्ति का अनुमान लगा लेता है।

प्रक्षेपी विधि- इस विधि से सामाजिक अभिवृत्तियां मापी जा सकती है। इस विधि में जो सुप्त अभिवृत्तियां अचेतन मन में होती हैं वे प्रकाश में आ जाती है।

2. मन विधि

यह विधि अभिवृत्ति मापन की महत्वपूर्ण विधि है। मान अभिवृत्ति मापन का वह साधन है जिसमें किसी वस्तु या सिद्धान्त के बारे में विशेषतायें लिखी होती हैं। ये विशेषतायें अस्त्यात्मक या निषेधात्मक दोनों प्रकार की होती है। इन्हीं के बीच व्यक्ति की अभिवृत्ति का स्थान निश्चित किया जाता है। प्रत्येक मान में कुछ ऐसे तत्व होते हैं जिनमें व्यक्ति की अनुकूल या प्रतिकूल अभिवृत्ति की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है। मान-निर्धारण में वैधता का ध्यान रखा जाता है। ये तत्व निर्णायक के मतों के प्रभाव से एकदम मुक्त होने चाहिए। कुछ मान विधियां इस प्रकार हैं-

थस्टन की मान विधि- इस विधि में किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना या सिद्धान्त के संबंध में बहुत से कथन एकत्रित किये जाते हैं। ये कथन पत्रिका, समाचार पत्रों, नेताओं के भाषण आदि के विचार-विनिमय से लिए जाते हैं। इन कथनों को एक मान पर फैला लिया जाता है। किसी कथन को मान के बिन्दु पर रखकर यह स्पष्ट कर लिया जाता है कि विशेषज्ञों द्वारा बताए औसत मान से यह कितना निकट या दूर है। इस मान में केवल वे ही कथन रखे जाते हैं जो स्पष्ट और केवल एक ही अर्थ रखने वाले होते हैं।

लिकर्ट मान विधि- इसमें वस्तु संबंधी कथनों का संग्रह किया जाता है। इसमें संग्रहित कथनों को पांच श्रेणियों में विभक्त कर लिया जाता है। जैसे- दृढ़ स्वीकृति, स्वीकृति, अनिश्चित, अस्वीकृति और दृढ़ अस्वीकृति।

इन श्रेणियों को क्रमशः 5, 4, 3, 2, 1 की संख्या दे दी जाती है। इन विभिन्न कथनों के आगे श्रेणी के अनुसार जो संख्या लिखी जाती है इनका योग ज्ञात करके उसका प्राप्तांक निश्चित कर लिया जाता है। जो प्राप्तांक अधिकतम होते हैं उनका संकेत स्वीकृति की ओर होता है और नीचे के प्राप्तांकों का संकेत अस्वीकृति की ओर होता है।

रेमर्स एवं लाइसास की मास्टर मान विधि- इसे वस्तु संबंधी बहुत सी अभिवृत्तियो का मापन कराने में प्रयोग करते हैं । इसमें तत्वों का सामान्यीकरण इतना सरल होता है कि कम पढ़े-लिखें लोग भी इसका उपयोग कर सकते है। परन्तु कुछ विद्वानों का कथन है कि इस विधि से अभिवृत्तियां उतनी कुशलता से नहीं मापी जाती जितनी कि अन्य विधियों से एक अभिवृत्ति माप ली जाती है। यह कमी इस विधि में अवश्य देखी जाती है।

गटमैन का मान विधि- इस विधि का प्रतिपादन गटमैन द्वारा किया गया। इसमें यह जानने का प्रयास किया जाता है कि जन समूह कीजानीहुयी किसी अभिवृत्ति के प्रति जन समूह के लोग निर्मित मान के कथनों के संबंध में सगत या असंगत कैसी अनुक्रिया दर्शाते है। संगत अनुक्रिया होने पर परिणाम विश्वसनीय मान लिया जाता है।

बोगार्डस की सामाजिक दूरी मान विधि- यह विधि सामाजिक धनिष्ठता पर आधारित हे। जब व्यक्ति अजनबी होते हैं उनसे हमारी घनिष्ठता नहीं होती, परन्तु परिवार के सदस्यों के साथ घनिष्ठता अत्यधिक होती है। मित्रों के साथ हमारी घनिष्ठता और भी अधिक होती है। किसी वर्ग से हमारी घनिष्ठता अधिक होती है तो किसी वर्ग से कम होती है। इस प्रकार विभिन्न वर्गों से, जातियों से अलग-अलग सामाजिक दूरियां होती हैं। अभिवृत्ति की माप की सात श्रेणियां आपने बतलाई है, जो निम्न हैं-

1. विवाह द्वारा संबंध स्थापना
2. अपने क्लब की सदस्य
3. निकटतम पड़ोसी जैसा व्यवहार
4. व्यवसाय में एक सहयोगी जैसा संबंध
5. अपने देश के नागरिक जैसे संबंध
6. अपने देश में भ्रमण करने वाले विदेशी के समान
7. उससे कोई भी संबंध स्थापित न करना।

इन्हीं सात स्तरों के आधार पर एक विदेशी जाति के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति मापने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसी ही किसी भी सामाजिक समस्या के संबंध में व्यक्ति को इन्हीं सात स्तरों पर अभिवृत्ति मापी जा सकती है। जैसे- साम्प्रदायिकता जैसी बातों के संबंध में इस विधि द्वारा व्यक्ति की अभिवृत्ति मापीजा सकती है। इस विधि को बहुत सी बातों के प्रति अभिवृत्तियों को जानने का प्रयास किया जाता है।

3. परोक्ष विधि

कुछ व्यक्ति जाने या अनजाने में अपनी वास्तविक अभिवृत्ति को छिपा लेते हैं। ऐसे व्यक्तियों की अभिवृत्तियों को शुद्ध रूप से नहीं मापा जा सकता। अतः हम परोक्ष विधि का सहारा लेते हैं। इसमें प्रयोज्य अध्ययनकर्ता के उद्देश्य को नहीं समझ पाता। इसलिए बिना संकोच जो पूछा जाता है उसका उत्तर वह दे देता है। इससे केवल यह पता चलता है कि व्यक्ति में अभिवृत्ति है या नहीं। इस विधि को अभी और अधिक विकसित करने की आवश्यकता है।

उपरोक्त सभी विधियां अभिवृत्ति मापन में प्रयुक्त होती है। परन्तु केवल एक विधि ही मापन के लिए पर्याप्त नहीं है। वास्तव में हमें कई विधियों का सहारा लेना चाहिए। जिस विधि को भी अध्ययनकर्ता अपनाएं उसमें वह पूर्ण रूप से प्रशिक्षित भी हो।

7.3 पूर्वाग्रह (Prejudice)

पूर्वाग्रह व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक संगठन का अभिन्न अंग है। यह व्यवहार की दिशा में व्यक्ति को अचेतन रूप से अग्रसारित करता है। यह जन्मजात नहीं होती बल्कि कि उम्र बढ़ने के साथ ही साथ सीखी जाती है। पूर्वाग्रह के अन्तर्गत एक व्यक्ति दूसरों के बारे में कुछ विशेष प्रकार के विचारों का विकास कर लेता है और उन्हीं के अनुसार आचरण करता है। पूर्वाग्रह एक विशेष प्रकार के कार्यों, वस्तुओं, व्यक्तियों तथा सिद्धान्तों के विरुद्ध अथवा पक्ष में एक अभिवृत्ति है। जिसके साथ प्रायः कुछ संवेग भी जुड़े रहते हैं। पूर्वाग्रह एक जल्दी में किया हुआ निर्णय यह उपयुक्त परीक्षा के बिना बनायी हुई राय है।

7.3.1 पूर्वाग्रह का अर्थ (Meaning of Prejudice)

पूर्वाग्रह दो शब्दों से मिलकर बना हैः पूर्व+आग्रह। पूर्व का तात्पर्य पहले से निर्धारित तथा आग्रह का तात्पर्य विश्वास। पूर्वाग्रह का अभिप्राय किसी व्यक्ति के बारे में पूर्व निर्धारित निर्धारित विश्वास धारणा से है। व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों, स्थितियों,वस्तुओं, स्थानों आदि के विषय में बिना पूरी तरह से समझे हुए तथा बिना परीक्षा किये हुये एक धारणा बना लेता है और चाहे जितना उसे समझाया जाय कि उसका विश्वास गलत है वह विश्वास नहीं करता है। इस प्रकार पूर्वाग्रह के लिए न किसी प्रमाण की आवश्यकता होती है और न किसी परीक्षण की। पूर्वाग्रह के परिणामस्वरूप वह दूसरों के बारे में कुछ विशेष प्रकार के विचारों का विकास कर लेता है और उन्हीं के अनुसार आचरण करता है। पूर्वाग्रह का संबंध व्यक्ति के व्यवहार से होता है। व्यक्ति का व्यवहार बाह्य पर्यावरणीय स्थिति के प्रत्युत्तर में होता है। यह प्रत्युत्तर न केवल स्थिति विशेष से सम्बन्धित है बल्कि व्यवहारकर्ता की आन्तरिक स्थिति व मनोवैज्ञानिक संगठन भी काफी हद तक प्रभावित करता है। पूर्वाग्रह व्यक्ति के मनोविज्ञानिक संगठन का अभिन्न अंग है। यह व्यवहार की दिशा में व्यक्ति को अचेतन रूप से अग्रसारित करता है। पूर्वाग्रह तथा व्यवहार में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके कारण अनेक सहयोगी एवं असहयोगी भावनायें उत्पन्न होती है। असहयोगिक भावनाओं से हम घृणा करने लगते है, संघर्ष की ओर अग्रसर होते है तथा असहयोग व्ययवहार प्रदर्शित करते है।

7.3.2 पूर्वाग्रह की प्रकृति एवं परिभाषाएं

पूर्वाग्रह सामान्य रूप से समाज में पायी जाने वाली वे धारणायें है जो सामाजिक एवं व्यक्तिगत मूल्यों एवं मान्यताओं से जुड़ी होती है। हालांकि इसकी प्रकृति सामाजिक होती है किन्तु प्रायः इसमें तार्किकता का अभाव पाया जाता है। पूर्वाग्रह की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने इसके शाब्दिक अर्थ एवं परिभाषाओं का उपयोग किया है। पूर्वाग्रह (Prejudice) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के प्रजूडिसियम (Prejudicium) से हुई है जिसका अर्थ है न्याय की दृष्टि से पूर्व निर्णय। इससे अर्थ निकलता है निर्णय जो बिना किसी तार्किक आधार पर हो, पूर्वाग्रह होता है।

पूर्वाग्रह की निम्ललिखित परिभाषाओं इसकों स्पष्ट करने में सहायक प्रतीत होती है।

आगर्वन: *पूर्वाग्रह एक जल्दी में किया हुआ निर्णय या उपयुक्त परीक्षा के बिना बनाई हुई राय है।*

यंग किम्बाल: *एक पूर्वाग्रह रूढ़ियों, प्रक्रियाओं, किवदन्तियों क तथा पौराणिक कथाओं आदि के योग से बनता है। इसमें एक समूह लेबल या चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। ताकि एक व्यक्ति या समूह की विशेषतायें उसके द्वारा प्रकट हो सकें।*

जेम्स ड्रेवर: *पूर्वाग्रह एक विशेष प्रकार के कार्या, वस्तुओं व्यक्तियों तथा सिद्धान्तों के विरूद्ध अथवा पक्ष में एक अभिवृत्ति है जिसके साथ प्रायः कुछ संवेग भी जुड़े रहते है।*

शेरिफ तथा शेरिफ: *समूह पूर्वाग्रह किसी अन्य समूह तथा उसके सदस्यों के प्रति एक समूह विशेष के सदस्यों की उनके अपने स्थापित आदर्श नियमों से प्राप्त की जाने वाली नकारात्मक मनोवृति है।*

न्यकाम्व: *पूर्वाग्रह एक विरोधात्मक मनोवृत्ति है, प्रत्यक्षीकरण कार्य करने तथा सोचने से पूर्व की स्थिति है और उसी दिशा में सोचने की क्रिया है जो प्रायः दूसरे समूह अथवा व्यक्ति के विरोध में है।*

क्रंच तथा क्रचफोल्ड: *पूर्वाग्रह का तात्पर्य उन अभिवृत्तियों तथा विश्वासों से है जो विषयों को लाभदायक अथवा हानिकारक परिस्थितयों में रख देता है। प्रजातिय पूर्वाग्रह का अभिप्राय किसी अल्पमत प्रजातीय समूह अथवा राष्ट्रीय समूह के प्रति अभिवृत्तियों से है जो कि उस समूह के सदस्यों के लिए हानिकारक है।*

ड्रेवर का विचार है *कि पूर्वाग्रह एक अभिवृत्ति है जो दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों, वस्तुओं अथ्वा स्थितियों के सम्बन्ध में होती है। यह पक्ष तथा विपक्ष दोनों प्रकार की होती है। व्यक्ति अपने संवगों की अभिव्यक्ति इसी आधार पर करता है। ड्रेवर ने इस अभिवृत्ति का उचित विश्लेषण नहीं किया है।* आगर्बन का कहना है कि *पूर्वाग्रह एक प्रकार का बिना सोचे समझे निर्णय है।* आगर्वन का यह कहना सही प्रतीत नहीं होता हैं क्योंकि यह निर्णय जल्दी में नहीं होता है बल्कि निर्णय के द्वारा मानसिक चेतना में एक स्थायी चित्र बन जाता है। किम्बाल यंग का कथन है कि पूर्वाग्रह रूढ़ियों, किंवदंतियों तथा पौराणिक कथाओं से बनता है। यह कथन काफी तथा क्रेचफील्ड ने पूर्वाग्रहों को अभिवृत्तियाँ तथा विश्वास बताया है, शेरिफ ने केवल समूह पूर्वाग्रहों की बात कही है। पूर्वाग्रह के ही आधार पर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का स्थान निश्चित करता है तथा व्यवहार का रूप निश्चित होता है। उसकी मनोवृत्ति तथा विश्वास का यह अभिन्न अंग बन जाता है। परन्तु इसमें उतनी सच्चाई नहीं होता है। यह दूसरे समूह के कार्य, वस्तुओं, व्यक्तियों एवं सिद्धान्तों के अनुकूल या प्रतिकूल हो सकता है। उदाहरण के लिए जातियों में एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह है। धर्म के आधार पर भी पूर्वाग्रह है। धर्म नष्ट होने का विचार पूर्वग्रह से ही सम्बन्धित है।

7.3.3 पूर्वाग्रह के कारक

पूर्वाग्रहों के लिए अनेक कारक उत्तरदायी है जो निम्नलिखित हैं-

1. मानव संगठन एवं प्रतिमानों द्वारा सम्भव होता है अर्थात् सामाजिक व्यवस्था को स्थिर रखने के लिए पूर्वाग्रह से संबंधित जानकारी प्राप्त हुयी कि पूर्वाग्रह में निर्णय बिना किसी पूर्व आधार के लिए जाता है। इसके साथ ही पूर्वाग्रह के अर्थ, प्रकृति व प्रकार के साथ कारक के बारे में भी जानकारी प्राप्त हुयी। का निमार्ण प्रत्येक समाज में होता है। इन आदर्शों का स्थान व्यक्ति के व्यवहार का अंग बन जाते है। जिन समाजों के आदर्श एक समाज के आदर्श से भिन्न होते है। जिन समाजों के आदर्श एक समाज के आदर्श से भिन्न होते है व्यक्ति उनके प्रति पूर्वाग्रहों का विकसित कर लेते है।

2. परिवार वह प्रमुख अंग है जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज की मान्यताओं को सीखता है। माता-पिता के विचार, व्यवहार, आचरण तथा विश्वास बालक में अचेतन रूप से कार्य करते है। यदि माता-पिता के अन्दर किसी व्यक्ति समूह अथवा समाज के प्रति पूर्वाग्रह होता है। तो बालक भी उससे प्रभावित होते है।

3. प्रचार किसी बात को सत्य करने का अच्छा साधन है। पूर्वाग्रहों के विकास में यही कथन सत्य होता है। जब किसी राष्ट्र या समुदाय के खिलाफ प्रचार किया जाता है। तो लोग उस पसम्प्रदाय अथवा सम्प्रदाय राष्ट्र के प्रति पूर्वाग्रह विकसति कर लेते है। राजनैतिक दलों का भी यही हाल होता है।

4. प्रत्येक समाज में कार्य करने के नियम होते है और इन नियमों को जो तोड़ता है उन्हें दण्डित भी करने की व्यवस्था होती है। अर्थात् व्यवहार के लिए प्रोत्साहन तथा प्रतिबन्ध दोनों समाज में पाये जाते है। उदाहरण के लिए हिन्दू समाज व्यवस्था में अनेक निषेध है। ये निषेध न केवल सीखने तथा ज्ञान से सम्बन्धित है बल्कि उच्च

जातियों एवं निम्न जातियों के पारस्परिक व्यवहार के सम्बन्ध में भी हैं। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक दूरी बढ़ती है तथा पूर्वाग्रह स्थायी बन जाते है।

5. कभी-कभी किसी विषय को लेकर साम्प्रदायिक हिंसा हो जाती है, जिसका परिणाम यह होता है कि एक समुदाय के व्यक्ति दूसरे समुदाय के घृणा करने लगते है।

6. सामाजिक संगठन में स्तरीकरण पाया जाता है जिसके कारण जाति के लोगों में ऊंच तथा नीच की भावना निरर्थक पनप जाती है। वे अन्य जातियों को नीचा मानते है। इस भावना के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के पूर्वाग्रह जन्म लेते है।

7. प्रत्येक व्यक्ति उन्नति एवं विकास के शिखर पर पहुँचना चाहता है परन्तु इसके लिए उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जब ये कठिनाइयां किसी वर्ग विशेष से निरन्तर काफी समय तक आती रहती हैं तो व्यक्ति उस वर्ग के प्रति विरोधी भावना का विकास कर लेता है।

8. बालक सीखने के माध्यम से ही अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को भी सीखता है। इस प्रक्रिया द्वारा वह अन्य संस्कृतियों के विषय मे भी ज्ञान प्राप्त करता है, परन्तु दूसरे के नियम, रीति-रिवाज अजीबोगरीब लगते हैं। अतः इसके प्रति पूर्वाग्रह विकसित हो जाते हैं।

9. पूर्वाग्रहों के निर्माण में धर्म महत्वपूर्ण होता है। जो लागे जितना धर्म के पालन करने वाले होते है उनमें उतना ही पूर्वाग्रहों में विश्वास होता है।

10. भौगोलिक कारक के अन्तर्गत जलवायु, तापक्रम, मिट्टी, धरातल, की बनावट, खनीज, पदार्थ,पर्वत आदि आते है। ये परिस्थितियाँ व्यक्ति के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा आदि को प्रभावित करती है। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि व्यक्ति का बौद्धिक स्तर, कार्यक्षमता, अपराध, परम्परायें, प्रथाये, धर्म, संगठन, समाज की प्रगति एवं उन्नति तथा भौगौलिक स्थितियों पर निर्भर है। इसके परिणाम स्वरूप एक प्रकार के व्यक्ति दूसरे समूह के व्यक्तियों से घृणा करने लगते है।

11. राजनैतिक दल अपने दल को मशहूर करने के लिए तथा सदस्य संख्य बढ़ाने के लिए अन्य दलों के सम्बन्ध में सही एवं गलत दोनों प्रकार का प्रचार करते है। उदाहरण के लिए जनता पार्टी को साम्प्रदायिक कहा जाता है। इस प्रकार के प्रचार से एक विशेष से एक विशेष दल के सदस्यों के प्रति अच्छा भाव की नहीं रह पाता है।

12. ऐतिहासिक कारकों का भी प्रभाव पूर्वाग्रहों के विकास पर पड़ता है। उदाहरण के लिए भारत पर अनेक विदेशियों ने आक्रमण किये तथा हमारी संस्कृति परकुठाराघत किये इसका परिणाम यह हुआ कि हम लोगों ने अंग्रेजों तथा मुसलमानों के विषय में नकारात्मक पूर्वाग्रहों को निर्मित कर लिया।

7.3.4 पूर्वाग्रहों के स्वरूप (प्रकार)

पूर्वाग्रह निर्णयों के अनेक प्रकार हो सकते है। उनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैः-

(1) वर्ण- भारतीय संस्कृति की स्थिरता के लिए समाजिक स्तरीकरण की जटिल व्यवस्था की गयी थीं। सामाजजिक स्तहरीकरण की एक सुनियोजित नीति के आधार पर सम्पूर्ण समाज को चार कार्यात्मक भागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक भाग के सदस्यों के कत्र्तव्य निश्चित कर दिये गये है। इसी व्यवस्था को हम वर्ण व्यवस्था के नाम से जानते है। सामाजिक विभाजन के परिणामस्रूप ऊँच नीच की व्यवस्था के कारण पूर्वाग्रह निर्मित

हो गये जो निरन्तर चले आ रहे है। उच्च वर्ण के लोग निम्न वर्ण के प्रति तथा इसके विपरीत निम्न वर्ण के लोग उच्च वर्ण के प्रति अनेक गलत धारणायें बना रखी हैं।

(2) भाषा-भाषा की भिन्नता भी मनुष्य के व्यवहार की प्रभावित करती है। भाषा के आधार पर विश्व अनेकों टुकड़ों में बाँटा जाता है। इसी प्रकार भारत में भी हजारों भाषायें प्रचलित है। एक ही प्रदेश में अनेकों भाषायें बोली जाती है। एक भाषा बोलने वाला व्यक्ति दूसरों के प्रति अनेक धारणायें बना लेता है। भाषा के अन्तर के कारण विचारों का आदान-प्रदान कम हो पाता है अतः एक दूसरे की भाषा असंगत लगती है। यहाँ तक कि भाषा के नाम पर दंगे भी होने लगे है।

(3) धर्म- धर्म शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना, बनाये रखना। इसका तात्पर्य है कि जो तत्व सम्पूर्ण संसार के जीवन को धारणा करता हो तथा जिसके बिना सामान्य अर्थ में जिस प्रकार हम दैनिक आधार पर समाज अनेकों सम्प्रदायों में विभक्त है जैसे हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म आदि। सभी धर्म वाले अपने को श्रेष्ठ बताते है। इस कारण दूसरे धर्म के प्रति विरोधी भावनायें बन गयी है।

(4) जाति- जाति व्यवस्था संसार के सभी स्थानों पर विद्यमान है ओर यह सभी धर्मों के व्यक्तियों को प्रभावित करती है। मुसलमानों में भी 94 जातियाँ है। यूरोप में भी जिप्सी लोगों को निम्नजाति का मानते है। प्रजाति के आधार पर नीग्रों व्यक्तियों को निम्न माना जाता है। गोरे अमरीकी बच्चों को उनसे अलग रखा जाता है। ईसाईयों में भी धर्म के आधार पर कैथोलिक तथा प्रोटेस्टैन्ट दो प्रमुख वर्ग है जिनमें जाति के समान ही नियंत्रण है।

(5) रंग- प्रायः प्रत्येक देश में गौर वर्ण को प्राथमिकता मिलती है जिसके कारण उनमें गोरेपन का गोरव या घमंड आज जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण अमरीका है जहाँ गोरे तथा काले दोनों के बीच अनेकों पूर्वाग्रह है। गोर लोग काले लोगों के साथ उठना बैठना खाना-पीना अच्छा नहीं समझने है। उन लोगों में यह पूर्वाग्रह है कि के काले लोगों की अपेक्षा अधिक योग्य और प्रतिभाशाली होते है।

(6) शारीरिक रचना एवं आकृति- प्रत्येक प्रजाति के व्यक्तियों की शारीरिक बनावट तथा मुखाकृति भिन्न होती है। अतः एक प्रकार क मुखाकृतियों के लोग आपस में आकर्षित होते है तथा दूसरों के प्रति गलत धाराणाओं का निर्माण करते है तथा पूर्वाग्रहों के आधार पर ही व्यवहार करते है।

(7) राष्ट्रीयता- विश्व का प्रथम विभाजन राष्ट्रों द्वारा किया गया है। प्रत्येक राष्ट्र की विशेषतायें दूसरें राष्ट्रों से भिन्न होती है। अतः दूसरे राट्रों के प्रति अच्छा भाव विकसित नहीं होता है। कुछ न कुछ आधार लेकर पूर्वाग्रह बन जाते है।

(8) गंध-जलवायु की भिन्नता के कारण शरीर से निकलने वाली गंध भी भिन्न-भिन्न होती है। एक गन्ध वाला व्यक्ति दूसरी प्रकार की गन्ध आने वाले व्यक्ति से ताल-मेल अधिक नहीं रख पाता है। उदाहरण के लिये जो लोग सिगरेट बीड़ी पीते है उनके मुँह से अजीब सी गंध आती है। जिसके कारण नपीने वाले उसे पसन्द नहीं करते है।

(9) पहनावा- प्रत्येक संस्कृति का पहनावा पृथक-पृथक होता है और अपनी वेष भूषा उसे श्रेष्ठ प्रतीत होती है। पंजाब, बंगाल, पहाड़, मद्रास आदि के लोगों का अलग-अलग पहनावा है। पहाड़ों का पहनावा बिल्कुल भिन्न है। शहर तथा गाँव के पहनावें में भी अन्तर है। शहर में सर ढँकना पिछड़ापन का द्योतक है परन्तु गाँव में सर ढँकना पागलपन तथा फूहड़पन है। सइ प्रकार वेष भूशा के आधार पर अनेकों पूर्वाग्रह बन जाते है।

(10) आर्थिक स्थिति- आर्थिक स्थिति के आधार पर भी अनेकों पूर्वाग्रह निर्मित हो जाते है क्योंकि इस आधार पर भी अनेकों स्तर है। व्यवसाय के आधार पर अनकों संगठन है तथा अनकों वर्ग है। वर्ग संघर्ष निरन्तर चलता रहता है तथा एक आर्थिक स्तरके लोग दूसरे स्तरके लोगों से ईष्र्या रखते हैं।

(11) राजनैतिक स्थिति-वर्तमान समाज में अनेकों राजनैतिक दल है और प्रत्येक दल एक निश्चित लक्ष्य और कार्यक्रम रखता है। लक्ष्य और कार्यक्रमो के आधार पर दलों के बीच अन्तर पाया जाता है।

उपरोक्त द्वारा पूर्वाग्रह के अर्थ, प्रकृति व प्रकार के बारे में कहा जा सकता है कि समाज में जो पूर्वाग्रह प्रचलित है। वे किसी अध्ययन से निर्मित किये गये है बल्कि जो किसी करण एक बार निर्मित हो गये उनका आँख मूँद कर पालन किया जाता है। यह सोचा एवं समझा नहीं जाता है कि इस प्रकार की धारणा में कितनी सच्चाई है। उदाहरण के लिए यह समझा जाता है कि ब्राह्मण बुद्धिमान होता है तथा शूद्र मूर्ख। बालक जन्म से पूर्वाग्रकों से परिचित नहीं होता है, वह इनका ग्रहण आयु बढ़ने के साथ-साथ होता है, क्रमिक विकास होता है। बालक में ये भावनायें शिक्षा द्वारा विकसित होती है। दूसरी जाति, दूसरे राष्ट्र तथा दूसरी प्रजाति के प्रति मित्र भाव का विकास शिक्षा तथा अनुभव द्वारा होता है। बालक खुद परिवार के सदस्यों माता-पिता, भाई-बहन तथा विद्यालय व मित्र मण्डली के अनुरूप निर्मित करता है। यद्यपि पूर्वाग्रहों का निर्माण चेतन स्तर पर भी हो सकता है परन्तु अधिकांशतः पूर्वाग्रह अचेतन स्तर पर ही होते है क्योकि व्यक्ति जानबूझ कर शायद ही ऐसा निर्णय लेता हो कि विशेष जाति के व्यक्ति या विशेश समुदाय एवं धर्म के व्यक्ति बुरे हैं एवं हमें उनसे घृणा करनी चाहिए। पूर्वाग्रह के दो रूप होते हैं पक्ष में या विपक्ष में। जब व्यक्ति के पूर्वाग्रह पक्ष में होते हैं तो उस व्यक्ति एवं समुदाय की और अपना मित्रता का हाथ बढ़ाता है एवं सहयोग के लिए प्रयास करता हैं। इसके विपरीत विपक्षी होने में उसके मन में उस व्यक्ति एवं जाति के प्रति घृणा उत्पन्न होती है, मनोवृत्ति एक प्रकार की मानसिक स्थिति होती है जो अनुभवों द्वारा संगठित होती हैं और व्यक्ति होती है जो अनुभवों द्वारा संगठित होती हैं और व्यक्ति के प्रत्युत्तर को गति प्रदान करती हैं। किसी व्यक्ति, समूह, स्थिति आदि के बारे में सोचने की हमारी जो निश्चित दिशा होती है वह मनोवृत्ति कहलाती है। पूर्वाग्रह तथा सत्यता में कोई सम्बन्ध नहीं होता हैं क्योकि जब तक पूर्वाग्रह कार्य करते रहेंगे तब तक कोई जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती है। सत्यता केवल इतनी ही होती है कि व्यवहार का रूप उसी के अनुरूप होता है। निष्पक्ष रूप से निर्णय का अन्वेषण करने पर हो सकता है पूर्वाग्रह सत्य ही हों परन्तु इसके विपरीत भी हो सकता है। गाँवों में छुआ-छूत में अभी भी विश्वास है परन्तु वही लोग जब शहर में आते हैं तों इसमें विश्वास नहीं रखते हैं। पूर्वाग्रह किसी निर्णय पर आधारित नहीं होते हैं बल्कि इन्हें बिना किसी तर्क के स्वीकार कर लिया जाता है। माता पिता, भाई बहन, मित्र, शिक्षक आदि से सीखे व्यवहार दृढ़ होते हैं। पूर्वाग्रहों को व्यक्ति न केवल अनुभव करता है बल्कि उन्हें प्रगट भी करता है। इस अभिव्यक्ति के कारण संवेग भी प्रगट होते हैं। हाव, भाव बोलचाल से संवेग व्यक्त हो जाते है। इस प्रकार की मनोवृत्ति एवं निर्णय द्वारा हम अपनी आन्तरिक स्थिति को संतोष देते हैं। इससे संतोष प्राप्त होता है।

7.3.5 पूर्वाग्रहों के लाभ एवं हानियाँ:

पूर्वाग्रहों की उपस्थिति प्रत्येक स्तर पर होती है चाहे यह व्यक्ति हो, समूह हो, जाति हो, प्रजाति हो, वर्ण हो, सम्प्रदाय हो या राष्ट्र हो। व्यक्ति का व्यवहार इनसे प्रभावित होत है तथा इन्हें परिवर्तित करना कठिन होता है। इनसे लाभ तथा हानियाँ दोनों होती है जो निम्नाकित हैं :

पूर्वाग्रहों के लाभ :

पूर्वाग्रहों द्वारा व्यक्ति स्वयं संतोष प्राप्त करता है। प्रत्येक की यह मौलिक इच्छा होती है कि उसका समाज में मान सम्मान हो, इज्कजत हो, उच्च स्थान हो परन्तु इसके प्राप्त करने में तथा उसे बनाये रखने में अनेको कठिनाइयाँ होती हैं अतः व्यक्ति पुर्वाग्रह बनाकर संतोष प्राप्त करता है। यद्यपि वास्तविकता नहीं होती है परन्तु वैचारिकी के स्तर पर अव्श्य मान सम्मान की रक्षा होती है। उदाहरण के लिए अच्छा पद न प्राप्त होने की स्थिति में अपनी जाति का घमंड या वर्ण का घमण्ड आदि उसे सान्त्वना देता है। सामाजिक एकरूपता एवं समायोजन करने में भी पूर्वाग्रह काफी सहायक होता है। सामाजिक मान्यता के लिए ये सभी आवश्यक अग्ड़ है। व्यक्ति पूर्वाग्रह के माध्यम से समाज के अनुरूप व्यवहार करता है जिससे उसे सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है। पूर्वाग्रहों से चिन्ता भी कम होती है।

पूर्वाग्रह से हानियाँ:

पूर्वाग्रह से जहाँ कुछ लाभ होते है वही पर उससे हानियाँ भी सम्भव है। इससे निम्न हानियाँ प्राप्त होती हैं-

आपसी द्वेष भाव के कारण सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ता है तथा जिस व्यक्ति अथवा समूह के प्रति द्वेष रखते है उससे मित्रवत व्यवहार सम्भव नहीं है। सम्बन्ध विच्छेद होना स्वाभाविक हो जाता है। समाज कई खण्डों में विभाजित हो जाता है तथा कई इकाइयों में वैमनस्य की भावना आज जाती है। उन्नति के लिये आवश्यक होता है कि सामाजिक एकता तथा संगठन हो? सामाजिक समूह संगठित होकर सामाजिक उत्थान का कार्य करें परन्तु पूर्वाग्रहों के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो पाता है जिससे उन्नति में बाधा पड़ती है। हड़ताल, तालाबंदी आदि का कारण कुछ भी हो परन्तु पूवाग्रह प्रमुख भूमिका निभाते है। क्योंकि पूँजीपति तथा श्रमिक दोनों एक दूसरे के प्रति अच्छा भाव नहीं रखते है। उसमें सदैव तनाव बना रहता है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन कम होता है। जब किसी समाज में अनेक पूर्वाग्रह होते है तो वे संगठित नहीं हो पाते इनसे प्रजातन्त्र केा बाधा पहुँचती है। मनोवृत्ति तथा विश्वास जो अतार्किक होते है तथा सत्यता से परे होते है व्यक्तित्व का अभिन्न अङ बन जाते है। इससे समायोजन में कठिनाई होती है।

7.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन में मानव व्यवहार की अवधारणा के विषय में जानकारी मिली। मानव व्यवहार के मूलाधार के विषय में ज्ञान प्राप्त किया तथा अन्त में मानव व्यवहार की विषेषताओं का अध्ययन किया। साथ ही हमे इस इकाई में पूर्वाग्रह से संबंधित जानकारी प्राप्त हुयी कि पूर्वाग्रह में निर्णय बिना किसी पूर्व आधार के लिए जाता है। इसके साथ ही पूर्वाग्रह के अर्थ, प्रकृति व प्रकार के साथ कारक के बारे में भी जानकारी प्राप्त हुयी।

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

- मनोवृत्ति से आप क्या समझते है? इसका अर्थ स्पष्ट कीजिए।
- मनोवृत्ति के कितने प्रकार होते है?
- पूर्वाग्रह से आप क्या समझते है? परिभाषाओं से स्पष्ट कीजिए।
- पूर्वाग्रह के कितने प्रकार है?

7.6 संदर्भ ग्रंथ

- शर्मा, सीमा, व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त, रावत प्रकाशन, 2012,
- शर्मा, सुनीता, सामान्य मनोविज्ञान, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2011,
- मूरजानी, जे0 सामाजिक मनोविज्ञान, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2007,
- सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- चैबे, सरयू प्रसाद, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2002
- चैबे, सरयू प्रसाद, सामान्य मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2005।
- सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004।
- सिंह, रतन, सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009,
- होनिंग, डब्लू0के0 आपरेन्ट बिहैवियर, एप्लेटन सेन्चुरी क्रफ्टस, न्यूयार्क, 1966
- हल, सी0एल0 प्रिन्सिपिल्स आफ बिहैवियर, एप्लेटन सेन्चुरी क्रफ्ट्स, न्यूयार्क, 1943
- मिश्रा, एम0के0 असामान्य मनोविज्ञान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2011,
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981
- मिश्रा, पी0डी0, एवं मिश्रा बीना, व्यक्ति एवं समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010,
- यादव के0एन0 सिंह यादव रामजी, तुलनात्मक और शिक्षा मनोविज्ञान अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2008
- मिश्रा महेन्द्र कुमार विकासात्मक मनोविज्ञान, यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि. जयपुर, प्रथम संस्करण, 2007
- कटारिया, सुरेन्द्र, प्रशासनिक चिंतक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर एवं दिल्ली, 2005,
- मैस्लो, ए. एच., मोटीवेशन एण्ड पर्सनालिटी, हारपर एण्ड रो, न्यूयार्क, 1954।
- वर्मा प्रीती, श्रीवास्तव डी0एन0 सामान्य मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2007

इकाई-08

मानव व्यवहार और सामाजिक नियंत्रण

(Human Behavior & Social Control)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 मानव व्यवहार

8.2.1 मानव व्यव्हार की अवधारणा

8.2.2 मानव व्यवहार के निर्धारक

8.2.3 मानव व्यवहार की परावर्तक

8.3 सामाजिक नियन्त्रण

8.3.1 सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ

8.3.2 सामाजिक नियंत्रण की परिभाषा

8.3.3 सामाजिक नियन्त्रण के स्वरूप

8.3.4 सामाजिक नियंत्रण हेतु संस्थाएं

8.4 सारांश

8.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.6 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपसे अपेक्षित है कि आप

- मानव व्यवहार का अर्थ तथा इसकी अवधारणा का वर्णन कर सकेंगे
- मानव व्यवहार के मूलाधार के बारे में बता सकेंगे
- मानव व्यवहार की विषेषताओं और उसके सूचकों की व्याख्या कर सकेंगे।
- सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा पर प्रकाश डाल सकेंगे
- सामाजिक नियंत्रण के अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन कर सकेंगे
- सामाजिक नियंत्रण के प्रकार का वर्णन कर सकेंगे

- सामाजिक नियंत्रण के साधन एवं संस्थाओं का विश्लेषण कर सकेंगे
- सामाजिक नियंत्रण यथा औपचारिक तथा अनौपचारिक नियंत्रण, साकारात्मक एवं नकारात्मक नियंत्रण, संगठित और असंगठित नियंत्रण पर चर्चा कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में मानव व्यवहार की अवधारणा का विष्लेषण किया गया है। मानव व्यवहार अवयव के शारीरिक एवं मानसिक पक्षों की अभिव्यक्ति का परिणाम है। इसकी अभिव्यक्ति उद्देष्यों एवं विषयों के प्रति होती है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के विष्वास, मनोवृत्ति, सहयोग, सहानुभूति, अनुकरण तथा अन्य सभी वैज्ञानिक एवं जैविकीय तत्व प्रदर्षित होते हैं। यह व्यवहार जैविकीय तथा सामाजिक सम्प्रेरकों द्वारा निर्देषित होता है। अन्य अर्थ में मानव व्यवहार पर जैविकीय एवं सामाजिक कारक अपना प्रभाव डालते हैं तथा एक विषेष व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं। साथ ही इस इकाई में सामाजिक नियंत्रण का वर्णन किया गया है। सामाजिक नियंत्रण उन साधनों की व्यवस्था है जिसमें संकेत, आग्रह, अवरोध और शासन व शारीरिक शक्ति भी सम्मिलित है तथा जिसके द्वारा एक समाज उस समूह के व्यवहार को एक मान्य स्तर तक लाता है या जिसके माध्यम से एक समूह अपने सदस्यों के व्यवहार को मान्य नियमों के अनुरूप मोड़ता है। सामाजिक नियंत्रण उस ढंग से है जिसमें सम्पूर्ण व्यवस्था में एकता बनी रहती है तथा जिसके द्वारा यह व्यवस्था एक परिवर्तनशील संतुलन के रूप में कार्य करती है।

8.2 मानव व्यवहार (Human Behavior)

मानव व्यवहार एक जटिल व्यवस्था है। मानव के आस-पास का वातावरण मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करता है। मानव व्यवहार व्यक्ति द्वारा समाज में रहते हुए प्राप्त किए जाते हैं वहीं दूसरी ओर व्यक्ति उसे अपने परिवेश से भी प्राप्त करता है।

8.2.1 मानव व्यवहार की अवधारणा

मानव व्यवहार एक जटिल व्यवस्था है। मनुष्य शरीर में विभिन्न अंग एवं भाग होते है जो स्नायु संस्थान द्वारा एकत्रित होकर कार्य करते है। शरीर में उनका पृथक-पृथक होना केवल अस्तित्व मात्र होता है परन्तु संगठित होने पर ही उनकी उपयोगिता, विशेषता एवं कार्यात्मकता स्पष्ट होती है। इस प्रकार की शरीर की पूर्ण रूप को अवयव (वतहंदपेउ) कहते है। इस अवयव की प्रतिक्रियाओं तथा अभिव्यक्तियों को मानसिक कहा जाता है। आन्तरिक तथा बाह्य उत्तेजना के प्रति अवयव के सभी प्रत्युत्तरों को व्यवहार कहा जाता है। व्यवहार अवयव के शारीरिक एवं मानसिक पक्षों की अभिव्यक्ति का परिणाम है। इसकी अभिव्यक्ति उद्देश्यों एवं विषयों के प्रति होती हैं इसके अन्तर्गत व्यक्ति के विश्वास मनोवृत्ति, सहयोग, सहानुभूति, अनुकरण तथा अन्य सभी मनोवैज्ञानिक एवं जैविकीय तत्व होते हैं यह व्यवहार जैविकीय तथा सामाजिक सम्प्रेरकों द्वारा निर्देशित होता है। दूसरे शब्दों में मानव व्यवहार पर जैविकीय एवं सामाजिक कारक अपना प्रभाव डालते है तथा एक विशेष व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं।

8.2.2 मानव व्यवहार के निर्धारक

मानव व्यवहार अनेक कारकों द्वारा प्रभावित एवं निर्धारित होता है परन्तु इन कारकों में सबसे दो महत्वपूर्ण कारक हैः (1) शारीरिक, (2) सामाजिक। अर्थात् शारीरिक तथा जैविकीय कारकों के अतिरिक्त व्यक्ति सामाजिक पर्यावरणीय कारकों द्वारा भी प्रभावित एवं निर्देशित होता है। व्यवहार के कुछ कारक जन्मजात होते है तथा दूसरे कारक सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की देन होते है। इस प्रकार व्यवहार के दो प्रमुख निर्धारक हैः (1) जन्मजात निर्धारक (2) अर्जित निर्धारक।

(अ) जन्मजात निर्धारक

व्यवहार का जन्मजात आधार शारीरिक होता है। व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में प्राणी विभिन्न प्रतिक्रियाएँ करता है। परन्तु सम्पूर्ण क्रियाएँ स्नायु संस्थान द्वारा नियन्त्रित एवं संचालित होती है। व्यक्ति व्यवहार करने के योग्य उस समय होता है जब स्नायु, स्नायु प्रवाह को ग्राहक लेकर मस्तिष्क तक पहुँचाता है एवं मस्तिष्क की प्रतिक्रियाओं को मांस पेशियों तक पहुँचाता है। अतः स्नायु मंडल की संरचना एवं कार्य प्रणाली का ज्ञान होने पर व्यक्ति की क्रियाओं का स्वतः ज्ञान हो जाता है। यदि व्यक्ति चाहता है कि वह यह जाने कि स्नायु कला क्या है? किस प्रकार स्नायु प्रवाह होता है? किस प्रकार ग्राहकों से मस्तिष्क में एवं पुनः मांस पेशियों में स्नायु प्रवाह होता है, किस प्रकार स्मरण, चिंतन, सीखना आदि विभिन्न प्रकार की मानसिक क्रिया से स्नायु मंडल में परिवर्तन होता है तो उसे स्नायु मंडल को समझना आवश्यक होता है।

स्नायु मंडल

व्यक्ति का व्यवहार स्नायु मंडल द्वारा ही सम्भव होता है। इसके द्वारा उसकी चलने-फिरने, देखने-सुनने, सोचने समझने, सीखने आदि की क्रियायें होती हैं तथा व्यवहार का संचालन एवं निर्देशन होता है। इसके माध्यम से ही व्यक्ति वातावरण से सम्बन्ध स्थापित करता है। इसी कारण स्नायु मंडल को समायोजनात्मक तंत्र भी कहते हैं। स्नायु मंडल का प्रमुख कार्य प्रभावक एवं ग्राहक के बीच संयोजन करना तथा व्यक्ति एवं पर्यावरण के बीच समायोजन स्थापित करना होता है। स्नायु मंडल की रचना कोषाणुओं द्वारा होती है। कोषाणु के निम्न भाग होते हैं:

1. साइटोप्लाज्म
2. मेम्ब्रेन
3. न्यूक्लियस

1. साइटोप्लाज्म

मेम्ब्रेन तथा न्यूक्लियस के बीच में पाये जाने वाले तरल पदार्थ को साइटोप्लाजम कहते हैं। यह खिचाव एवं सिकुड़न का कार्य होता है जिसके कारण सम्पूर्ण शरीर का संचालन होता है। इस गुण के अतिरिक्त उसमें विसर्जन तथा उत्सर्ग का गुण भी पाया जाता है। साइटोप्लाज्म के सूख जाने पर इस कोष का अन्त हो जाता है।

2. मेम्ब्रेन

इसका कार्य संचालन करना होता है। इसके द्वारा आयन्स सामान्य रहते हैं जो कोष के दोनो ओर होते हैं।

3. न्यूक्लियस

न्यूक्लियस द्वारा उत्तेजना ग्रहण करता है, सन्तानोत्पत्ति करता है, शारीरिक वृद्धि होती है तथा रक्त एकीकरण होता है।

स्नायु कोष कोषाणुओं से स्नायुकोष की रचना होती है। ये कोषाणु निम्न प्रकार के होते हैंः

जीव कोष, मुख्य तन्तु, शिखा तन्तु

जीवकोष का गोल होता है। जो झिल्ली से घिरा होता है जो मेम्ब्रेन कहलाता हैं। इसके भीतर साइटोप्लाज्म तथा न्यूक्लियर्स होता है। जीव कोष का रंग भूरा होता है। यह शिखातन्तु द्वारा प्राप्त स्नायु प्रवाह को मुख्य तन्तु की ओर ले जाता है। स्नायुकोष में केवल एक मुख्य तन्तु होता है इसका कार्य जीव कोष से स्नायु प्रवाह को लाकर अन्य स्नायु कोषों में लाने का कार्य होता है। शिखातन्तु जीवकोष से निकल कर चारों ओर फैल जाता है। इसका कार्य स्नायु प्रवाह को ग्रहण करके जीवकोष की ओर प्रेषित करना है।

स्नायु मंडल के प्रकार

स्नायु मंडल का विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है, (1) केन्द्रीय सीमान्त अथवा दैहिक (2) स्वचालित। इसे निम्न चार्ट द्वारा भली भाँति समझाया जा सकता है।

केन्द्रीय एवं सीमान्त स्नायुमण्डलः मस्तिष्क सुषुम्ना में पाये जाने वाले नाड़ी कोषों से केन्द्रीय स्नायु मंडल की रचना होती है और जो कोष मस्तिष्क एवं सुषुम्ना से बाहर होते हैं उनसे सीमान्त नाड़ी मंडल की रचना होती है।

स्वचालित एवं दैहिक स्नायु मंडल

ये शरीर के आन्तरिक भाग को नियंत्रित करके व्यक्ति के अभियोजन में सहायता करते हैं। वाह्य भाग को नियंत्रित करके बाह्य अभियोजन का कार्य दैहिक नाड़ी मंडल करता है। अधिकांशतः शारीरिक परिवर्तन संवेगात्मक अवस्था में होते हैं। इनका संचालन तथा नियन्त्रण स्वचालित नाड़ी मंडल करता है। यद्यपि केन्द्रीय स्नायुमंडल प्रथा स्वचालित स्नायु मंडल के कार्य क्षेत्र अलग-अलग हैं परन्तु वे एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप से सम्बन्धित हैं। केन्द्रीय स्नायु मंडल का प्रमुख अंग सुषुम्ना है जो स्वचालित स्नायु मंडल में भी कार्य करता है।

स्वचालित स्नायुमंडल के दो भाग हैं-सहानुभूति तथा असहानुभूति। शरीर को क्रियाशील बनाने का कार्य सहानुभूति नाड़ी मंडल करता है तथा विषम परिस्थिति के लिए अतिरिक्त शक्ति की व्यवस्था भी यही करता है। शरीर के विभिन्न भागों की सक्रियता को कम करके शारीरिक शक्ति की बचत असहानुभूतिक मंडल करता है। शरीर के विभिन्न भाग इस स्नायुमंडल में उस समय क्रियाशील हो सकते हैं जिस समय सहानुभूतिक स्नायुमंडल के उत्तेजित होने पर सम्पूर्ण शरीर क्रियाशील हो जाता हैं।

दैहिक नाड़ी मंडल

इसका कार्य व्यक्ति एवं बाह्य पर्यावरण के बीच समायोजन स्थापित करता है। इसमें क्रियात्मक तथा ज्ञानात्मक दोनों प्रकार की क्रियायें होती हैं। मस्तिष्क तथा सुषुम्ना दैहिक नाड़ी मंडल के दो भाग हैं।

सुषुम्ना

यह व्यक्ति की रीढ़ की हड्डी में होती है। इसका आकार रस्सी जैसा स्वेत एवं मुलायम होता है। इसका प्रमुख कार्य शरीर के बाह्य अंगों का मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित करना है। सुषुम्ना द्वारा ही शरीर के बाह्य हिस्सों (हाथ, पैर) आदि की क्रियाओं का कार्य सम्भव होता है। इसके द्वारा ही पढ़ना, लिखना आदि ज्ञानात्मक क्रियाओं का नियंत्रण होता है।

मस्तिष्क

केन्द्रीय स्नायुमंडल के प्रमुख तीन अंग हैं-

प्रमस्तिष्क, लघु मस्तिष्क, सुषुम्ना शीर्ष

प्रमस्तिष्क

यह मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। यह दो गोलार्धो में विभाजित होता है। इन दोनों के बीच एक दरार होती है। प्रमस्तिष्क पर बहुत सी सिकुड़ने होती हैं इनका बुद्धि से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। प्रमस्तिष्क का कार्य संवेदनाओं का अनुभव करना, इच्छा करना, स्मरण रखना तथा शारीरिक कार्यों का संचालन करना है। यही बुद्धि तथा ज्ञान का केन्द्र है जिसके द्वारा हमकों सोचने, समझने, सीखने स्मरण करने तथा जाँच एवं परख करने की शक्ति प्राप्त होती है।

अनुमस्तिष्क

यह प्रमस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे की ओर होता है। यह भी दो गोलार्धो से बना होता है जो एक लम्बे से भाग द्वारा जुड़ा होता है। इसमें लहरिकाओं का कार्य पेशियों की चेष्टा को नियन्त्रण करना है। जिससे शरीर में गति का संचालन सुचारू रूप से हो सके। क्रियाओं में शरीर का सन्तुलन बनाये रखना इसका प्रमुख कार्य है। केवल चलने में ही दो सौ पेशियाँ कार्य करती हैं। उन सभी को संतुलन में रखना तथा दृढ़तापूर्वक चलने की क्षमता देने का कार्य अनुमस्तिष्क ही करता है।

सुषुम्ना शीर्ष

यह तन्त्रिकीय पदार्थ से बना हुआ गोलाकार एक पिण्ड है, जो प्रमस्तिष्क के निचले भाग में होता है। यह ऊपर की ओर प्रमस्तिष्क के निचले भाग में होता है। यह ऊपर की ओर प्रमस्तिष्क से जुड़ा होता है। इसके नीचे से सुषुम्ना आरम्भ होती है। यह शरीर का बहुत महत्वपूर्ण अंग है। शरीर की कई मुख्य क्रियाओं जैसे रक्त परिसंचरण, हृदयगति तथा श्वांस लेना और निगलने के केन्द्र यहीं पर स्थित हैं। इस भाग में चोट लगने पर तत्काल मृत्यु हो जाती है।

8.2.3 मानव व्यवहार के परावर्तक

मानव व्यवहार के परावर्तक निम्नलिखित हैं-

- **भाव एवं संवेग**

मानव जीवन भाव और संवेग का महत्व किसी भी अन्य अनुभव से अधिक होता है। मनुष्य अपने जीवन काल में विभिन्न प्रकार के भाव एवं संवेगों का अनुभव करता है। भाव का संवेगों की प्रारम्भिक अवस्था भी कह सकते हैं।

जिस प्रकार सुख की अनुभूति होने पर अपार आनंद एवं जीवन के प्रति हर्ष तथा सकारात्मक विचार मनुष्य को घेर लेते है वैसे ही दुख की अनुभूति होने पर मनुष्य शोक, क्रोध एवं भय से घिरा हुआ अनुभव करता है। सुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति वातातरण में कोई परिवर्तन नहीं लाना चाहता किन्तु दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति या तो वातावरण के जैसा है वैसा ही छोड़ देता है या उसमें परिवर्तन का प्रयास करता है।

संवेग मानव या प्राणी मात्र के जीवन का अभिन्न अंग होते हैं। मनुष्य सभी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं में संवेग उपस्थित रहता है। मानव व्यवहार का स्रोत संवेग ही है। मनुष्य अपने जीवन में विभिन्न प्रकार की भावनाओं जैसे

दुख, खुशी, ईष्र्या, क्रोध का अनुभव करता है। जब ये भावनाएं की तीव्र व उत्तेजित हो जाती है, तब ये संवेग बन जाते हैं।

संवेग की स्थिति में व्यक्ति के शारीरिक तथा व्यावहारिक आचरण में परिवर्तन आ जाता है। व्यक्ति का बाह्य व आंतरिक आचरण परिवर्तित हो जाता है।

ड्रेवर के अनुसार, संवेग प्राणी की एक जटिल दशा है जिसमें शारीरिक बदलाव और प्रबल भावना के कारण उत्तेजित दशा तथा एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने की प्रवृत्ति निहित रहती हैं।

वुडवर्थ के अनुसार, संवेग व्यक्ति की उत्तेजित दशा है।

मनुष्य के संवेगात्मक विकास और व्यवहार का आधार उसके संवेग होते हैं।

संवेग अंग्रेजी के मउवजपवद शब्द से बना है जो लैटिन भाषा के मूउवअमततम शब्द से बना है जिसका तात्पर्य होता है- उत्तेजित कर देना।

संवेग शारीरिक अवस्थाओं को निम्न रूप से प्रभावित करते हैं-

1. शारीरिक हृदयगति नाड़ी का प्रभावित होना
2. मनोवैज्ञानिक भावना उमंग का बदलना
3. व्यावहारिक क्रियाओं/व्यवहार की तीव्रता

मनव जीवन के कुछ विशिष्ट संवेग निम्न है-

1. मुस्कुराना, हंसना तथा रोना
2. भय
3. क्रोध
4. चिंता, दुख, आश्चर्य, दया, सहानुभूति, परानुभूति, घृणा आदि।

संवेग के प्रकार

संवेग के निम्न प्रकार है-

1. अहम्भावी संवेग
2. अहम्परोपकारी संवेग
3. परोपकारी संवेग
4. अमूर्त संवेग

जब व्यक्ति सिर्फ अपने विषय में सोचने लगता है तो उसकी सब क्रियायें स्व केन्द्रित हो जाती हैं, जिसका संबंध व्यक्ति अपने हित न अहित से जोड़ने लगता है। फलतः दुख, खुशी, क्रोध व भय जैसे संवेग उत्पन्न होते हैं।

ये संवेग अहम्भावी होते हैं। जब व्यक्ति पर दूसरे व्यक्ति के विचारों व सुझावों का प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति की प्रशंसा, पहचान, सत्कार के प्रति तीव्र इच्छा इसी प्रकार जो संवेग दूसरों के हित व अहित से संबंधित होते हैं, परोपकारी संवेग कहलाते हैं।

जो संवेग आदर्शों व कल्पनाओं से पनपते हैं जैसे बौद्धिक, नैतिक व धार्मिक संवेग अमूर्त कहलाते हैं।

- **उमंग**

उमंग संवेग का ही अनुपरिणाम है। उमंग का प्रभाव व्यक्ति पर देर तक बना रहता है। उमंग एक ऐसी मानसिक स्थिति है, जो व्यक्ति के विचार एवं क्रियाओं पर स्पष्ट रूप से प्रभावित करती है। सुखद विचार व अनुभूतियों से प्रिय उमंग तथा दुखद विचार व अनुभवों से अप्रिय उमंग की उत्पत्ति होती है। जब तक व्यक्ति पर विशेष उमंग का प्रभाव रहता है उसके व्यवहार व क्रियाओं पर भी उमंग का प्रभाव रहता है।

- प्रेरणा

व्यक्ति की स्वाभाविक मनोवृत्तियों ही प्रेरणाओं अथवा अभिप्रेरणाओं के नाम से जानी जाती है। मनुष्य की आवश्यकतायें ही उसके व्यवहार की प्रेरक शक्तियां है। आवश्यकतायें एक प्रकार की कमी है जो व्यक्ति को उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रेरित करती हैं तथा उद्देश्यपूर्ति हेतु आवश्यक क्रिया का रास्ता दिखाती हैं।

प्रेरणाओं के अन्तर्गत निम्न बातें हैं-

- आवश्यकतायें
- इच्छाएं
- वातावरण
- प्रेरक वृत्तियां

8.3 सामाजिक नियंत्रण (Social Control)

सामाजिक नियंत्रण उन साधनों की व्यवस्था है जिसमें संकेत, आग्रह, अवरोध और शासन व शारीरिक शक्ति भी सम्मिलित है तथा जिसके द्वारा एक समाज उस समूह के व्यवहार को एक मान्य स्तर तक लाता है या जिसके माध्यम से एक समूह अपने सदस्यों के व्यवहार को मान्य नियमों के अनुरूप मोड़ता है। सामाजिक नियंत्रण उस ढंग से है जिसमें सम्पूर्ण व्यवस्था में एकता बनी रहती है तथा जिसके द्वारा यह व्यवस्था एक परिवर्तनशील संतुलन के रूप में कार्य करती है। सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा का संबंध समाज में पाये जाने वाले नियंत्रण के उन तरीकों से है जिनके माध्यम से व्यक्तियों के व्यवहारों में अनुकूलन स्थापित किया जाता है। ये माध्यम औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से समाज में स्थापित होते हैं तथा व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित करते हैं।

8.3.1 सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ

सामाजिक नियन्त्रण के द्वारा समाज में व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित किया जाता हैं। उन्हें सामाजिक प्रतिमानों के अनुरूप बनाया जाता है तथा उनमें सन्तुलन स्थापित किया जाता है। सामाजिक नियन्त्रण से तात्पर्य सामाजिक व्यवस्था की एकता और स्थिरता से है। सामाजिक नियन्त्रण दो शब्दों से मिलकर बना है। सामाजिक$नियन्त्रण जिसका तात्पर्य ऐसी व्यवस्था से है। जिसमें व्यक्ति विकास करता है, आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, एवं अन्तःक्रिया करता है, जिससे समायोजन सम्भव होता है। इसके साथ-साथ बेहतर समायोजनन

के लिए व्यक्ति एवं संस्था को उत्साहित करना। सामाजिक नियन्त्रण का सम्बन्ध उत्पन्न समस्या के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्ष से होता है। इसके सम्बन्ध में विभिन्न विद्धानांे ने परिभाषायें दी हैं। जो निम्नलिखित हैं:

8.3.2 सामाजिक नियंत्रण की परिभाषा

सामाजिक नियंत्रण सामाजिक संरचना की स्थिरता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। समाज में विघटनात्मक तत्व भी विद्यमान होते है। अगर इन तत्वों पर नियन्त्रण नहीं रहेगा तो समाज मंे अराजकता व्याप्त हो सकती है। ऐसी स्थिति में सामाजिक नियन्त्रण के द्वारा सन्तुलन स्थापित किया जाता है और समाज को उन्नति एवं प्रगति के अवसर प्राप्त होते है।

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, *''सामाजिक नियन्त्रण उन साधनों की व्यवस्था है जिनमें संकेत, आग्रह, अवरोध और शासन व शारीरिक शक्ति भी सम्मिलित है। तथा जिसके द्वारा एक समाज उस समूह के व्यवहार को एक मान्य स्तर तक लाता है। या जिसके माध्यम से एक समूह अपने सदस्यों के व्यवहार को मान्य नियमों के अनुरूप मोड़ता है।*

मैकाइवर तथा पेज के अनुसार, *''सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ उस ढंग से है जिसमें सम्पूर्ण व्यवस्था में एकता बनी रहती है तथा जिसके द्वारा यह व्यवस्था एक परिवर्तनशील संतुलन के रूप में कार्य करती है''।*

रास के अनुसार, *''सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य उन सभी शक्तियों से है। जिनके द्वारा समुदाय व्यक्ति को अपने अनुरूप बनाता है।*

आगबर्न तथा निमकाफ, *''दबाव का वह प्रतिमान, जिसे समाज के द्वारा व्यवस्था बनाये रखने और नियमों को बनाये रखने के उपायोग में लाया जाता है। सामाजिक नियन्त्रण कहा जाता हैं।*

उपरोक्त परिभाषाओं की व्याख्या के आधार पर हम कह सकते है कि सामाजिक नियन्त्रण के द्वारा समाज को नियंत्रित किया जाता है। जिससे परिणाम स्वरूप समाज में आदर्श स्थापित होते है समाज को व्यवस्थित बनाने के लिए समूहों एवं व्यक्तियों का व्यवहार नियन्त्रित किया जाता हैं तथा समाज द्वारा बनाये गये नियमों का अनुसरण करना पड़ता हैं।

8.3.3 सामाजिक नियन्त्रण के स्वरूप

समाज में सामाजिक नियन्त्रण की अनेक विधियाँ है। जिसके द्वारा व्यक्तियों के व्यवहार को नियन्त्रित किया जाता है। सामाजिक नियन्त्रण के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं

1. चेतन व अचेतन नियन्त्रण (Conscious and Unconscious Control)

कुले ने सामाजिक नियन्त्रण को चेतन व अचेतन दो भागों में बाँटा है। व्यक्ति के जीवन में कुछ व्यवहार ऐसे होते हैं। जिनको करने में विशेष सावधानी बरतते है। यह ध्यान रखते है। कि कहीं कोई किसी प्रकार की गलती न हो जायें ऐसे व्यवहार को हम चेतन व्यवहार कहते है। इसके विपरीत कुछ व्यवहार ऐसे होते हैं। जो व्यक्ति के व्यक्तित्व में इस प्रकार समाहित हो जाते हैं। कि वह व्यक्तित्व का अंग लगता है। उनका प्रभाव मन मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव होता है। उन व्यवहारों को करने के लिए बहुत विचार नहीं करना पड़ता बल्कि वह स्वतः वैसा ही आचरण करने लगते हैं वह अचेतन व्यवहार कहलाता है।

2. प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष नियन्त्रण (Direct & Indirect Control)

सामाजिक नियन्त्रण की इस पद्धति को कार्ल मानहीम ने प्रस्तुत किया प्रत्यक्ष नियन्त्रण के अन्तर्गत व्यक्ति के समीप रहने वाले व्यक्तियों द्वारा होता है जैसे- माता-पिता, पड़ोसी, मित्र इत्यादि। इस प्रकार का नियन्त्रण स्थायी होता है तथा उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि इन्हीं के माध्यम से व्यक्ति का सामाजीकरण होता है।

अप्रत्यक्ष नियन्त्रण के अन्तर्गत व्यक्ति के अति सूक्ष्म व्यवहारों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया जाता है तथा व्यक्ति के चारों और संचालित होता है। प्रारम्भ में व्यक्ति चेतन रूप से नियन्त्रित होता है। परन्तु बाद में यह व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाता है।

3. संगठित और असंगठित नियन्त्रण (Organized and Unorganized Control)

गुरूविच ने इस प्रकार को प्रस्तुत करते हुए इसके दो स्वरूप प्रस्तुत किये संगठित नियन्त्रण और असंगठित नियन्त्रण। संगठित नियन्त्रण के तहत संस्थाओं और नियमों के द्वारा व्यक्तियों के व्यवहार को नियन्त्रित किया जाता है। इसमें व्यक्तियों के कर्तव्यों एवं व्यवहारों को परिभाषित किया जाता है। जबकि असंगठित नियन्त्रण में व्यक्ति के व्यवहार को संस्कृति और प्रथाओं के माध्यम से नियन्त्रित किया जाता है। यह व्यक्ति की आम जीवन शैली को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है।

4. सकारात्मक और नकारात्मक नियन्त्रण (Positive & Negative Control)

सकारात्मक नियन्त्रण में व्यक्ति को समाजोपयोगी व्यवहार करने पर पुरुस्कृत करके उत्साहित किया जाता है। जिससे कि व्यक्ति लगातार उच्चीकृत व्यवहार करके उचित समायोजन स्थापित कर सके। नकारत्मक आचरण को दण्डित करके नियन्त्रित किया जा सकता है। जिससे वह समाज विरोधी आचरण छोड़कर समाज के अनुकूल बन सके।

5 औपचारिक व अनौपचारिक नियन्त्रण (Formal & Informal Control)

औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य उस नियन्त्रण से है। जिसमें सरकार से संस्थाओं द्वारा समाज के सदस्यों के व्यवहार को नियन्त्रित करने हेतु नियमों को लागू किया जाता है। इन नियमों का पालन करने के लिए व्यक्ति बाध्य होता है। इसके अन्तर्गत इनका उल्लंघन करने पर दण्ड की व्यवस्था होती है तथा उचित व्यवहार करने पर प्रोत्साहित किया जाता है।

अनौपचारिक नियन्त्रण के अन्तर्गत, प्रथाओं, परम्पराओं, जनरीतियों, धर्म, नैतिकता, इत्यादि के माध्यम से व्यक्तियों के व्यवहारों को नियन्त्रित किया जाता है। इस नियन्त्रण में लोग कल्याण और नैतिकता की प्रधानता होती है।

8.3.4 सामाजिक नियन्त्रण के लिए उपयोग में लाये जाने वाले साधन और संस्थायें (Means and Agencies for Social Control)

सामाजिक नियन्त्रण के तहत परिवार, राज्य, धार्मिक संस्थायें, शैक्षिणक संस्थायें तथा विभिन्न प्रकार के संगठन आते हैं। जिनके माध्यम से उपलब्ध साधनों जैसे- प्रथाओं, परम्पराओं, नियमों, जनमत, प्रचार आदि के द्वारा सामाजिक नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। सामाजिक नियन्त्रण के लिए उपयोग में लाये जाने वाले साधन और संस्थायें निम्नलिखित हैं:

- **परिवार (Family)**

सामाजिक नियन्त्रण की प्राथमिक और सर्वोपरि संस्था परिवार है। परिवार के द्वारा ही व्यक्ति का सामाजीकरण होता है। जिसके तहत व्यक्ति मूल्यों, आदर्शों एवं व्यवहार के प्रतिमानों से आत्मसात करता है। जो सामाजिक नियन्त्रण का निर्माण करता है। परिवार के सदस्य, माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, बच्चे इत्यादि प्रशंसा, निन्दा, अपमान, उपेक्षा के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित किया जाता है। व्यक्ति किसी भी स्थिति में खुद को परिवार से प्रथक नहीं कर सकता है। अतः परिवार के द्वारा व्यक्ति पर अकुंश रखकर उस पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है।

- **राज्य (State)**

सामाजिक नियन्त्रण को स्थापित करने में राज्य महत्वपूर्ण रहा है। औद्योगीकरण, नगरीकरण और व्यक्तिवाद के प्रसार ने सामाजिक नियन्त्रण में राज्य की उपयोगिता को बढ़ाया है। राज्य शासन के विभिन्न आयामों के द्वारा नागरिकों के अधिकारों एवं कर्तव्यों को व्यवस्थित करता है। राज्य पुलिस, न्यायालय के द्वारा समाज में शान्ति व्यवस्था कायम रखता है एवं कानूनों के माध्यम से समाज में समानता को बनाये रखता है। कल्याणकारी योजनाओं के द्वारा समाज में समानता के अवसर पैदा करता है। इस प्रकार हम कह सकते है राज्य एक ऐसी शक्ति ही जिसके द्वारा समाज को नियन्त्रित किया जाता है।

- **धार्मिक संस्थायें (Religious Institutions)**

धर्म का तात्पर्य ऐसी अलौकिक मानवीय शक्ति से है जिसे हम ईश्वर या परम सत्ता कहते हैं। जिस पर व्यक्ति विश्वास करता है। जिसका आधार भय, प्रेम, श्रद्धा होता है। जिनकी अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार की प्रार्थनाओं के माध्यम से होती है। धार्मिक संस्थायें धर्म का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके माध्यम से मानव के व्यवहार पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। मानव में सदगुणों का विकास होता है। धर्म व्यक्ति के अन्दर सुरक्षा की भावना पैदा करता है। जिससे उसे मनोवैज्ञानिक सन्तोष प्राप्त होता है। धर्म अनावश्यक परिवर्तनों को अमान्य करके समाज में संतुलन की स्थिति को बनाये रखने में मदद करता है। धार्मिक संस्थायें समाज में एकीकरण स्थापित करके विभिन्न परिस्थितियों से मानव का सामन्जस्य कराकर नियन्त्रण बनाये रखती है।

- **जनरीतियाँ (Customs)**

जनरीतियाँ समाज में स्वीकृत व्यवहार जो मानव के कल्याण के लिए होते हैं। इनके निरन्तर प्रयोग से ये विकसित रूप धारण कर लेती हैं। व्यक्ति इनका पालन अचेतन रूप से करता है। इन जनरीतियों का उल्लंघन व्यक्ति के व्यवहार से सम्बन्धित होती है जिससे सामाजिक नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

- **लोकाचार (Social Behaviour)**

लोकाचार के अन्तर्गत उचित एवं अनुचित का भाव होता है। ये व्यक्ति को सकारात्मक कार्य करने का निर्देश देते हैं एवं नकारात्मक व्यवहार के प्रति हतोत्साहित करते हैं। लोकाचार अनौपचारिक एवं असंगठित नियन्त्रण का साधन है। इनका उल्लंघन आलोचना का सामना करना पड़ता हैं।

- **प्रथायें (Traditions)**

जनरीतियाँ एवं लोकाचार व्यवहार के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहते हैं। फलस्वरूप वे प्रथाओं का रूप ले लेती हैं और समाज इनका पालन करता है। प्रथायें इतनी सुदृढ़ हो जाती हैं कि उन्हें बिना सोच-

विचार के ही मान्यता दे दी जाती है। सामाजिक संस्थायें इन प्रथाओं के माध्यम से समाज का नियन्त्रण करती हैं। प्रथायें सामाजिक नियन्त्रण का अनौपचारिक, असंगठित एवं सशक्त साधन हैं, जिनके द्वारा व्यक्तिगत एवं सामूहिक व्यवहारों को नियन्त्रित किया जाता है।

- **जनमत**

आधुनिक समाज में जनमत व्यक्तियों के व्यवहारों को नियन्त्रित करने का महत्वपूर्ण साधन है। वर्तमान समय में जनमत सरकार, संघों, राज्य, सामाजिक व्यवहार एवं संस्थाओं पर नियन्त्रण रखने वाली एक महान सामाजिक शक्ति है। आदि काल में भी जनमत ने सामाजिक नियन्त्रण बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। प्रजातन्त्र में जनमत की अवहेलना करना असम्भव है। इसलिए जनमत के द्वारा राज्य एवं उसकी नीतियों, व्यक्तियों तथा समाज पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामाजिक नियन्त्रण को स्थापित करने में साधन एवं संस्थायें अपनी-अपनी भूमिकाओं को निर्धारित करके उनको लागू करती है। जिसके फलस्वरूप समाज में सामाजिक नियन्त्रण स्थापित होता है।

सामाजिक नियन्त्रण के द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित किया जाता हैं। उन्हें सामाजिक प्रतिमानों के अनुरूप बनाया जाता है। तथा उनमें सन्तुलन स्थापित किया जाता है।

8.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन में मानव व्यवहार की अवधारणा के विषय में जानकारी मिली। मानव व्यवहार के मूलाधार के विषय में ज्ञान प्राप्त किया तथा अन्त में मानव व्यवहार की विषेषताओं का अध्ययन किया। साथ ही सामाजिक नियंत्रण के विषय में अध्ययन किया। सामाजिक नियंत्रण के अर्थ एवं परिभाषा के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। सामाजिक नियंत्रण की विशेषताओं तथा सामाजिक नियंत्रण के स्वरूप के विषय में ज्ञान प्राप्त किया।

8.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

- मानव व्यवहार की अवधारणा बताइए।
- मानव व्यवहार के निर्धारक कौन-कौन से है? चर्चा कीजिए।
- सामाजिक नियंत्रण का अर्थ एवं परिभाषाओं का वर्णन कीजिए।
- सामाजिक नियंत्रण के स्वरूपों को स्पष्ट कीजिए।

8.6 संदर्भ ग्रंथ

- मिश्रा, पी0डी0 बी0 मिश्रा असामान्य व्यवहार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982
- शर्मा, सीमा, सामान्य मनोविज्ञान, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2011,

- मूरजानी, जे0 सामाजिक मनोविज्ञान, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2007,
- शर्मा, सुनीता, व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त, रावत प्रकाशन, 2012,
- मिश्रा, एम0 के0 असामान्य मनोविज्ञान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2011,
- सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981
- चैबे, सरयू प्रसाद, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, कान्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2002
- चैबे, सरयू प्रसाद, सामान्य मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2005।
- सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004।
- सिंह, रतन, सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009,
- होनिंग, डब्लू0के0 आपरेन्ट बिहैवियर, एप्लेटन सेन्चुरी क्रफ्टस, न्यूयार्क, 1966
- हल, सी0एल0 प्रिन्सिपिल्स आफ बिहैवियर, एप्लेटन सेन्चुरी क्रफ्ट्स, न्यूयार्क, 1943
- मिश्रा, पी0डी0, एवं मिश्रा बीना, व्यक्ति एवं समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010,
- मिश्र, पी.डी. एवं मिश्रा बी. (2004) सोशल वर्क प्रोफेशन इन इण्डिया, न्यू राॅयल बुक कम्पनी: लखनऊ
- महाजन, एस. (2010) सामाजिक समस्याएं, अर्जुन पब्लिसिंग हाउसः नई दिल्ली
- यादव आर. (2005) सामाजिक समस्याएं, अर्जुन पब्लिशिंग हाउसः नई दिल्ली

इकाई-09

असामान्य व्यवहार : लक्षण, कारण एवं प्रकार

(Abnormal Behaviour, : symptoms, causes & types)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 असामान्य व्यवहार की अवधारणा

9.3 असामान्य व्यवहार के लक्षण

9.3.1 विभ्रम

9.3.2 प्रतिगमन

9.3.3 परिवर्तन

9.3.4 स्मृति विकृतियाँ

9.3.5 संवेगात्मक विकृतियाँ

9.4 लक्षणों का वर्गीकरण

9.4.1 संज्ञानात्मक विकृति के लक्षण

9.4.2 गतिवाही प्रक्रिया विकृति के लक्षण

9.4.3 संवेगात्मक प्रक्रिया विकृति के लक्षण

9.5 असामान्य व्यवहार के कारण

9.5.1 प्रथम वर्गीकरण

9.5.2 द्वितीय वर्गीकरण

9.5.3 तृतीय वर्गीकरण

9.6 असामान्य व्यवहार के प्रकार

9.6.1 मनोविकृति

9.6.2 मनोस्नायुविकृति

9.7 सारांश

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आपसे अपेक्षा कीजाती है कि आप:

- असामान्य व्यवहार का अर्थ एवं उसकी अवधारणा बता सकेंगे
- असामान्य व्यवहार को दर्शाने वाले सूचकों की व्याख्या कर सकेंगे
- सामान्य तथा असामान्य व्यवहार के बीच अन्तर बता पाने में सक्षम हो सकेंगे
- असामान्य व्यवहार के लक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे
- आसामान्य व्यव्हार की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे
- असामान्य व्यव्हार के कारणों पर प्रकाश डाल सकेंगे
- असामान्य व्यव्हार के विभिन्न प्रकारों पर चर्चा कर सकेंगे

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में सामान्य तथा असामान्य व्यवहार के विषय में विचार किया गया है। सामान्य व्यवहार वह है जो सामाजिक नियमों का पालन करते हुए कार्यों को सुचारू रूप से किया जाय तथा सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार व्यवहार को परिवर्तित करने की क्षमता हो। असामान्य व्यवहार वह है जिसमें प्रतिमानों का पालन नहीं होता, असामान्य व्यक्ति को सामाजिक पर्यावरण में अपने आपको समायोजित करने में कठिनाई होती है। वह दुखी एवं अप्रसन्न रहता है। उसका दृष्टिकोण एकांगी होता है। इसके पश्चात सामान्य तथा असामान्य व्यवहार के मध्य अन्तर का उल्लेख किया गया है। सामान्य व्यक्ति सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप अपना व्यवहार प्रदर्शित करता है। इसके साथ ही वह समायोजन स्थापित करते हुए समक्ष परिस्थिति के अनुसार अपना व्यवहार भी बदलता है। जबकि असामान्य व्यवहार की परिभाषा इस रूप में की जाती है कि वह व्यवहार जो सामान्य नहीं है, असामान्य है। असामान्य व्यवहार के कारणों में मुख्यतः जैविक विकास से सम्बन्धित कारक सामाजिक विकास से सम्बन्धित कारक तथा मनोवैज्ञानिक विकास से सम्बन्धित कारक हैं, इन कारकों में असंतुलन अथवा त्रुटि उत्पन्न होने के कारण ही प्रायः व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो जाता है। प्रस्तुत इकाई में असामान्य व्यवहार के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। एक लक्षण प्रकृति की आत्मगत या वस्तुगत अभिव्यक्ति है। असामान्य व्यवहार से आशय प्रायः उस व्यवहार से हैं जिसमें सामाजिक मानक एवं प्रत्याषाओं के प्रतिकूल हो तथा साथ ही साथ अनुकूलित भी हो तत्पष्चात् असामान्य व्यवहार के प्रमुख लक्षणों का भी वर्णन किया गया है।

9.2 सामान्य तथा असामान्य व्यवहार की अवधारणा

(Concept of Normal & Abnormal Behaviour):

आधुनिकीकरण ने जहां एक ओर अनेको समस्याओं को सुलझाकर जीवन को सरल तथा सुखमय बना दिया है, वहीं दूसरी ओर गम्भीर समस्यायें गम्भीर रूप धारण कर सामने आ खड़ी हुई है। आर्थिक उतार चढ़ाव, बेरोजगारी, गरीबी तथा स्वार्थपरता में वृद्धि प्रौद्योगिक उन्नति के कारण हुई है। चिकित्सा विज्ञान की उन्नति के कारण जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। इसके परिणाम स्वरूप सामाजिक समस्यायें निरन्तर जटिल होती जा रही है। प्रजातीय पूर्वाग्रह, श्रेष्ठता की भावना, विभेदीकरण, अव्यवहारिकता, स्वार्थपरता आदि दुर्गुणों ने जीवन को अत्यधिक कष्टमय बना दिया है। अत्यधिक स्पर्धा, लालफीताशाही, जातीयता जैसे सामाजिक विकारों के कारण मनुष्य में चिन्ताओं का संचयीकरण हो रहा है। गाँवों में भूमिहीन कृषि मजदूरों के रूप में कार्य करने वाले लाखों

लोग शहरों के कारखानों में काम करने लगे हैं। जिसके कारण परिवार की स्थिति में अन्तर आया है तथा पारिवारिक बन्धन शिथिल होते जा रहे हैं। परम्परागत मूल्यों तथा विश्वासों में बदलाव आ रहा है। आज का व्यक्ति परम्परागत मूल्यों एवं विश्वासों को संदिग्ध दृष्टि से देखता है। वह प्राचीनतम स्वीकृत मान्यताओं के विषय में प्रश्नवाचक हो गया है। दुर्भाग्य इस बात का है कि वह व्यक्ति से सम्बन्धित ज्ञान के क्षेत्र में पीछे रह गया है।

यद्यपि समाज में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है परन्तु क्रय करने की शक्ति में ह्रास आया है। आर्थिक कठिनाईयाँ दिनोदिन व्यक्ति को अपने शिकंजे में लेती जा रही है। इस कारण पति तथा पत्नी दोनों ही आर्थिक कार्य क्षेत्र में उत्तर आये है। परन्तु कार्य-व्यस्तता के कारण बच्चों की देखभाल एवं परवरिश एक समस्या बन गयी है। बच्चों को माँ की ममता तथा पिता का स्नेह यथोचित नहीं मिल पाता है। मूल्यों में वृद्धि, उनकी अस्थिरता, आवश्यक वस्तुओं की कमी तथा अभाव, जीवन की सामान्य क्रियाओं में भी आवश्यक गतिरोध, कार्य करने के सीमित अवसरों के कारण भविष्य की चिन्ता, आदि ऐसी परिस्थितियों से जीवन को गुजारना पड़ रहा है जिससे कठोर मानसिक तनावों का सृजन होता है और व्यक्ति के मानसिक उत्पीड़न में वृद्धि होती है।

विश्व के सभी देशों में आज मानसिक स्वास्थ्य के लिए चिन्तित है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उन्नति के साथ-साथ मानसिक रोगियों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है, यही कारण है कि अमरीका जैसे आर्थिक एवं भौतिक रूप से समृद्ध देश में मानसिक रोगियों की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है। वहाँ प्रति 20 व्यक्तियों में 1 व्यक्ति मानसिक रोग के कारण चिकित्सालय में भर्ती होता है और प्रति 20 व्यक्तियों में एक व्यक्ति सामान्य चिकित्सालय में भर्ती न होकर अपने मानसिक रोग की चिकित्सा प्राइवेट चिकित्सालयों में कराते देखा जाता है। वहाँ के चिकित्सालयों में भर्ती हुये सभी रोगियों में से आधे रोगी 'साइकोसिस' से पीड़ित रहते है। प्रति वर्ष लगभग एक लाख व्यक्ति चिकित्सालय की शरण लेते है। हमारे देश में भी यह समस्या गम्भीर होती जा रही है। यद्यपि यह ठीक-ठीक पता लगाना कि कितने व्यक्ति इस समस्या से ग्रसित है, कठिन है क्योंकि मानसिक चिकित्सालयों की कमी, अशिक्षा, अज्ञानता, अंधविश्वास और परम्परागत मूल्यों के कारण रोगी चिकित्सालय में भर्ती नहीं हो पाते हैं, परन्तु ऐसा अनुमान लगाया गया है। कि भारत में 80-90 लाख मानसिक रोगी है, जिन्हें मनोचिकित्सीय सेवाओं की आवश्यकता हैं।

'सामान्य' शब्द अंग्रेजी भाषा के ' नारमल' शब्द का हिन्दीं रूपान्तर है। **नारमल शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के नारमा (Norma)** शब्द से हुई है जिसका तात्पर्य होता है-बढ़ई का वर्ग। इस शब्द का अर्थ नियम, कार्य का स्तर, प्रतिमान आदि लगाया जाने लगा है।

शरीर में विभिनन अंग एवं भाग होते हैं जो स्नायु संस्थान द्वारा एकीकृत होकर कापर्य करते हैं। अर्थात उनका पृथक-पृथक केवल अस्तित्व होता हैं। परन्तु कार्यात्मक विशेषता संगठित होती है। इस प्रकार की शरीर की पूर्णता को अवयव कहते हैं। इस अवयव की प्रतिक्रियाओं तथा अभिव्यक्तियों को मानसिक कहा जाता है। आन्तरिक तथा वाह्य उत्तेजना के प्रति अवयव के सभी प्रत्युत्तरों को व्यवहार कहा जाता है। दूसरे शब्दों में व्यवहार अवयव के शारीरिक एवं मानसिक पक्षों की अभिव्यक्त का परिणाम है। अतः सामान्य व्यक्ति वह है जो सामाजिक नियमों का पालन करते हुये अपने कार्यों को सुचारू रूप से कर लेता है तथा सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यवहार को परिवर्तित करने की योग्यता एवं क्षमता रखता है।

जो व्यक्ति समाज से अपना पूर्ण समायोजन करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन कर लेता है वह सामान्य व्यक्ति होता है। उसमें असुरक्षा की भावना नहीं होती है। उसके मन में किसी भी प्रकार की शंका अथवा सुरक्षा की चिंता नहीं होती है। वह परिस्थिति का सामना करता है तथा समस्या का उचित प्रत्यक्षीकरण करता है। परन्तु आज के युग में जहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक, नैतिक, आदि परिवर्तन इतनी

तीव्र गति से हो रहे हैं कि व्यक्ति को समझना कठिन हो जाता है कि वह किस प्रकार अपने व्यवहार में परिवर्तन लावे जिससे उसके अस्तित्व की सुरक्षा बनी रहे।

यह प्रश्न उसके लिये अत्यन्त गम्भीर हो गया है। वह जैसे-जैसे गांवों से शहरों की ओर धार्मिकता से भौतिकता की ओर तथा परम्परागत मूल्यों से पाश्चात्य मूल्यों की ओर बढ़ रहा है वैसे-वैसे उसमें असुरक्षा की भावना स्थायी स्थान बनाती जा रही है। परन्तु ऐसा व्यक्ति असामान्य नहीं होता है क्योंकि उसके चिंतित होने का उपयुक्त कारण होता है। लेकिन जब व्यक्ति चिंतित रहता है, असुरक्षा अनुभव करता है और उसका कोई कारण नहीं खोज पाता है या आवश्यकता से अधिक चिंता करता है तो उसे असामान्य की श्रेणी में रखा जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपना एक जीवन लक्ष्य बनाता है। इस जीवन लक्ष्य का निर्धारण परिवार के सदस्यों तथा समाज के साथ संबंध स्थापित करने पर ही सम्भव होता है। यहीं कारण है कि एक व्यक्ति का जीवन लक्ष्य दूसरे से भिन्न होता है। जीवन लक्ष्य के निर्धारण होने पर व्यक्ति अपने व्यवहार का प्रदर्शन तद्नुसार करता है और उन लक्षयों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस प्रकार व्यक्ति के जीवन लक्ष्य उसकी प्रेरणा के स्रोत बन जाते हैं और क्रियाओं के लिए चालक का कार्य करते हैं। परन्तु जीवन लक्ष्यों का निर्धारण स्वयं एक समस्या है, क्योंकि व्यक्तिगत विशेषतायें-निर्णय करने की क्षमता, प्रत्यक्षीकरण की योग्यता, साधनों की खोज की शक्ति शा ीरिक एवं मानसिक शक्ति, आदि जीवन लक्ष्यों को प्राप्त करने में अतुलनीय भूमिका निभाती हैं। सामान्य व्यक्ति अपने लक्ष्य का निर्धारण अपनी शक्ति एवं सामाथ्र्य के अनुसार करता है। उसके उद्देश्य सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों के अनुरूप होते हैं। वह दिवा-स्वप्न नहीं देखता तथा हवाई किले नहीं बनाता। असामान्य व्यक्ति वह होता है जो अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, शक्तियों, सामथ्र्य एवं साधनों को बिना मूल्यांकित किये लक्ष्य स्थापित कर लेता है जो उसकी पहुंच से परे होते हैं।

सामान्य व्यक्ति अपनी समस्याओं को सुलझाने की पर्याप्त क्षमता रखता हजै। वह कठिनाइयों को जीवन का अंग समझकर उनको दूर करने के उपाय खोजता है तथा अनावश्यक तनाव एवं दबाव नहीं अनुभव करता है। साधारण एवं सामान्य परिस्थितियों में वह दूसरों की सहायता नहीं लेता है। इसके विपरीत असामान्य व्यक्ति समस्याओं को समझने की पूरी कोशिश ही नहीं करता। साधारण सी बात के लिए भी वह दूसरों की सहायता चाहता है। उसमें निर्णय शक्ति की कमी होती है। उसमें इतना आत्मिक बल नहीं होता है कि वह समस्या का दृढ़ता से सामना कर सके।

संवेगात्मकता के द्वारा व्यक्ति अपने मानसिक संघर्ष एवं तनाव को कम करता है। संवेग शब्द किसी भी प्रकार से आवेश में आने, उत्तेजित होने अथवा भड़क उठने की दशा को सूचित करता है। संवेग के अन्तर्गत भाव, आवेग तथा शारीरिक एवं दैहिक, सभी प्रतिक्रियायें आती है। किसी भी व्यक्ति के संवेग वाह्य उत्तेजना द्वारा किसी वाह्य विषयवस्तु अथवा घटना द्वारा जाग्रत किये जाते है। सामान्य व्यक्ति अपने संवेगों (क्रोध, प्रेम, प्रसन्नता, भय, प्रतिशोधात्मकता, दुःख, सुख आदि) की अभिव्यक्ति सामान्य रूप से करता है। संवेग अभिव्यक्ति की सीमा उतनी ही होती है जितनी आवश्यकता होती है। असामान्य व्यक्ति में संवेगों की अभिव्यक्ति समयानुसार नहीं होती है।

असामान्य शब्द अंग्रेजी भाषा के अवनामल का हिन्दी रूपान्तर है। अवनार्मल दो शब्दों से मिलकर बना है एब$नार्बल। एब का अर्थ होता है नही तथा नार्मल का अर्थ है नियमित इस दृष्टि से असामान्य वह है जिसमें नियमितता नही पाई जाती है। असामान्य व्यक्ति वह है जो प्रतिमानों का पालन नहीं कर पाता है। शारीरिक रोगों के संबंध में प्रतिमान शरीर संरचनात्मकता एवं कार्यात्मकता से संबंधित होते है इसलिए सामान्य तथा विकृति में अन्तर को अधिक सुस्पष्टता से वर्णित किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर ऐसा कोई प्रारूप नही है जो आदर्श एवं पूर्ण सामान्यता का प्रत्यय प्रस्तुत करता हो जिससे कि तुलना संभव हो सकें। अतः अब भी भ्रम एवं

विरोधाभास बना हुआ है कि क्या सामान्य है क्या असामान्य है, क्या सामान्य नही है। इस संबंध में अनेकी दृष्टिकोण एवं प्रारूपों का विकास हुआ है जो भिन्न-भिन्न रूप से असामान्यता को विश्लेषित करते है।

साधारणतया असामान्य व्यक्ति का व्यवहार अन्य व्यक्तियों से भिन्न होता है। ऐसे व्यक्ति को सामाजिक पर्यावरण में अपने को समायोजित करने में कठिनाई होती है। वह प्रायः दुखी एवं अप्रसन्न रहता है, उसका दृष्टिकोण एकागी होता है। जिसके कारण समस्या समाधान करने में विशेष कठिनाई अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व अस्थिर, संवेग अस्पष्ट तथा बुद्धि सीमित होती है। उसका पत्यक्षीकरण उचित नही होता है।

यहाँ पर असामान्यता की कुछ परिभाषायें प्रस्तुत है:

रूथ बेनेडिक्ट

असामान्यता केवल सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति है जो व्यक्ति एक संस्कृति में असामान्य घोषित कर दिये जाते है, वे दूसरी संस्कृति में जाकर सामान्य व्यवहार करते है।

थामस साज

नैतिक तथा सामाजिक आदर्शो से प्रथक्करण मानसिक रोग समझा जाता है।

डोलार्ड तथा मिलर

सामान्य व्यक्ति वह होता है जो ज्ञानात्मक रूप से द्वन्द्वात्मक आवश्यकताओं की प्रकृति को जान सकता है। इसके विपरीत व्यक्ति असामान्य होता है।

किस्कर, जी0डब्लू0

मानव व्यवहार व अनुभूति जो अजीब अनुपयोगी या सामान्य के अनुरूप न हो उसे असामान्य कहा जा सकता है।

डलमान ऐण्ड क्रेसनर

असामान्य व्यवहार उन व्यवहारिक तरीकों की सुविधा के लिए नामांकन है जो सामाजिक अभिलाषाओं को पूरा करने में असफल रहते हैं।

1. असामान्य व्यवहार

असामान्य व्यवहार व्यक्ति की आंतरिक व्यक्तित्व व्यवस्था अथवा वाह्य पर्यावरण अथवा दोनों के संदर्भ में विशेष प्रकार के व्यवहार जैसे अकारणभय या अधिक व्यापक तरीकों जैसे मनोविदलता आदि के संदर्भ में प्रयोग होता है। इसके अन्तर्गत स्थाई या अधिक समय वाली समस्यायें आती है। विस्तृत रूप से इसका प्रयोग असमायोजित व्यवहार के समान ही किया जाता है।

2. प्रतिकूलित व्यवहार

इसके अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति की प्रतिक्रियायें आती हैं जो स्वयं उसको एवं समाज को हानि पहुंचाती है। इस प्रकार की क्रियायें करने वाले व्यक्तियों की आलोचना की जाती है तथा धीरे-धीरे इनका व्यवहार सामान्य से भिन्न हो जाता है। ये व्यक्ति न तो अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर पाते हैं और न ही समाज को लाभ होता है। इस

प्रतिकूलित व्यवहार के अन्तर्गत मनोस्नायु विकृतियों तथा मनोकृतियों को ही नहीं सम्मिलित करते हैं बल्कि उन व्यक्तिगत एवं सामूहिक तरीकों जैसे अनैतिक व्यवहार तरीके, पूर्वाग्रह, तथा उदासीनता को भी सम्मिलित करते हैं।

3. मानसिक विकृति

मानसिक विकृति शब्द का उपयोग असामान्य व्यवहार तरीकों को संदर्भित करने के लिए किया जाता है, इसके अन्तर्गत साधारण असामान्यताओं से लेकर विषम असामान्यताओं का सम्मिलित किया जाता है। मनोस्नायु विकृति एवं मनोविकृति इसके दो अवयव है|मानसिक विकृति एवं उनसे मिलते जुलते शब्द एवं उनका अध्ययन विषय निम्नांकित है:

मनोव्याधिकी मनोव्याधिकी एक विषय है जिसमें असामान्य व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

सांवेगिक व्यवधान सांवेगिक व्यवधान अपर्याप्त व्यक्तित्व एकीकरण तथा व्यक्तिगत दबावों को दर्शाता है। यह प्रायः बालकों के प्रतिकूलित व्यवहार के संदर्भ में प्रयोग होता है।

मानसिक रोग कुछ समय पहले इसका मानसिक विकृति के समान ही समझा जाता था परन्तु अब उन्हीं रोगों के लिए उपयोग किया जाता है जिनमें मस्तिष्क विकार कारण होता है।

व्यवहार विकृति - व्यवहार विकृति का प्रयोग उन विकृतियों के दर्शाने के लिये किया जाता है जो दोषपूर्ण सीखने की प्रक्रिया द्वारा विकसित होते है। दोषपूर्ण सीखने के द्वारा या तो आवश्यक क्षमताओं का विकास नहीं कर पाता है अथवा प्रतिकूलित तरीकों को सीखता है।

मानसिक व्याधि - मानसिक व्याधि मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है, जिसमें व्यक्ति का कार्य साधारण अथवा विषम रूप से विकृत हो जाते है।

पागलपन - यह वैधानिक शब्द है जो प्रदर्शित करता है कि व्यक्ति मानसिक रूप से अपने कार्यों को करने के अयोग्य है तथा अपने कार्यों के परिणाम को सोच नहीं सकता है। पागलपन विषम प्रकार के मानसिक विकृतियों के लिए प्रयोग किया जाता है।

9,3 असामान्य व्यवहार के लक्षण

आधुनिक अध्ययनों से यह पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुका है कि व्यवहार विकृतियाँ ,चाहे वे पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक ही हों उनका आधार मनोवैज्ञानिक व शरीरिक होता है। अन्य शब्दों में मानसिक व शरीरिक रोग आपस में सम्बन्ध होते हैं । चिकित्सा -विज्ञान के परिणामों से यह बात और सिद्ध हो जाती है कि शरीरिक बीमारियों का कारण कभी-कभी शारीरिक न होकर मनोवैज्ञानिक भी होता है तथा कभी-कभी मनोवैज्ञानिक बीमारियों का कारण शारीरिक होता है। व्यवहार इस प्रकार मनोदैहिक है, क्योंकि मन व शरीर दोनों आपस में सम्बन्द्ध है। व्यवहार के इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने से लक्षण के नये स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है ।

शाब्दिक रूप से लक्षणों का अर्थ चिन्ह होता है आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में लक्षण का एक बिमारी व्यक्तित्व के रूप में देखा जाता है तथा उसको दूर करने का प्रयास किया जाता है परन्तु वास्तविक उद्देश्य तो उसका गतिक

चिकित्सा करने का होता है। स्मरण रहे कि लक्षण गत चिकित्सा में चिकित्सा का उद्देश्य लक्षण को दूर करना मात्र ही होता है। जबकि गतिक चिकित्सा में रोग के मूल असमायोजन को दूर करने का उद्देश्य निहित होता है।

प्रो.रोजेन व ग्रेगरी के अनुसार, ''एक लक्षण प्रकृति की आत्मगत या वस्तुगत अभिव्यक्ति है। आत्मगत लक्षण रोगी द्वारा की गई शिकायतें वस्तुगत लक्षण प्रातः रोगी के व्यवहार के रूप में व्यक्त होती है।

आत्मगत लक्षण के प्रमुख उदाहरण थकान, डरावने स्वप्न आदि हैं तथा वस्तुगत लक्षण जो रोगी के व्यवहार में दिखाई पड़ते है; उसके प्रमुख उदाहरण स्मृति का दोषपूर्ण हो जाना, संवेगों में असामान्यता, हाथ या पैर में लकवा मार जाना। इस प्रकार के लक्षण रोग में अन्तर्निहित कारणों की सांकेतिक अभिव्यक्ति है।

किसी भी बीमार का कोई अकेला चिह्न प्रकट होने को लक्षण कहते है; परन्तु प्रायः कोई लक्षण अकेला प्रकट होता नहीं है। लक्षण अच्छी तरह से संगठित समूह में प्रकट होते है। कुछ लक्षण प्रकट हो जाते हैं तो कुछ लक्षण अप्रकट ही रह जाते है। लक्षण ग्रन्थियों को ही संलक्षण (Symptom) या लक्षण समिष्ट कहते है। इस प्रकार किसी असामान्यता का केवल एक लक्षण ही दृष्टिगोचर होते है। जैसा कि हम बता चुके है कि प्रारम्भ में लक्षण को ही रोग के गतिक पक्षों पर ध्यान नहीं दिया जाता था। लेकिन आज प्रत्येक लक्षण का अध्ययन करके उसके अन्तर्निहिहत गतिक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार रोग का निदान तब संभव होता है, जबिकि चिकित्सक वर्ग, रोग का वर्गीकरण कर ले तथा वर्गीकरण तब सम्भव है जबकि लक्षणों का ज्ञान हो।निम्नांकित वर्गीकरण आपको इसे समझने में मदद करेगा :

9.3.1 भ्रान्ति एवं इसके प्रकार:

भ्रान्ति वह विश्वास है जो अतार्किक, असत्य तथा औचित्यहीन होते है। अन्य शब्दों में, ये वे असम्भावित विश्वास होते है जो विरोधी परिणामो के रहते हुए भी बने रहते है। ह्राइट के अनुसार भ्रान्ति की तीन विशेषताएँ होती हैः-

- भ्रान्ति एक प्रकार के वे विचित्र विश्वास होते है जो असत्य व असम्भव होते है।
- इनका प्रारंभ वास्तविक अनुभवो से नहीं होता है तथा तर्क, औचित्य , विवेक तथ्य आदि के आधा पर इन्हे ठीक या परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।
- इनका व्यक्ति की शिक्षा व वातावरण के साथ किसी प्रकार का संबंध नहीं होता है।

इसप्रकार भ्रान्ति का निर्धारण अनुभव पर आधारित विश्वास नहीं है , बल्कि विषयगत निर्धारित विश्वास है जिसे तथ्य या तर्क के माध्यम से दूर नहीं किया जा सकता है। अचेतन से संबंधित इच्छाएँ भ्रान्ति के माध्यम के प्रकट होती हैं अतः कुछ मनोवैज्ञानिक भ्रान्ति को एक प्रकार की रक्षा-युक्ति मानते हैं। भ्रान्तियों का वर्गीकरण भी किया गया है। वैसे तो भ्रान्तियों का ठीक अर्थ रोगी की सम्पूर्ण मानसिक पृष्ठभूमि को समझने के बाद ही समझा जा सकता है। फिर भी विषय के आधार पर भ्रान्ति को निम्न चार प्रकारो में बाटा जा सकता है:-

(अ) वैभव भ्रान्ति

वैभव भ्रान्ति में व्यतित अपनी अर्याप्तता व असुरक्षा- भावता की क्षतिपूर्ति महानता के रूप मंे करता है। वह अपने कोड़पति , सर्वसुन्दर, सम्राट या संसार का स्वामी , महापुरूष, प्रसिद्ध अभिनेता या अभिनेत्री आदि समझता है। इस प्रकार सोचकर वह अपने की हीनभावना ग्रन्थि से बचाता है। रोगी अपने वैभव के संबंध में विचित्र विचार प्रकट करता है जैसे- एक रोगी मरने से इसलिए डरता था क्योंकि वह यह समझता था कि उसके मर जाने से सारा संसार ही मर जाता है।

(ब) दंड भ्रान्ति

इस प्रकार की भ्रान्ति में रोगी को यह विश्वास होजाता है कि उसके अनेक शत्रु है जो सदैव उसका पीछा करते है ।ये शत्रु मिथ्या प्रचार करते फिरते है। उन्होन भोजन में विष मिला दिया है तथा वे किस प्रकार से उसे दंिण्डत करने या जान से मारने की साजिश कर रहे है।

किसी भी प्रसंग को देखते ही उसे दण्ड भ्रान्ति अन्य शब्दो मे, दण्ड भ्रान्ति का एक पूरक संदर्भ भ्रान्ति है जिसमे रोगी किसी भी आकस्मिक घटना या प्रसंग मे व्यक्तिगत रहस्य या गुप्त रहस्य का आभास करता हैः जैसे- कुछ व्यक्तियो को आपस में बात-चित करते देखकर मानसिक रोगी यह सोचता है कि ये व्यक्ति मेरे संबंध में ही बात कर रहें है। अगर कोई उसकी आरे देख ले तो वह समझता है कि इसमें कोई न कोई रहस्य छिपा है, कोई अजनाने में खाँस दे या बोल दे तो रोगी उसे अपने प्रति व्यंग ही समझता है।

(स) आत्म-निन्दा भ्रान्ति

इस प्रकार की भ्रान्ति में रोगी यह समझता है कि उसने कोई पाप किया है जिसका दण्ड उसे मिलना ही चाहिए।वह स्वंय ही अपनी इस भ्रान्ति की निंदा व भत्सर्ना करता है। कभी-कभी वह यह भी सोचता है कि वह एक बुद्धिहीन व्यक्ति है तथा इसी योग्य है कि ईश्वर व मनुष्य दोनो ही उसका बहिष्कार करें। इस भ्रान्ति के कारण कभी-कभी भगवान से ही नहीं वरन् अपने मित्रो व परिजनों से दण्डित करने या जान से मारह का निवेदन करता है। कभी-कभी रोगी इसी भ्रान्ति के कारण आत्महत्या करने का भी प्रयास करता है।

(द) रोग भ्रम भ्रान्ति

इस प्रकारकी भ्रान्ति में रोगी अपने को किसी शारीरिक या मानसिक रोग से पीड़ित समझने लगता है। अपने विपिरीत प्रमाणों को वह अस्वीकार कर देता है तथा सोचने लगता है कि उसे केन्सर, यक्ष्मा (टी0बी) आदि हो गई है। वह कभी-कभी यह सोचने लगता है कि उसका मस्तिष्क सड़ता या गलता जा रहा हैं, शरीर का रक्त में पानी में परिवर्तित हो गया है, शरीर में पेट ही नहीं है; हड्डियाँ क्षीण या पतली होती जा रही है। कभी-कभी इस भ्रान्ति के कारण व्यक्ति यह सोचने लगता है कि वह पागल हो रहा है , उसके व्यक्तित्व में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। इस प्रकार की भ्रान्तियों में व्यक्ति जीवन की अनेक कठिनाइयों, असफलताओं, प्रति चिन्तात्मक बातो को गलत, कारण उपस्थित करके युक्ति ढूँढ लेता है। यह 'परिवर्तन या रोग की ओर पलायन' का ही अतिशय रूप है।

9.3.2 विभ्रम

जब बाह्य उद्दीपक के अभाव में भी संबंधित संवेगात्मक प्रत्यक्षीकरण का बोध हो तो उसे विभ्रम कहते है। भ्रम और विभ्रम में अन्तर है। भ्रम में बाह्य उद्दीपक का अभाव नहीं रहता बल्कि बाह्य उद्दीपक की गलत संवेदना के कारण भ्रम उत्पन्न होता है; जैसे रस्सी के टुकड़े को साँप समझना भ्रम है। विभ्रम में बाह्य उद्दीपक रहता ही नहीं तथा व्यक्ति को अस्तित्वहीन वस्तुएँ दिखाई पड़ती है। सामान्य विभ्रम को मानसिक रोग का लक्षण नहीं माना जा सकता। सामान्य रूप से इससे संबंधित दैनिक जीवन में अनेक उदाहरण दिखाई पड़ते है। जैसे कभी-कभी धार्मिक सस्कारो के कारण सामान्य व्यक्ति को देवी-देवताओं की आवाज सुनाई पड़ती है। कभी-कभी ऐसा प्रतित होता है कि टेलीफोन की घण्टी बज रही है परन्तु वास्तव में घण्टी नहीं बजती है। मानसिक रोगियों में पाई जाने वाले विभ्रमों का रूप विचित्र हुआ करता है। इन्हे तर्क की कसौटी पर कसा नही जा सकता। अगर रोगी को इन विभ्रमों का संबंध में समझाया जावे तो वे इसे स्वीकार नहीं करतें। इनके मूल में किसी न किसी दमित इच्छा की पूर्ति छिपी

रहती है। जब कोई इच्छा अहम् द्वारा अस्वीकृत हो जाती है तो दमन के द्वारा अचेतन मन में चली जाती है। अचेतन में जाकर ये इच्छाएँ सक्रिय रहती हैं तथा चेतन में आने का बराबर प्रयास करती रहती है। परन्तु चेतन में आने के लिए ये छद्मवेश का सहारा लेती हैं विभ्रम भी एक प्रकार का प्रक्षेपण प्रयास है जिनके माध्यम से अचेतन मन की इच्छाएँ, प्रच्छन्न रूप से चेतन जगत में आता है। विभ्रम का कारण मनोजन्य व दैहिक दोनों हैं। दैहिक कारकों से उत्पन्न विभ्रम या मुख्य उदाहरण यह है कि अगर मस्तिष्क के पिछले खण्ड में यान्त्रिक उत्तेजना दी जावे तो व्यक्ति को आँख के सम्मुख प्रकाश की चमक जैसे विभ्रम उत्पन्न हो जाते है। इसी प्रकार विषय अवस्थाओं व मस्तिष्क शोथ के कारण भी अनेक प्रकार के विभ्रम उत्पन्न हो जाते है।

विभ्रम के प्रकार- भिन्न-भिन्न ज्ञानेन्द्रियों के गलत प्रत्यक्षीकरण में भिन्न-भिन्न प्रकार के विभ्रम होते है। अतः विभ्रम के प्रकार अग्रकित हैः-

(1) श्रवण संबंधी विभ्रम

इस प्रकार के विभ्रक में व्यक्ति को अनेक प्रकार की आवाजें सुनाई पड़ती हैं। अधिकर इस प्रकार के विभ्रम अप्रिय होते हैं रोगी कभी-कभी आवाजो की संज्ञाओ का पालन करता हैं और कभी-कभी संघर्ष व तर्क-वितर्क भी करता है; जैसे- स्थिर संभ्रान्तिवत् रोग में रोगी को ऐसा प्रतित होता है कि कोई शत्रु उसे हत्या करने की धमकी दे रहा है। रोसनाफ के अनुसार पूर्ण बहरे व्यक्ति को अवाजें सुनाई पड़ने के विभ्रम होते हैं ।

(2) दृष्टि संबंधी विभ्रम

इस प्रकार के विभ्रम का सरलतम रूप प्रकाश या रंग का विभ्रम होता है तथा अधिक जटिल हो जाने पर रोगी भयानक दृश्य देखने लगता है। उसे ऐसा प्रतित होता है कि खिड़की से विचित्र व्यक्ति झाँक रहा है या मृत व्यक्ति उसके सामने खड़ा है।

(3) स्वाद संबंध विभ्रम

इस प्रकार के विभ्रम में रोगी को अपने भोजन में विचित्र विष का स्वाद मिलता है।

(4) गन्ध विभ्रम

अधिकतर मनोविक्षिप्त प्रकार के रोगियों में इस प्रकार के विभ्रम दिखाई पड़ते है। इसका मुख्य कारण हस्तमैथुन होता है। इस प्रकार विभ्रम में रोगी को ऐसा लगता है कि उसके कमरे में विषैली गन्ध छोड़ दी गई है।

(5) त्वचा या स्पर्श विभ्रम

इस प्रकार के विभ्रम में रोगी ऐसा अनुभव करता है कि उसकी त्वचा पर कुछ रेंग रहा है। कभी-कभी उसे ऐसा अनुभव होता है कि विद्युतीय आघत दिया जा रहा है। इस प्रकार की संवेदना के अनुभव का मुख्य कारण रोगी की लैंगिक भावना से संबंधित होता है परन्तु रोगी इसे समझ नहीं पाता।

9.3.3 प्रतिगमन

यह सामान्य अनुभव की बात है जैसे-जैसे व्यक्ति की आयु में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे उसे पिछले जीवन के अच्छे दिनों की याद आती जाती है। इस प्रकार पीछले दिनों की सुखद, कौतूहलपूर्ण को याद करके मनुश्य कुछ समय के लिए वर्तमान भूल जाता है। इस प्रकार की विगत कल्पनाओं से उसे हानि के स्थान पर लाभ प्राप्त ही प्राप्त होता है। परन्तु जब विगत जीवन को बार-बार याद किया जावे तथा वर्तमान को भुला दिया जावे तो

इस प्रकार का प्रतिगमनात्मक अभियोजन ठिक नहीं होता बल्कि हानिकारक होता है तथा इनका संबंध असामान्यता से होता है। प्रतिगमन का उपयोग रोगी अन्द्रवन्द्व से बचने के लिए करता है। वह इस लक्षण की स्थिति उत्पन्न करके बच्चो के समान व्यवहार करने लगता है। क्योंकि बच्चों को किसी प्रकार की चिन्ता या जिम्मेदारी नही होती है। अतः रोगी के अन्तद्र्वन्द्व से बचने के लिये बच्चो के समान व्यवहार करने लगता है। क्योकि बच्चों को किसी प्रकार की चिन्ता या जिम्मेदारी नहीं होता है।अतः रोगी के अन्तद्र्वन्द्व से बचने के लिए बच्चों के समान व्यवहार करने लगता है। रोगी को इस प्रकार के प्रतिगमन व्यवहार की चेतना नहीं होती, तो उसे प्रतिगमन व्यहार की वास्तविक लगता है। कभी-कभी वह ऐसा अनुभव करता है कि वह खड़ा नही हो सकता। वास्तव में उसकी क्रियाशक्ति नष्ट नहीं होती बल्कि कुछ समय के लिए अर्थहीन हो जाती है । प्रतिगमन कहा जा सकता है।

9.3.4 परिवर्तन

परिवर्तन मानसिक रोग का वह लक्षण है जिसमें रोगी अन्तद्र्वन्द्व से छुटकारा प्राप्त करने के लिए शारीरिक रोग के लक्षण उत्पन्न कर लेता है। इस प्रकार से वह अन्तद्र्वन्द्व को कुछ समय के लिए समाप्त कर लेता है। शारीरिक रोग से ग्रस्त हो जाने के उपरान्त वह अपनी जिम्मेदारीयों से बच जाता है। अन्य व्यक्तियों की सहानुभूति प्राप्त होती है जिससे वह वर्तमान जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाता है। इसके अनेक उदाहरण मिलते है; जैसे एक सिपाही को युद्ध से न जाने कके लिए लकवा के लक्षण उत्पन्न हो जाने से सहायता मिलती है। क्योंकि लकवा हो जाने की स्थिति में उसे युद्ध में नहीं भेजा जाता है। इस प्रकार जहाँ एक तरफ व्यक्ति अपनी कठिनाइयो से बचता है तो दूसरी तरफ अन्य व्यक्तियों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होता है जिससे कि वह सहानुभूति प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। अतः परिवर्ततन एक प्रकार की पलायानात्मक मानसिक रचना है जिससे व्यक्ति 'बीमारी की ओर पलायन ' करता है।

9.3.5 स्मृति विकृतियाँ (Memory Disorders)

स्मृति संबंधी विकृतियाँ प्रमुख रूप से तीन प्रकार की होती हैः-

(अ) स्मृतिलोप- स्मृतिलोप दो प्रकार का होता हैः-

i. आंगिक स्मृतिलोप

मस्तिष्क में आघात लगने के कारण जब स्मृति में अव्यवस्था या विकृति आ जाती है तो उसे ऐन्द्रिय स्मृतिलोप कहतें है। अन्य शब्दों में, ऐन्द्रिय स्मृतिलोप तब होता है जबकि सिर में चोट लग जावे या विषज अवस्थाओं के फलस्वरूप मस्तिष्क क्षति हो जाय। कभी-कभी अधिक आयु का हो जाने से भी स्मृतिलोप हो जाता है। इन कारणों के फलस्वरूप या तो पूर्व स्मृतियाँ समाप्त हो जाती है या मन्द हो जाती हैं। नशीली वस्तुआं के उपयोग व वृद्धावस्था से कारण मस्तिष्क की धारणा-शक्ति दुर्बल हो जाती है जिसके फलस्वरूप अतीत की स्मृतियाँ भुला दी जाती हैं तथा नये अनुभवों की धारणा-शक्ति कम हो जाती है।

ii. मनोजात स्मृतिलोप

मनोजात स्मृतिलोप तीव्र संवेगात्मक अनुभव या आघातों के कारणो से ज्ञात होता है। इस प्रकार का स्मृतिलोप चुनावपूर्ण होता है। घनिष्ठ संबंधी या प्रियजन की मृत्यु, आर्थिक, क्षति,भयानक या लज्जाजनक घटना आदि के कारण अवसर मनोजात स्मृतिलोप होता है। इस प्रकार के स्मृतिलोप का उद्देश्य कष्टदायक या अपराध-भावात्मक

स्मृतियों को चेतना से हटा देना है। व्यक्ति अन्य बातो को तो याद रखता है परन्तु अपनी असफलता, नैराश्यता, अपमान, निन्दा, आदि मनोवैज्ञानिक विधियों (यथा- मुक्त-साहचार्य, सम्मोहन आदि) के माध्यम से पुनः स्मरण किया जा सकता है। इस प्रकार के स्मृतिलोप से मुख्यतः अहम की सुरक्षा होती है तथा अप्रिय स्मृतियों को चेतना में नहीं आने देती, जिससे कि मानसिक सन्तुलन ठीक बना रहता है।

स्मृतिलोप के ही दो और भाग भी किए गये हैः-

(1) अग्रगामी स्मृतियाँ

(2) अधोगामी स्मृतिलोप

(ब) मिथ्या स्मृति

इस प्रकार की स्मृति में व्यक्ति अस्त्विहीन बातो या घटनाओं की याद बनाए रखता है। सरल शब्दों में, व्यक्ति को, मिथ्या व अस्तित्वहीन बातो का स्मरण रहता है। बड़े ही विश्वासपूर्णक इन बातों के बारे में वर्णन करता है। मिथयास्मृति दो प्रकार की होती है-

(1) मिथ्यारचना- जो घटनाए कभी भी घटित नहीं हुई हैं उन्हे रोगी अपनी स्मृति में स्थान प्रदान करता है।

(2) अनुनिरीक्षणात्मक अयथार्थीकरण- इस प्रकार की स्मृति में पहले घटित हुई बातो को अयथार्थ रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

(स) अतिस्मृति

अतिस्मृति में रोगी को असाधारण रूप से पुनः स्मरण व पहचानने की क्रियाये दिखाई पड़ती है।

9.3.6 संवेगात्मक विकृतियाँ (Emotional Disorders)

इनसे संबंधित लक्षण मुख्यतः अन्तद्र्वन्द्व, नैराश्य व असफल समायोजन से संबंध होते है। वैसे तो ये लक्षण सामान्य व्यक्तियों में भी पाये जाते हैं, परन्तु मानसिक रोगियों के भावात्मक जीवन का विश्लेषण करना बड़ा कठिनकार्य होता है क्योंकि उनसे संबंध प्रेरणाएँ अचेतन मन में दबी हुई होती हैं । मानसिक रोगियों में मुख्यतः संवेगात्मक विकृतियों से संबंधित निम्न लक्षण पाए जाते हैः-

(1) आकुलता

आकुलता की दशा में रोगी न्यूनाधिक आशंका या घबराहट दिखाई पड़ती है। व्यक्ति आकुलता की स्थिति में तब आता है जब कि उसे अपनी झमता से अधिक उत्तरादायित्व का निर्वाह करना पड़ता है। आकुलता की दशा में प्रमुख मनोशारीरिक , लक्षण, व्यग्रता,स्पन्दन, तीव्र नाड़ी व हृदय गति, तेज दिल की धड़कन, अत्यधिक पसीना आ जाना आदि दिखाई पड़ते है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि के आधार पर हम कह सकते है कि आकुलता की स्थिति द्वारा व्यक्ति को समायोजन में सुविधा होती है तथा इसकी पृष्ठभूमि में दुर्बलता व असुरक्षा की भावना रहती है।

(2) विषाद या अवसाद

विषाद या अवसाद की स्थिति में रोगी को दुःख की भावना पीड़ित करती है तथा वह दूर से दुःखपूर्ण की स्थिति का वर्णन करता रहता है। इनके वर्णन की अभिव्यक्ति उनकी मनोदिशा; जैसे- बैठने क ढंग, मुखाकृति आदि के माध्यम से होता है।

(3) विरक्ति

इस प्रकार की स्थिति में रोगी में भावात्क भावना का सर्वथा अभाव रहता है। रोगी के ऊपर ऐसी घटनाओं का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता जिनका संबंध प्रसन्नता, दुःख, लज्जा या सहानुभूति की भावना से होता है। विरक्ति से रोगी संसार में प्रायः अलग सा हो जाता है, उसे संसार नीरस सा दिखाई लगाता है।

(4) उल्लासोन्माद

इस प्रकार की स्थिति में रोगी को अत्यधिक आनन्द की भावना का अभाव होता है।

9.4 लक्षणों का वर्गीकरण (Classification of Symptoms)

प्रो. ब्राउन ने मानसिक विकृतियों के विभिन्न लक्षणों को तीन वर्गो में रखकर अध्ययन प्रस्तुत किया है:-

9.4.1 ज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं संबंधी विकृत लक्षण (Cognitive Symptoms)

ब्राउन ने इस वर्ग में संवेदना,प्रत्यक्षीकरण, साहचर्य, स्मृति व विचार की प्रक्रियाओं से संबंधी असामान्य लक्षणों को रखा है। ब्राउन ने प्रत्यके क्रिया से संबंधित प्रक्रिया की अनुपस्थिति, न्यूनता, अधिकतम, व विचित्र व विकृति की दृष्टि के लक्षणों का वर्णन किया है। नीचे हम प्रमुख वर्गो के लक्षणों का संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

(अ) संवेदना की विकृतियाँ

संवेदना से संबंधीत विकृतियों में दृष्टि, श्रव्य , घ्राण, स्वाद, पीड़ा, दाब, तापक्रम आदि संवेदनाएँ संवेदनाओं से संबंधित विकृति में आती है। प्रत्येक प्रकार की संवेदना में चार प्रकार के विकार आते है- (1) संवेदना का अनुभव नहीं होना- संवेदन शून्यता (2) कम मात्रा में तीव्रता में संवेदना का अनुभव होना-न्यून संवेदनशीलता, (3) अधिकतम के साथ संवेदना का अनुभव होना- अतिसंवेदन ग्रहणता, तथा (4) विचित्र प्रकार के संवेदना का अनुभव होना।

संवेदना के किसी भी प्रकार में चारों वर्णित प्रकारों के विकार उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु संवेदन-शून्यता, न्यून संवेदनशीलता व अतिसंवेदनशीलता का उपयोग मुख्य रूप से स्पर्श, वेदना, दबाव व तापक्रम की संवेदना के लिए होता है। जब किसी व्यक्ति को स्पर्श का अनुभव नहीं होता तो उसे स्पर्श-संवेदन-शून्यता, संवेदना का अनुभाव व्यक्तियों को नहीं होता तब उसे क्रमशः वेदना-संवेदन-शून्यता व तापक्रम-संवेद-शून्यता कहते है। बहुत से ऐसे रोग होते है जिन्हे गर्म की संवेदन-शून्यता या सर्दी की संवेदन-शून्यता आदि संवेदनाओं में न्यूनता होती है। इसी प्रकार रोगी को स्पर्श वेदना, आदि संवेदनाओं में न्यूनता, अधिक्यता व विकृतता का अनुभव हो सकता है। अन्धता संबधी विकार की चारों रूपों में सम्भव हो सकता है। उदाहरणार्थ, रूपान्तरित क्षोभोन्माद में रोगी पूर्ण-अन्धता, अर्द्ध-अन्धता,(रोगी की दोनों आँखों में एक ही भाग में अन्धता या दोनों आँखों के पृथक-पृथक विपरीत भागों में अन्धता या रंग-अन्धता है।) अर्थात किसी भी रंग से सम्बन्धित अन्धता उत्पन्न हो सकती है। अगर रोगी की दैहिक परीक्षा की जावे तो किसी भी प्रकार के दोष का पता नहीं चलता । दृष्टि सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के लक्षण निम्न हो सकते है-

1. दृष्टि सम्बन्धी न्यून लक्षण- समीप के उद्दीपक कम दिखाई देना, दूर की वस्तुओं को धुधला देखना दों चीजें दिखना आदि।

2. दृष्टि सम्बन्धी आधिक्य लक्षण- प्रकाश का भय दृष्टि आधिक्य -संवेदनशीलता आदि।

3. दृष्टि सम्बन्ध विचित्र लक्षण-बिना प्रकाश व रंग ,रंग की कौध आदि।

संवेदना सदैव अमूर्त प्रत्यक्षीकरण से सम्बन्धित होती है तथा प्रत्यक्षीकरण संवेदना को एक नया अर्थ प्रदान किया जाता है। प्रत्यक्षीकरण से सम्बन्धित मुख्य लक्षण भ्रम व विभ्रम है जब किसी भी वस्तु का त्रृटिपूर्ण प्रत्यक्षीकरण किया जाता है तो उसे भ्रम कहते है विभ्रम के अन्दर बिना बाह्य उद्दीपक की उपस्थिति से प्रत्यक्षीकरण होता है वैसे सामान्य व्यक्तियों में भी भ्रम पाये जाते है परन्तु इसका अतिरंजित रूप असामान्यता का परिचायक होता है। प्रायःमनोविक्षिप्त रोगियों को विभ्रम होता है । इससे सम्बन्धित एक और प्रमुख लक्षण रोगी की सन्देहपूर्ण अवस्था में रहता है।

रोगी का सन्देहपूर्ण या भ्रान्ति की अवस्था में रहने के कारण उसके प्रत्यक्षीकरण में अस्पष्टता होती है। संवेगात्मक असन्तुलन या मस्तिष्क की क्षति पहुँचने से यह अपने निकट से वातावरण का वस्तुओं के प्रति जागरूक नहीं होता । उसकी चेतना विक्षिप्त -सी हो जाती है इस प्रकार की विकृतियों के भ्रम में अत्यधिक अतिरंजना पायी जाती है। विभ्रम या अवस्ततुबोधन प्रायः मनोविक्षिप्त रोगियों में विद्यमान होते है। रोगी बिना किसी उद्दीपक के विभिन्न पदार्थों एंव दृश्यों को देख सकता है मस्तिष्क-आघात या विकृति रोगियों में दृष्टि सम्बन्धी विभ्रमों की अधिक प्रधानता होती है। जैसे मनोविदलता का रोग विचित्र -विचित्र दृश्यों को देखता है। उसे विचित्र आवाजें सुनाई पड़ती है जिससे कोई उसमें गाली-गलौज कर रहा होता है। या निन्दा कर रहा होता है। कभी-कभी उसे आवाजों की दिशा व स्त्रोत का आभास रहता है तो कभी नहीं। उसे विचित्र प्रकार के स्पशों का अनुभव होता है तथा कभी-कभी विचित्र गन्धों व स्वादों की भी अनुभुति होती है।

(स) बुद्धि व विचार की विकृतियाँ

इससे सम्बन्धित अनेक लक्षण है। जब व्यक्ति की बुद्धि -लब्धि से कम हो तो वे मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति कहलाते है। इसे प्रकार के लोगों में सोचने -समझने व क्रिया को ठीक प्रकार से करने की योग्यता बहुत ही न्यून होती है।

न्यून बौद्धिक योग्यता वाले व्यक्तियों में सीखने, समझने, निर्णय लेनें समस्याओं का समाधान करने की योग्यता बहुत कम होती है मानसिक दुर्बलता के तीन वर्ग है -जड़, मुढ़ तथा मूर्ख।

इसके अतिरिक्त कभी-कभी व्यक्ति के जीवन के किसी भी भाग में बौद्धिक योग्यता का ह्रास हो जाता है इसका सबसे प्रमुख कारण मस्तिष्कीय विकृति है बौद्धिक ह्रास से पूर्व वही व्यक्ति जटिल प्रश्नों का समाधान कर सकता था परन्तु इस लक्षण के उपस्थित होने के बाद वह साधारण गुणा-भाग नहीं कर पाता, साधारण वस्तुओं की तुलना नहीं कर पाता तथा उसकी स्मरण-शक्ति काफी क्षीण हो जाती है। वह निहित योग्यता से काफी कम बौद्धिक योग्यता का प्रदर्शन करता है इसका कारण यह होता है कि व्यक्ति तथा संवेगात्मकता का लक्षण विकृत हो जाता है वह आन्तरिक संवेगात्मक ऊहापोह में अधिक बौद्धिक शक्ति को खर्च कर देता है जिसके कारण अन्य आवश्यक कार्यो में उसमें बौद्धिक योग्यता होती ही नही है मनस्ताप के रोगियों में यह लक्षण अधिक दिखायी पड़ता है। रोगी भूतकालीन घटनाओं के सम्बन्ध में अधिक सोचता रहता है। अपनी समस्त शक्ति दिवा-स्वप्नों में अपव्यय कर देता है।

इस प्रकार के वर्गीकरण में स्मृति व चिन्तन सम्बन्धी अनेक विकृत लक्षण भी आते है। स्मृति सम्बन्धी आधिकीय लक्षण को स्मृति-ह्रास कहते है। यह प्रायः आंगिक मस्तिष्कीय विकृति के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है वैसे इसका कारण मनोजन्य भी हो सकता है स्मृति ह्रास आंशिक व पूर्ण दोनों हो सकता हैं जब किसी घटना को

घटित होने के बाद सभी बातों की विस्मृति हो जाती है तो उसे Repression कहते है स्मृति स ह्रास के साथ ही साथ रोगी घर से दूर भाग जाता है तो इस लक्षण को 'फ्यूग' कहते है।

चिन्तन से सम्बन्धित विकृतियों के लक्षण जो पाए जाते है, जिसमें से प्रमुख है कम, प्रक्रिया व विषय-वस्तु। ये लक्षण मनोजन्य मनोविक्षिप्तता के रोगियों में अधिक दृष्टिगत होते है।

9.4.2 गतिवाही प्रक्रियाओं से सम्बन्धित लक्षण

ब्राउन न लक्षणों के इस वर्ग के अन्तर्गत मांसपेशीय किया सहज विकृतियाँ,आदत-विकृतियाँ तथा ऐच्छिक क्रियाओं से सम्बन्धित असामान्य लक्षण का विवेचन किया है।

उसका कहना है कि जब मांसपेशीय क्रियाओं ,आदत सम्बन्धी असामान्यताओं सहज क्रियाओं,ऐच्छिक क्रियाओं आदि में क्रियात्मकता को अनुपस्थिति न्यूनता आधिक्य व विचित्र व विकृत अभिव्यक्ति होती है तो उन्हें गतिवाही प्रक्रियाओं से सम्बन्धित लक्षणों की संज्ञा दी जाती है।

9.3.4 संवेगात्मक प्रक्रियाओं से सम्बन्धित लक्षण

ब्राउन ने इसके अन्तर्गत सुखद व दुःखद अनुभूतियों से सम्बन्धित लक्षणों का विवेचन किया है मुख्य रूप से इसके अन्तर्गत ब्राउन न उदासीनता अत्यधिक हर्ष व विषाद व स्वपीड़न तथा परपीड़न आदि लक्षणों क विवेचन किया है। सामान्य रूप से इससे सम्बन्धित मुख्य लक्षण निम्न है-

(अ) अत्यधिक विकृति रूप में संवेगों की अभिव्यक्ति

(ब) संवेगों में उभयात्मकता अर्थात् एक ही पदार्थ के प्रति विरोध भाव

(स) संवेगों में शीघ्रता के साथ परिवर्तन

(द) परिस्थिति के अनुरूप संवेगों की अभिव्यक्ति न होना।

9.5 असामान्य व्यवहार के कारण (Causes of Abnormal Behaviour)

वैज्ञानिक व आधुनिक असामान्यता सम्बन्धी दृष्टिकोण से यह बात पूर्णतः सिद्ध हो गई है कि सामान्य व असामान्य में प्रकार के अन्तर नहीं है, बल्कि गुण या तीव्रता के कारण ही इसमें अन्तर है। असामान्य व्यवहार जटिल प्रकृति होने के कारण हम पूर्ण रूप से यह नहीं कह सकते है कि एक विशिष्ट परिस्थिति ही एक विशिष्ट असामान्य व्यवहार का कारण है कि असामान्य व्यवहार के कारणों की व्याख्या करना कठिन है। लेकिन हम इतना अवश्य कह सकते है कि वे परिस्थितियाँ जो व्यक्तित्व-विकास में असहायक या अवरोध उत्पन्न करती है तथा व्यक्ति के सम्मुख ऐसी परिस्थितियाँ असामान्य व्यवहार का कारण बनायी है। आसामान्य व्यवहारों के कारणों की विवेचना करने से पूर्व हम उन कठिनाइयों पर प्रकाश डालेंगे जो कि प्रायः असामान्य व्यवहार के विभिन्न कारणात्मक तत्वों को अलग-अलग करने तथा मूल्यांकन करने में असहायक होती है।

असामान्य व्यवहारों के लिए प्रायः कुछ कारण उत्तरदायी होते हैं। जिनकी पहचान के लिए मनोवैज्ञानिकों ने इन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में वर्गीकृत किया है जो निम्न प्रकार हैं-

9.5.1 प्रथम वर्गीकरण

उपर्युक्त कठिनाइयों के बावजूद भी मनोवैज्ञानिकों ने असामान्य व्यवहार के कारणों को जानने का प्रयास किया है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर व्यक्तित्व के दोषपूर्ण विकास तथा अत्यधिक दबाव डालने वाले कारकों को प्रमुखतः दो भागों में विभाजित किया हैः

(अ) आंगिक कारण

(ख) कार्यात्मक कारण

9.5.2 द्वितीय वर्गीकरण

कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने असामान्यता को उत्पन्न करने वाली विभिन्न परिस्थितियों को एक अन्य ढंग से भी वर्गीकरण करने का प्रयास किया है जो कि सोपक्षित रूप से अधिक वैज्ञानिक है। इस दृष्टिकोण के अनुसार-

(अ) पूर्व निहित कारण

(ख) तात्कालिक कारण

पूर्वानिहित असामान्यता सम्बन्धी कारण वे है जिसके माध्यम से व्यक्तित्व विकास दोषपूर्ण हो जाता है तथा भविष्य में भी ऐसी व्यक्ति की असामन्यता बनने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है । पूर्वनिहित कारणों से व्यक्ति की समायोजनशीलता कम हो जाती है तथा भविष्य में जटिल संघर्ष विफलताओं के साथ वह समायोजन नहीं कर पाता ।

तात्कालिक कारणों का सम्बन्ध उन विशिष्ट दशाओं से होता है जो कमजोर व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के लिए ऐसी दबावपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर देती है जिससे कि व्यक्ति समायोजन नहीं कर पाता हें वह लड़खड़ा जाता है, उसमें सहन-शक्ति कम हो जाती है ताकि धीरे-धीरे वह असामान्यता का शिकार हो जाता है।

9.5.3 तृतीय वर्गीकरण

सुविधा के दृष्टिकोण से हम सामान्य व्यवहार के कारण की दो मुख्य भागों में बाँट सकते है।

(अ) सामान्य कारण

(ब) तीव्र दबावपूर्ण कारक।

इन दोनो कारकों को भी तीन-तीन उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः-

(1) सामान्य जैविक विकास से सम्बन्धित कारक।

(2) सामान्य मनोवैज्ञानिक कारक

(3) सामान्य सामाजिक कारक।

इसी प्रकार-

(1) तीव्र जैविक दशाएँ

(2) तीव्र मनोवैज्ञानिक दशाएँ

(3) तीव्र सामाजिक दशाएँ

सामान्य कारकों का सम्बन्ध उन परिस्थितियों से होता है जो व्यक्तित्व विकास में बाधा उत्पन्न करती है। तथा जिसके फलस्वरूप वयक्तित्व का विकास दोषपूर्ण ढंग से होने लगता है। तीव्र दबावपूण्र कारणों का सम्बन्ध उन परिस्थितियों से होता है जो दोषयुक्त व्यक्तित्व से सम्बन्धित व्यक्ति को असामान्यता की ओर ले जाती है। सापेक्षित दृष्टिकोण से इन कारकों के फलस्वरूप से इन कारकों के फलस्वरूप भविष्य में असामान्यता उत्पन्न होने की सम्भावना होती है।

जैविक विकास से सम्बन्धित कारण

व्यक्ति के आंगिक संगठन का प्रभाव उसके व्यवहार पर भी पड़ता है। यदि कुछ परिस्थितियाँ या दशायें उसकी आंगिक वृद्धि एवं जैविक विकास में बाधक उत्पन्न करती हें तो ये परिस्थितियाँ असामान्यता की द्योतक होती है। दूसरे शब्दों में, सामान्य जैविक विकास सामान्य व्यवहार को उत्पन्न करता है, तो असामान्य जैविक विकास आसामान्य व्यवहार का उत्पादन करता है। यहाँ हम सर्वप्रथम ऐसे दोषपूर्ण जैविक कारणों का बतायेंगे जिनसे असामान्य व्यवहार का निर्माण होता है।

वंशानुक्रम सम्बन्धी कारक

मनोविकृत विज्ञान में वंशानुक्रम एक महत्वपूर्ण कारक है, लेकिन इसके महत्व के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नहीं है। क्योंकि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसको बहुत ही कम महत्व दिया है तो कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बहुत अधिक। वंशानुक्रम में वे सब शारीरिक एवं मानसिक विशेषताएँ आ आती हैं जो पिन्यैकों के माध्यम से एक व्यक्ति को अपने माँ-बाप से वंश-परम्परा के आधार पर प्राप्त होते है। मुख्यतः वंशानुक्रम के प्रभाव से शरीर का रंग, बालों का रंग, बनावट-कद, नाक-नक्शा, नासिका सूची और कपाल सूचिका आदि निश्चित होते हैं। वंशानुक्रम से सम्बन्धित प्राप्त निरष्कर्षो के आधार पर हम यह कह सकते है कि लगभग 3/4 मानसिक दुर्बलता एवं मनोविकृति रोगों का कारण मुख्यतः दूषित वंशानुक्रम होता है। इसके अतिरिक्त लगभग 15 प्रतिशत मनोविकृतिया, लगभग अधिकांश स्नायुविकृतियाँ तथा समाज-विरोधी या अपराधी व्यवहारों में वंशानुक्रम एक सहायक रोग होता है।

प्रत्यक्ष रूप से किसी भी व्यकित को वंशानुक्रम के माध्यम से असामान्यता के लक्षण प्राप्त नहीं होते बल्कि अप्रत्यक्ष या अज्ञात रूप से स्नायुमण्डल शरीर की बनावट तथा उसके विकास में निर्धारक होते हैं । यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि जो पिन्यैक वंशानुक्रम के माध्यम से एक व्यक्ति को मिलते हैं तथा मनोवैज्ञानिक असामान्य में सहायक होते हैं, उन पर अन्य पिन्यैकों की अन्तःक्रिया एवं बाहा्र वातावरण का भी प्रभाव पड़ता हैः उदाहरणार्थ- यक्ष्मा एक वंशानुक्रम से सम्बन्धित रोग है क्योंकि वंशानुक्रम के माध्यम से ऐसे पिन्यैक रोगी प्राप्त करता है जो अनुकूल शरीर-रासायनिक आधार का निर्माण करते है जिनके फलस्वरूप यक्ष्मा के कीटाणुओं के सम्पर्क में आते हैं, इस रोग में फँस जाते हैं। इस सम्बन्ध में मुख्यतः हमें उत्पत्तिमूलक व मैण्डल के सिद्धान्तों को जानना आवश्यक हैं।

मनोवैज्ञानिक विकास से संबंधित कारण

व्यक्तित्व-विकास शनैः शनैः होता है। जीवन के प्रारम्भिक काल में व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अगर व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक विकास दोषपूर्ण हो तो इसके फलस्वरूप अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाना स्वैभाविक ही है। दोषपूर्ण मनोवैज्ञानिक विकास केफलस्वरूप व्यक्ति में अपेक्षित परिपक्तता का अभाव होता है, साथ ही साथ उसमें इस प्रकार की मनोवृत्तियों का भी विकास हो जाता है जो उसके समायोजन पर विशेष प्रकाश डालती है। कोलमैन ने उन कारको का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है जिनसे दोषपूर्ण मनोवैज्ञानिक विकास उत्पन्न होता है-

(1) प्रारम्भिक वंचितता

अगर बच्चों को प्रारम्भिक महीनों में (जन्म) जैविक या मनोवैज्ञानिक तृप्ति से वंचित रखा जावे तो इसका प्रभाव उसके व्यक्तिव पर पड़ता है। क्योंकि इससे वचिंत होने के कारण प्राणी के विकास में बाधा उत्पन्न हो जाती है। प्रारम्भिक वचिंता मेनिम्न प्रमुख बातें आती हैः-

(अ) मातृत्व प्रेम से वचिंत करना; (ब) सामान्य पर्यावरण से वंचित करना।

(1) विकृत परिवारिक स्थिति

शिशु जैसे-जैसे बाल्यावस्था की ओर अग्रसर होता है वैसे-वैसे ही उसके सम्मुख शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण संबंधी परिस्थितियाँ उपस्थित होती हैं। उसका सम्पर्क क्षेत्र बढ़ता है, तथा उसके व्यक्ति के विकास पर परिवार क अलावा अन्य लोगो का भी प्रभाव पड़ने लगता है। इस समय अगर बालक के ऊपर माँ-बाप ने ठीक प्रकार ने नियत्रिंत व सन्तुलित देखभाल न रक्खी तो उसका स्वाभाविक विकास अवरूद्ध हो जायेगा। निम्न पारिवारिक स्थितियाँ एसी होती हैं जो दोषपूर्ण होती हैं तथा उनसे बालक के विकास पर काफी मत्वपूर्ण व प्रभावकारी ढ़ग से प्रभाव पड़ता हैः-

(अ) माँ-बाप या संरक्षक द्वारा तिरस्कार

(ब) बच्चे का अतिसंरक्षण

(स) दोषपूर्ण अनुशासन

(द) अत्यधिक उच्च नैतिक स्तर

(य) माँ-बाप की बच्चे के प्रति पूर्णतावादी चाह

(र) माँ-बाप के मध्य पारस्परिक प्रेम का अभाव

(ल) भग्न परिवार

(व) अनैतिक आदर्श

(स) भाई-बहनों के मध्य प्रतिद्वन्द्विता

(2) प्रारम्भिक मानसिक आघात

कभी-कभी बाल्यावस्था में व्यक्ति के जीवन में ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती है जिनसे उत्पन्न आघात को व सम्पूर्ण जीवन तक भुला नहीं पाता।इस प्रकार के आघातो से तात्कालिक व्यवहार तो प्रभावित होता है परन्तु साथ ही साथ भावी जीवप पर भी प्रभाव पड़ता है। इन आघातों के फलस्वरूप व्यक्ति का पर्यावरयण या आत्म-मूल्यांकन दोषपूर्ण होता जाता है। वह इनके प्रभावों के अनुरूप ही व्यवहार करता है।

(3) किशोरावस्था के लिए अनुपयुक्त तैयारी

बाल्यावस्था में बालक के सामने किसी भी प्रकार का सामाजिक बंधन नहीं होता है परन्तु किशोरवस्था के आगमन के साथ ही साथ उन पर अनेक बंधन लगा दिये जाते है। एक तरफ तो उनके शारीक विकास द्रुत गति से होता हैं और दूसरी ओर उन पर नियंत्रण लगाया जाता है, विशेष रूप से लड़कियों पर जिसके फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक रूप से उसका झुकाव गलत प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख हो जाता है। भारत में यौन-शिक्षा का कोई

प्रबंध न होने के कारण विशेष रूप से अनेक मानसिक रोगो का जन्म हो जाता है। अक्सर यह देखा जाता है। कि इस अवस्था में व्यक्तियों का समायोजन असन्तुलित हो जाता है,

(4) अन्य कारक

मनोवैज्ञानिक विकास से संबंधित निम्न कारण और भी हो सकता हैः- (अ) प्रौढ़ावस्था के लिये अपेक्षित योग्यताओं का अभाव, तथा (ब) दोषपूर्ण जीवन-दर्शन।

सामाजिक विकास से संबंधित कारण

व्यक्ति के समायोजन पर वंशानुक्रम के प्रभाव के अतिरिक्त पर्यावरण का भी ज्ञान पड़ता है। पर्यावरण से संबंधित कारकों के एक भाग को हम मनोवैज्ञानिक विकास से संबंधित कारको के अन्तर्गत वर्णन करेंगे। अन्य पर्यावरणगत कारकों का संबंध सामाजिक कारको से होता है।

अनेक अध्ययनों से यह सिद्ध हो गया है कि सांस्कृतिक संरचना का व्यक्गित-विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है।यह प्रमुखशास्त्री अरनेस्ट वर्गीज (1955) का मत है कि दोषपूर्ण सामाजिक कार्य प्रणाली ही मानसिक रोगो की जननी है। मीड के अनुसार, व्यवहार के स्वरूप-निर्धारण में सामाजीकरण की प्रक्रिया प्रमुख रूप से सहायक होती है। अगर यह प्रक्रिया ही दोषपूर्ण है तो व्यवहार विकृत होना स्वभाविक ही है। भिन्न-भिन्न प्रकार के सांस्कृतिक प्रतिमान भिन्न-भिन्न प्रकार के मानसिक रोगो को जन्म देते है-ऐसा समाजशास्त्रियों का विचार है। कारोदर्स, डेमरोथ, मीथ आदि विद्वानों का मत है कि सांस्कृतिक भिन्नताएँ भी मानसिक विकारों से उत्पन्न होने में सहायक होती हैं। मुख्य रूप से सामाजिक कारण निम्न होते हैः-

(1) पास-पड़ोस (2) विद्यालय (3) समुदाय (4) संस्कृति (5) सामाजिक तनाव (6) युद्ध (7) प्रजाति (अ) राष्ट्रीयता आदि।

तीव्र दबावपूर्ण कारक

व्यक्तियों के सामने कुछ ऐसी स्थितियाँ सामने आ जाती है।कभी-कभी संगठित व समायोजित पूर्ण व्यक्तित्व वाले व्यक्ति भी इन तीव्र सामाजि दशाओं को झेल नहीं पाता तथा भविष्य के लिए असमान्यता की सम्भावना बना लेता है। इन कारको हम संक्षेप में निम्न तीन उप-वर्गो में रखकर अध्ययन करेंगेः-

(अ) तीव्र दबावपूर्ण जैविक दशाएँ

कुछ ऐसी जैविक दशाएँ होती है जो व्यक्ति को असामान्य बनाने का पूर्ण प्रयास करती है। ये मुख्य दशाएँ- शारीरिक दीर्घकालीन रोग, खाद्य सामग्री या पोषक तत्वो का अभाव, अत्यधिक मद्यपान, अत्यधिक संवेगात्मक तनाव आदि है। कभी-कभी व्यक्ति के मस्तिष्क के कोषों को क्षति हो जाने पर भी तीव्र प्रभाव उत्पन्न हो जाता है।

व्यक्ति को जीवित रहने एंव विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए आराम व पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता होती है क्योकि प्रत्येक क्रिया में कुछ शक्ति खर्च हो जाती है जिसे इनके माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। अगर व्यक्ति को दीघ्रकाल तक विश्राम व पोषक तत्व प्राप्त न हो तो व्यक्ति में विभिन्न प्रकार की असामान्ताओं का जन्म हो जाता है। निरन्तर यही दशा रहने पर व्यक्ति साधारण कठिनाईयों को भा सामना नहीं कर पाता।

(ब) तीव्र दबावपूर्ण मनोवैज्ञानिक दशाएँ

जीवन का सफर सफलता या सुखद अनुभूतियों के साथ ही व्यतीत नहीं होता, बल्कि उसे जीवन में अनेक नैराश्यों व अन्तद्वन्द्वो का भी सामना करना पड़ता है। तीव्र दबावपूर्ण मनोवैज्ञानिक दशाओं में वे स्थितियाँ आती हैं जिनमें दोषपूर्ण व्यक्ति वाले व्यक्ति असामान्यता के शिकार हो जाते हैं या सापेक्षिक रूप से संगठित व्यक्ति भावी जीवन में असमान्यता की आशंका से ग्रस्त हो जाता है।

व्यक्ति की प्रमुख मनोवैनिक आवश्यकता उपयुक्तता व आत्म-सम्मान है। व्यक्ति का अहम् इनकी पूर्ति करने का यथासम्भव प्रयास करता है। परन्तु असफलताएँ, हानियाँ , अपराध-भाव उतन्न करने वाली ऐसी प्रमुख स्थितियाँ हैं, जो व्यक्ति की इन प्रमुख मनोवैज्ञानिक आवश्कताओं को प्रभावित करती हैं तथा उसमें आत्म-अवमूल्यन उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त अन्त्रद्वन्द्व, प्रमुख सामाजिक, राजनैतिक व व्यक्तिगत दबाव आदि से ऐसी तीव्र मनोवैज्ञानिक दशाएँ हैं, जो असामान्यता उत्पन्न होने का कारण बन जाती है।

(3) तीव्र दबावपूर्ण सामाजिक दशाएँ

प्रत्येक समाज में कुछ ऐसी प्रथाएँ सामाजिक या सांस्कृतिक मान्यताएँ विद्यमान या उत्पन्न हो जाती हैं जिनका सामना प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर पाता क्योंकि उनको सहन करने के लिए पर्याप्त रूप से समायोजित व संगठित व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है। ये सामाजिक स्थितियाँ मुख्य रूप से युद्ध की आशंका,तीव्र आर्थिक परिवर्तन, बेरोजगारी, पक्षपात, तीव्र आपसी भेदभाव आदि स्थितियाँ हैं। भारत की स्थिति आज अधिक भयावह हो गई है। पाकिस्तान व चीन उसके शत्रु बने है। आर्थिक स्तर निम्न होता जा रहा है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण व्याप्त बेकारी व बेरोजगारी है। य़द्यपि आज भारत अन्य देशों की अपेक्षा मानसिक विकृतियाँ कम है। परन्तु अगर नागरिकों ने इन प्रमुख समाजिक कुरीतियों व समस्याओं का समाधान नहीं निकाला तो सम्भावना है कि भारत भी मानसिक विकृतियों का एक केन्द्र बन जाएगा।

वैसे असामान्य व्यवहार कारणो को ढूँढ़ना एक कठिन कार्य हैं, क्योंकि इनको उत्पन्न होने में अनेक परिस्थितियाद्द सहायक होती है। परन्तु अध्ययन के दृष्टि कोण से इनके कारणों को दो भागों में बाँटा जा सकता है- पूर्वनिहित व तात्कालिक कारक। पूर्वनिहित कारणों से व्यक्तित्व- विकास दूषित होता है तथा ये ही व्यक्ति को भविष्य में असामान्य बनाने के कारणों को उत्पन्न करते हैं। तात्कालिक कारक दोषपूर्ण व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के सम्मुख दबावपूर्ण स्थिति का रूप लेते हैं जिनको वह सहन नहीं कर पाता और वह असामान्य का शिकार हो जाता है। दोनों कारकों के अन्तर्गत विभिन्न जैविक, मनोवैज्ञानिक व सामाजिक कारक व स्थितियाँ आती हैं ।

9.6 असामान्य व्यवहार के प्रकार (Types of Abnormal Behaviour)

असामान्य व्यवहार के निम्न प्रकार हैं:

9.6.1 मनोविकृति (Psychosis)

मनोविकृति मानसिक विकार की गम्भीर अवस्था है। जिसमें व्यक्ति अपने सभी सामाजिक संबंधों को निरस्कृति कर देता है। उसका जीवन बिल्कुल अस्त-व्यस्त एवं विघटित हो जाता है। उसको बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के पर्यावरण का ज्ञान नहीं रहता है। अतः मनोविकृत व्यक्ति को उसे कहते हैं जो पागल हैं उेसे व्यक्तियों को अपने कार्यों के प्रति उत्तरदायी नहीं ठहरया जा सकता है क्योंकि उसमें इतनी मानसिक विकृति आजातीहै कि उसे किसी प्रकार का ज्ञान हीं रहता है। उको अस्पताल में भर्ती करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। रागी का

व्यवहार अत्यन्त हास्यप्रद एवं असंगत हो जाता है। वह न तो अपने भावनाओं पर नियंत्रण रख पाता है और न ही आंगिक क्रियाओं पर। उसको अपने शारीरिक कष्टों का भी बोध नहीं रहता है। उसका व्यवहार इतना विचित्र होता है कि उसका विश्वास इतना व्योमोहित होता है तथा उसके संवेग इतने विघटित होते हैकि एक सामान्य व्यक्ति जिसको मनोविकार का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है, उसको देखकर मनोरोगी घोषित कर देता है।

मनोविश्लेष्णात्मक सिद्धान्त द्वारा मनोविकृति व्यक्ति को समाान्य एवं अन्य व्यवहारिक विकृतिों से पृथक कर सकते हैं। इन रोगियों में इड, इगो व सुपरइगो में संतुलन नहीं होता है। इड जो पूर्ण दमित कर दिया गया होता है। वह अपने बंधनों को तोड़कर प्रत्यक्ष रूप में अपनी संतुष्टि का प्रयत्न करता है। मनोविकृतात्मक संघर्ष में इगो भी इड से समझौता करके उसकी सहायता करने लगता है। इस प्रकार इड अत्यन्त सरल होकर वास्तविकता का खण्डन कर देता है। यद्यपि इड अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करता है। परन्तु वे तरीके सामाजिक रूप से अस्वीकृत होते हैं। सुपर इगो भी प्रभावित हो जाता है। उसमें प्रतिगमन होता है, जिसमें व्यवहार विचित्र हो जाता है।

मनोविकार लक्षण

मनोविकृत व्यक्ति का व्यवहार अत्यन्त असंगत तथ अवास्तविक होता है। उसका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं होता है। रोगी अपनी क्रियाओं एवं संवेगों पर नियंत्रण न रख पाने के कारण विचित्र दिखाई देता है। सामान्यतः मनोविकार रोगी के निम्न लक्षण स्पष्ट होते है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि निम्न सभी लक्षण अवश्य ही प्रकट हो-

1. व्यामोह - मनोविकृति रोगी व्यामोह से पीड़ित है, उसमें अनेक कारकों एवं तथ्यांे के प्रति मिथ्या विश्वास होता है। चाहे जितना तर्क एवं कारण मिथ्या विश्वास के विरोध में प्रस्तुत किया जाए परन्तु यह तर्कों को अस्वीकृत कर देता है। तभी तो वह अपने आप को दार्शनिक, महान, वैज्ञानिक, समाज सुधारक, ईश्वर का अवतार समझता है और यह समझता है कि उसके विरोध में दुश्मन जाल बिछा रहे है तथा धोखा देने का प्रबंध कर रहे हैं। वह कभी-कभी अपने आप को बीमारियों से पीड़ित समझता है। वह कभी समझता है कि उसने अनेक पाप किए हुए है पाप किए हुए है जिसको किसी प्रकार क्षमा नहीं किया जा सकता है।

2. विभ्रम- गम्भीर मनोविकृति में रोगी को विभ्रम होने लगता है। बिना किसी वस्तु अथवा पदार्थ के न होने पर भी उसको प्रत्यक्षीकरण होता है। आवाज न होने पर भी आवाज सुनाई देती है। गंध न होने पर भी गंध का अनुभव होता है।

3. असंगत व्यवहार- रोगी को अपने व्यवहार को प्रति कोई ज्ञान नहीं होता है वह वास्तविकता नहीं समझता है। इड शक्तिशाली होने के कारण असामाजिक एवं अस्वीकृति व्यवहार करता है।

4. असंगत भाषा- रोगी के वाक्यों का कोई अर्थ नहीं होता है। उसके वाक्यों में तारतम्यता नहीं होता है। शब्द भी स्पष्ट नहीं होते हैं।

5. विचारों की अस्पष्टता- रोगी अपने विचारों को स्पष्ट करने में असमर्थ होता है, उसको ज्ञान नहीं होता है कि उसे क्या कहना चाहिए और क्या कह रहा है?

6. आत्म नियंत्रण का अभाव- रोगी में आत्म नियंत्रण का अभाव होता है। किसी भी प्रकार काकार्य वह कर सकता है। अतः किसी कार्य के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

7. उत्साह विषाद- कभी-कभी रोगी उत्साही हो जाता है। वह किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहता है परन्तु उसके कार्यों में कोई तारतम्यता नहीं होती है। वह अत्यन्त प्रसन्न एवं आनंदित दिखता है। कभी-कभी इसके विपरीत अवस्था होती है उसका किसी काम में मन नहीं लगता है, वह मूर्खों के समान पड़ा रहता है।

8. चिड़चिड़ापन- मनोविकृत रोगी के स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। उसके कार्य में यदि कोई व्यवधान उत्पन्न होता है, तो वह विरोधात्मक व्यवहार करता हैं

9. संदेही- वह किसी व्यक्ति पर विश्वास नहीं करता है। हर स्थिति को संदेह की दृष्टि से देखता है।

10. आत्महत्या की प्रवृत्ति- मनोविकृत व्यक्ति में आत्म हत्या की प्रवृत्ति पायी जाती हे। अतः उसकी देख-रेख की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

11. अपने कार्य स्वयं हानिकारक- रोगी को अपने कार्यों को कोई ज्ञान नहीं होता है, वह क्या करता है क्यों करता है? इत्यादि आतों का कोई ज्ञान नहीं होता है। उसके कार्य उसको स्वयं हानि पहुंचाते हैं।

12. आक्रामक प्रवृत्ति- मनोविकृत रोगी तोड़-फोड़ करने लगता है। विध्वंशात्मक क्रिया को अपने व्यवहार का अंग बना लेता है।

13. स्मृति ह्रास- रोगी में विभिन्न प्रकार की स्मृति संबंधी व्यवधान उत्पन्न हो जाते हैं। उसमें संवेदना का अभाव हो जाता है।

मनोविकार के प्रकार

मनोविकार दो प्रकार के होते हैं-

1. कार्यात्मक
2. संरचनात्मक

कार्यात्मक विकृतियां वे होती है, जिसमें मानसिक क्रियाओं में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। जिसके कारण उसका व्यवहार असामान्य हो जाता है। इन रोगियों में कोई शारीरिक रोग या आंगिक परिवर्तन नहीं होता है और रोगी में शारीरिक रोग स्पष्ट हो जाता है।

9.6.2 मनोस्नायुविकृति (साइकोन्यूरोसिस) (Psychoneurosis)

जब कभी असामान्य व्यवहार की बात करते है तो प्रायः तात्पर्य रोगी के अत्यन्त विषम अद्भुत तथा विचित्र व्यवहार से होता है परन्तु असामान्य व्यवहार का यह प्रत्यय वास्तविक अथ्र का बोध नहीं कराता है क्योंकि ऐसे व्यक्तियों की संख्या अधिक है जो असामान्य तो है, परन्तु उसमें विषय समाजिक व मानसिक विघटन के तत्व प्रदर्शित नहीं होते है। ऐस व्यक्ति में केवल कुपोषण की समस्या होती है। जिसके कारण उनमें अत्यन्त चिन्ता के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। यह अवस्था साइकोन्यूरोसिस की अवस्था होती है। साइकोन्यूरोसिस व्यक्ति को अस्पताल में भर्ती होने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होतीहै क्योंकि यह कोई रोग नहीं है बल्कि यह कुपोषण की समस्या का बोध कराता हे। जिसके कारण सामान्य जीवन यापन करने तथा संबंधों को सफलतापूर्वक चलाने में कठिनाई होती है। इस समस्या के उत्पन्न होने पर व्यक्ति वास्तविकता का गलत मूल्यांकन करता है तथा समस्या के समाधान करने के स्थान पर उससे बचने का प्रयत्न करता हे। साइकोन्यूरोसिस संबंधी समस्याएं रोगी के

कल अत्यन्त कष्टकारी एवं दुःखद होती है परन्तु इसका आभास उन्हीं व्यक्तियों को होता है जो उसके समीप जाते हैं-

मनोस्नायुविकृति की परिभाषा

मनोस्नायुविकृति व्यवहार में वास्तविकता से संबंध विच्छेद नहीं होता है। व्यक्ति में आंतरिक संघर्ष के परिणामस्वरूप् दुखदायी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। रोगी चाहे जितना विषादी तथा चिन्तित हो, उसमें ज्ञानात्मक ह्रास नहीं होता है। मनोस्नायुविकृति व्यक्ति अत्यन्त तनावपूर्ण स्थिति में सामान्य व्यक्ति के ही समान ही व्यवहारिक लक्षण प्रदर्शित करता है।

ब्राउन के अनुसार- मनोस्नायुविकृति से हमारा तात्पर्य असामान्य, ज्ञानात्मक, सांवेगिक तथा गत्यात्मक प्रक्रियाओं से है जो व्यक्ति को केवल आंशिक रूप से असमर्थ बनाते है और मूल लक्षण चिन्ता से संबंधित होते हैं।

क्रो लेस्टर डी0 के अनुसार- *मनोस्नायुविकृति रोग कोई रोग नहीं है बल्कि असमायोजन की एक सीमा को प्रदर्शित करता है, जो व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित कर सकता है तथा उसको सामान्य जीवन यापन ताकि अपने साथियों के साथ संबंधों को सफलतापूर्वक निभाने में कठिनाई उत्पन्न कर सकता है।*

कैटेल एण्ड स्क्रीमर के अनुसार- *मनोस्नायुविकृत एक ऐसा व्यक्ति है जिसमें आंतरिक तथा बाह्य कठिनाइयों एवं अक्षमताओं की अधिकता होती है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी सीमा तक पीड़ित होता है।*

फ्रायड के विचार से- *मनोस्नायुविकार में इड तथा सुपरइगो में संघर्ष होता है।*

उपर्लिखित परिभाषाओं के विश्लेषण में ज्ञात होता है कि मनोस्नायुविकृत कोई विषम रोग नहीं है जिसमे रोगी को अस्पताल में भर्ती कराया जाए बल्कि यह एक असमायोजन की समस्या है जिसमें व्यक्ति अत्यन्त असंतोष की भावना से ग्रसित होता है और चिन्ता व भग्नाशा के चरित्र अधिक मात्रा में प्रदर्शित होने लगते हैं।

मनोस्नायुविकार के लक्षण

1. अयश्रेष्ठता तथा चिंता की भावनाएं (Feeling of inadequacies and anxiety)

मानसिक रोगों के निदानात्मक तथा सांख्यकीय मैनुअल के अनुसार मनोस्नायुविकार की चिंता प्रमुख विशेषता होती है। जिसके कारण उसको बहुत सी स्थितियां चुनौती देने लगती हे। इस धमकी के कारण वह दूसरों का सहारा चाहता हे तथा प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति से दूर भागता है। फलतः चिन्ता उत्पन्न होती है। कभी-कभी यह चिन्ता विषम रूप ग्रहण कर लेती है। परन्तु अधिकांशतः रोगीचिनता को कम करने के लिए मानसिक सुरक्षात्मक रचनाओं का उपयोग करता है। मनोस्नायुविकृत में चिन्ता कम नहीं होती है क्योंकि व्यक्ति को अपने व्यवहार की अतार्किकता का ज्ञान नहीं होता है। इसके साथ ही साथ भय तथा अन्तर्द्वन्द्व समय-समय पर शक्तिशाली प्रदर्शन करता है और वे सुरक्षात्मक यंत्रों की संरचना को तोड़ने की संभावना उत्पन्न कर देते है।

2. कठिनाइयों का सामना करने के स्थान पर बचाव की प्रवृत्ति (Tendency to avoid instead coping with the behaviour)

मनोस्नायुविकृत व्यक्ति की जीवनशैली में दिन-प्रतिदिन की समस्याओं को सुलझाने एवं सामना करने के स्थान पर बचाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती हे। इस प्रकार वह उपलब्धि में असफलता के कारण का शारीरिक रोगों का सहारा लेता हे। अकारण भ्य के कारण वह तनावपूर्ण स्थिति से दूर भागता हे। इसके साथ ही उसके विचार भी बचाव की ओर अग्रसित हो जाते हैं। वह यद्यपि परिस्थितियों का सामना करना चाहता है परन्तु उसकी

आन्तरिक स्थिति परिवर्तित होने के कारण दूर भागने के लिए प्रेरित कती है। अक्षमता एवंचिन्ता सेबचने के लिए वह बचाव पक्ष का तरीका अपनाता है लेकिन इसका परिणाम यह होता है कि उसके अन्य समायोजित करने के तरहीको पर भी कुप्रभाव पड़ता है । जिससे उसका सम्पूर्ण जीवन कष्टमय हो जाता है।

3. व्यवहार में कठोरता तथा अन्तर्दृष्टि की कमी (Rigidity and lack of insight)

असहनीय बाह्य धमकी के काण व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण तथा अन्य सूचनाओं का कार्यक्षेत्र संकुचित एवं संकीर्ण हो जाता हे। उसको वास्तविकता का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो पाता है और न ही दूसरे के व्यवहार के निष्पक्ष होकर समझने की क्षमता रखता है। यद्यपि वह अपनी कठिनाइयों को अनुभव करता है परन्तु वह अपने प्रकृति तथा करणों के प्रति बहुत ही कम अन्तर्दृष्टि रखता है, जिसके कारण आत्म अवमूल्यन की शैली बनाए रखता है। वह सोचता है कि सामाजिक समूहों में भाग लेने का भय एक अकारण भय है। उसे इससे भयभीत नहीं होना चाहिए। परन्तु वह इस भय को दूर नहीं कर पाता हैं उन परिस्थितियों में जहां वह चिन्ता दूर कर सकता है, वहां पर भी ऐसा करने में असमर्थ होता है।

4. अहमान्यता तथा विग्रहित अन्तवैयक्तिक संबंध (Egocentricity and disturbed interpersonal relation)

वाह्य दबाव का प्रभाव भी व्यक्ति के आत्म पर पड़ता है। वह अपने ही विचारों में खोया रहता है। जिसके कारण जीवन के संघर्षों का सामना एक सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक कठिनाई से कर पाता है। उसका मुख्य संबंध अपनी ही भावनाओं, आशाओं तथा समस्याओं से रहता है। उसको असुरक्षा की भावना इतना व्यथित करती है कि वह आत्मकेन्द्रित हो जाता है। वह आत्मकेन्द्रित होने के कारण दूसरे व्यक्तियों के प्रति उदासीन हो जाता है। वह सदैव यह चाहता है कि दूसरे उसकी सहायता करे उसकी चिन्ता में भाग ले व अवास्तविक मांगों को भी प्रस्तुत करता है। जिसके कारण दूसरे लोग उससे दूर भागने का प्रयास करते हैं।

5. अपराधी भावना तथा अप्रसन्नता

प्रायः मनोस्नायुविक व्यक्ति में यह भावना होती है कि वह अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह न तो अपने प्रति उचित प्रकार से कर रहा है और न ही दूसरों के प्रति अपनी जिम्मेदारी को पूरा कर रहा है। समय-समय पर वह अपने अहमन्यता के परिणामों तथा स्वार्थी लोगों का प्रत्यक्षीकरण करता है, जिसके कारण अपराध की भावना उत्पन्न हो जाती है। वह सोचत है कि उससे उत्तरदायित्वों का पूरा न करके अपने तथा दूसरों के प्रति अपराध किया है अक्षमता, अथश्रेष्ठता, चिन्ता तथा अवमूल्यित जीवन शैली के कारण मनोस्नायुविकृत व्यक्ति प्रायः अप्रसन्न एवं दुखी रहता है।

6. शंका की भावना (Feeling of suspension)

मनोस्नायुविकृत व्यक्ति अपने तथा दूसरों को शंका की दृष्टि से देखता है। वह साधारण बात कर गूढ़ अर्थ लेता है तथा सामान्य क्रिरयाओं का अनेकानेक अर्थ लगता है। उदाहरण के लिए यदि वह देखता है कि दूसरेलोग उसके मकान के सामने बात कर रहे है तो वह अर्थ लगाता है कि वे उसको हानि पहुंचाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

7. क्षमता और उपलब्धियों में अन्तर (Difference of capacity and achievement)

मनोस्नायुविकृत व्यक्ति में क्षमता तथा उपलब्धि में विरोधाभास होता है। विकास के लिए परिस्थितियों अनुकूल होने पर भी व्यक्ति अनुत्पादक रहता है। प्रसन्न होने की सभी परिस्थितियों पर भी व्यक्ति प्रसन्नाचित दिखाई नहीं

देता है। एक महिला सुन्दर होने पर भी वह सोचती हैकि वह पुरूषों को आकर्षित नहीं कर सकती है। दूसरे शब्दों में मनोस्नायुविकृति व्यक्ति स्वयं अपने मार्ग में रोड़ा बन जाता है।

मनोस्नायुविकृत व्यक्ति सदैव व्यर्थ की चिन्ताओं तथा असुरक्षा की भावना से तनावपूर्ण स्थिति में रहता है। उसमें संवेदनशीलता सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक होती है तथा वह चिढ़चिढ़ा हो जाता है। ऐसा व्यक्ति थका-थका रहता है। उसको स्वयं शारीरिक एवं मानसिक थकान का अनुभव होता है। उसको पेट दर्द, अपच, सिरदर्द तथा अन्य कष्ट सताते रहते हैं।

मनोस्नायुविकृति तथा मनोविकृति में अंतर

मनोस्नायुविकृति एक समायोजन की समस्या है जबकि मनोविकृति एक जटिल विकृति है। इसमें व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यवहार अस्त-व्यस्त एवं विघटित हो जाता है। मनोस्नायुविकृति में व्यक्ति का वास्तविकता से सम्पर्क रहता है लेकिन चिन्ता प्रधान रहती है।

9.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने सामान्य व्यहार एवं उसमे आसामान्यता की अवधारणा से परिचित हुए साथ ही आपने देखा की आसामान्य व्यवहार के लक्षण होते हैं | साथ ही आपने आसामान्य व्यव्हार के विभिन्न कारणों का अध्ययन भी किया और असामान्य व्यवहार के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन किया व जानकारी प्राप्त की।

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

- सामान्य तथा आसामान्य व्यव्हार में अंतर स्पष्ट कीजिए |
- असामान्य व्यवहार के लक्षण कौन-कौन से है?
- असामान्य व्यवहार किन कारणों से उत्पन्न होता है? विस्तार से बताइए।
- असामान्य व्यवहार के प्रकार कौन-कौन से है?
- मनोस्नायुविकार के लक्षणों का वर्णन कीजिए।

9.9 संदर्भ ग्रंथ

- मिश्रा, पी0डी0 बी0 मिश्रा असामान्य व्यवहार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982
- शर्मा, सीमा, सामान्य मनोविज्ञान, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2011,
- मूरजानी, जे0 सामाजिक मनोविज्ञान, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2007,
- मिश्रा, एम0 के0, असामान्य मनोविज्ञान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2011,
- सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981

- चैबे, सरयू प्रसाद, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, कान्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2002
- चैबे, सरयू प्रसाद, सामान्य मनोविज्ञान के मूल तत्व, कान्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2005।
- सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004।
- सिंह, रतन, सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009,
- शर्मा, ओ. पी., मनोविकृति विज्ञान, ऋतु पब्लिकेशन, जयपुर, 2013।
- होनिंग, डब्लू0के0 आपरेन्ट बिहैवियर, एप्लेटन सेन्चुरी क्रफ्टस, न्यूयार्क, 1966
- हल, सी0एल0 प्रिन्सिपिल्स आफ बिहैवियर, एप्लेटन सेन्चुरी क्रफ्ट्स, न्यूयार्क, 1943

इकाई-10

मानसिक विकृतियों का प्रबंधन

Management of Mental Disorders

इकाई की रूप रेखा

10.0 **उद्देश्य**

10.1 **प्रस्तावना**

10.2 **रक्षा युक्तिओं**

10.2.1 **रक्षा युक्तियों का अर्थ**

10.2.2 **रक्षा युक्तिओं के प्रकार**

10.3 **मानसिक विकृतियों के प्रबंधन की तकनीकें**

10.4 **सारांश**

10.5 **अभ्यासार्थ प्रश्न**

10.6 **संदर्भ ग्रंथ**

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- रक्षा युक्तियों को परिभाषित कर सकेंगे
- रक्षा युक्तिओं की आवश्यकता बता सकेंगे
- रक्षा युक्तिओं के विभिन्न प्रकारों को बता सकेंगे
- विभिन्न प्रकार के रक्षा युक्तियों की उदाहरणों सहित व्याख्या कर सकेंगे
- मानसिक विकृतियों के प्रबंधन की आवश्यकता बता सकेंगे
- मानसिक विकृतियों के प्रबंधन हेतु परामर्श की तकनीक के बारे में बता सकेंगे
- मानसिक विकृतियों के प्रबंधन हेतु अन्य तकनीक यथा योग थेरपी,संगीत थेरपी, प्राकृतिक चिकित्सा आदि के बारे में सामान्य जानकारी दे सकेंगे
- परामर्श के विभिन्न चरणों की व्याख्या कर सकेंगे

- मानसिक विकृतियों के प्रबंधन हेतु प्रयोग में ली जा रही विभिन्न तकनीकों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे

10.1 प्रस्तावना

रक्षा युक्तियां व्यक्ति के ऊपर पड़ने वाले पर्यावरणीय दबावों से उसको मानसिक सुरक्षा प्रदान करती है जिससे व्यक्ति विभिन्न प्रकार के तनाव एवं दबाव का सामना करते हुए अपना संतुलन बनाए रखता है। मानसिक विकृतियां व्यक्ति के असमायोजित व्यवहार का उदाहरण होती हैं। इनके पीछे किसी निश्चित कारण की खोज कर पाना दुष्कर कार्य होता है। प्रायः मानसिक विकृतियों के कारणों में व्यक्ति का दोषपूर्ण समाजीकरण एवं अतृप्त शारीरिक एवं मानसिक तथा भावनात्मक इच्छाएं होती हैं। यदि व्यक्ति मानसिक विकृतियों का समुचित ढंग से प्रबंधन कर पाने में सफल रहता है तो वह अपने कुसमायोजित व्यवहार पर नियंत्रण प्राप्त कर सकता है। मानसिक विकृतियां विभिन्न प्रकार की होती हैं। जिनका प्रबंधन करने के लिए प्रायः मानसिक प्रक्रियाओं, भावनात्मक उपचारों, शारीरिक एवं मानसिक व्यायाम तथा योग आदि तकनीकों का उपयोग माध्यम के रूप में किया जाता है।

10.2 रक्षा युक्तियाँ

रक्षा युक्तियां व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक क्षमतायें हैं, जिनका प्रयोग वह विभिन्न प्रकार के मानसिक एवं सामाजिक दबाव एवं आघातों को सहन करने के लिए करता है। रक्षा युक्तियां व्यक्ति के व्यवहार को सामान्य बनाए रखने एवं उसके पर्यावरण से संतुलन स्थापित करने में उसकी मदद करती है।

10.2.1 रक्षा युक्तियों का अर्थ

जब व्यक्ति आवश्यकताओं की पर्याप्त संतुष्टि नहीं होती है तो दूसरी द्वितीयक अथवा अतिरिक्त आवश्यकताएं उत्पन्न होती है जिनकी संतुष्टि द्वारा व्यक्ति प्रथम प्रकार की असंतुष्ट स्थिति में भी संतुष्ट रहना सीखता है। जो व्यक्ति किसी आवश्यकता को संतुष्ट करने मंे सफल हो जाता है अथवा असफलता पूर्ण सम्भावित लगती है वह तुरन्त किसी न किसी प्रकार की अपनी असफलता के लिए व्याख्या अथवा सुरक्षा ढूंढता है क्योंकि असफलता स्वीकार करने से एक ओर तो उसे मानसिक क्लेश तथा पीड़ा होती है और दूसरी और उसकी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आने की सम्भावना रहती है। अतः वह अपनी असफलता को अपनी दृष्टि तथा साथियों व समाज की दृष्टि में उचित सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न करता है।

बालक में प्रारम्भिक जन्म (बचपन) से ही अहं अस्तित्व उपाहं (इड) से पृथक होने लगता है तथा उसके व्यक्तित्व का पृथक भाग बनने का प्रयत्न करता है। अहं सभी प्रवृत्तियों की स्वतंत्र संतुष्टि पर प्रतिबंध लगाकर संतुष्टि के तरीके निर्धारित करता है। अहं के द्वारा ही मूल प्रवृत्तियों की संतुष्टि संभव होती है। बचपन के अपरिपक्व स्तरों में अहं को मूल प्रवृत्तियों पर अवरोध लगाने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है और कभी-कभी उसके प्रति विरोध इतना कठिन हो जाता है कि उसे कुछ समय के लिए स्थिर हो जाना पड़ता है। बचपन की सम्पूर्ण अवस्था में

अहं का निर्माण सुरक्षा के यंत्रों से होता है। इन सुरक्षा यंत्रों द्वारा अहं प्रवृत्तियों से निपटने का प्रयत्न होता है, जिनकी संतुष्टि कष्टकर या खतरनाक ही क्यों न हो। जब निषेधात्मक उत्तेजना संतुष्टि के लिए अहं पर कुठाराघात करती है तो चिन्ता प्रकट होती है और चिन्ता का अत्यन्त कष्टकर, पीड़ाजन्य और दुखदायी प्रभाव होता है।

अहं सुरक्षात्मक यंत्रों की अवधारणा फ्रायड ने सन् 1854 ई0 में सर्वप्रथम स्पष्ट की थी। उन्होंने सुरक्षात्मक यंत्रों का विवरण अपने लेख "दि डिफेन्स इन न्यूरोसाइकोसिस" में दिया था। इस लेख में केवल दमन यंत्र का विवरण दिया था। व्यक्ति एक ही समस्या को सुलझाने के लिए एक ही समय में एक से अधिक सुरक्षात्मक यंत्रों का उपयोग करता है परन्तु ये सुरक्षात्मक यंत्रों का उपयोग करता है परन्तु ये सुरक्षात्मक यंत्र अचेतन तथा स्वतंत्र रूप से कार्य करते रहते हैं और व्यक्ति इनके अस्तित्व से अनभिज्ञ रहता है। वह सुरक्षात्मक यंत्रो का उपयोग तभी करता है जब मूल प्रवृत्तियों को अत्यधिक प्रभाव एवं दबाव का खतरा उत्पन्न हो जाता है।

विषम तनावपूर्ण स्थिति में व्यक्ति की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

असमायोजन

मनोवैज्ञानिक विघटन

इन समस्याओं को दूर करने के लिए प्रायः तीन प्रकार की सुरक्षात्मक प्रतिक्रियायें घटित होती है:-

1. मनोवैज्ञानिक क्षरण यंत्र जैसे चिल्लाना तथा बातों की पुनरावृत्ति।

2. अहं या आत्म सुरक्षात्मक प्रतिक्रियायें जैसे अस्वीकृत तथा औचित्य स्थापन। इसके द्वारा आघात तथा अवमूल्यन से अहं की रक्षा होती है।

3. व्यक्ति का औषधि पर आश्रित होने का व्यवहार।

इस प्रकार मानसिक रचनायें वे यंत्र हैं जिससे व्यक्ति आत्म अवमूल्यन की रक्षा करता है तथा मनोवैज्ञानिक एकता बनाये रखता है। इस प्रक्रिया द्वारा वह अचेतन समाज विरोधी प्रवृत्तियों को चेतन में आने से रोकता है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति इन यंत्रों का उपयोग दिन प्रतिदिन की जीवन में करता है परन्तु उस दिशा में ये प्रतिक्रियाएं व्याधिकी हो जाती है जब वे तनाव एवं विषम परिस्थिति में साधन का कार्य करने लगती है।

10.2.2 रक्षा युक्तियों के प्रकार

व्यक्ति उद्देश्य को प्राप्त करने में निराशा, आत्म अवमूल्यन तथा चिन्ता का निराकरण विभिन्न सुरक्षात्मक तरीकों का उपयोग करके स्थानापन्न उद्देश्यों की दिशा में प्रयास करता है।

इस प्रकार समस्त सुरक्षात्मक यंत्रों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. आक्रामक

2. कल्पनात्मक

3. पुनर्व्याख्यात्मक अथवा समझौता संबंधी

महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक यंत्रों का विवरण निम्नलिखित हैं-

1. प्रक्षेपण

प्रक्षेपण एक ऐसा यंत्र है जिसके द्वारा आपत्तिजनक प्रभावों एवं विचारों को बाह्य पर्यावरण में व्यक्तियों अथवा वस्तुओं पर आरोपित करते हैं। इसके द्वारा व्यक्ति अनुभव करता है कि उस स्थिति का संबंध उससे नहीं है। यह वह प्रवृत्ति है जिसमें व्यक्ति बाह्य जगत में अपनी दमित मानसिक प्रक्रियाओं का आरोपण करता है। प्रक्षेपण बहुत ही प्रारम्भिक प्रकार का मानसिक यंयत्र है क्योंकि इसका उपयोग शैशव अवस्था से ही प्रारंभ हो जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति की यह प्रवृत्ति होती है कि वह हितकारी तथा सुखदायी वस्तुओं को अपने आत्म का भाग बताता है और क्लेशकर तथा अहितकारी वस्तुओं तथा घटनाओं का संबंध बाह्य जगत से लगाता है। साधारणतया प्रक्षेपण के द्वारा व्यक्ति अपने आपत्तिजनक वस्तुओं अथवा स्थितियों को अस्वीकार करता है और उसका संबंध बाह्य जगत से लगाता हे। यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक रचना है जिससे व्यक्ति दूसरों पर अपनी दमित भावनाओं तथा संवेगों को आरोपित करता है।प्रक्षेपण एक ऐसा तरीका है जिसको बालक जन्म से ही करना सीखता है। जो बालक परीक्षा में असफल हो जाता है वह अध्यापकों को बेइमान बताता है। जब मानसिक दशा गम्भीर हो जाती है तो व्यक्ति यह समझने लगता है कि दूसरे व्यक्ति उसके विरोध में कार्य कर रहे हैं अथवा उसके विरूद्ध कोई षड़यंत्र रच रहे हैं।

2. दमन

दमन सुरक्षात्मक यंत्र के द्वारा व्यक्ति अपनी कष्टकर आपत्तिजनक तथा अन्तर्द्वन्द उत्पन्न करने वाले विचारों, इच्छाओं तथा भावनाओं को चेतना से बहिष्कृत कर देता है। यद्यपि इस यंत्र क्रिया को चयनात्मक विस्मरण के रूप में जाना जाता है। यदि व्यक्ति अपनी आँखों से निकटतम् संबंधी की हत्या देखता है उसको यह दृश्य इतना भयानक लगता है कि उसको भूलने का वह प्रयत्न करता है परन्तु अचेतन की याद बनी रहती है तथा कष्ट देती है। दमन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी सुरक्षात्मक यंत्र है जिसके कारण खतरनाक, विषम, कष्टकर तथा पीड़ाजन्य परिस्थितियों से व्यक्ति बचता है परन्तु इससे व्यक्ति में परिस्थिति का सामना करने की क्षमता का ह्रास होता है। इस यंत्र का उपयोग उस समय किया जाता है जब वास्तविकता से सामना करने की क्षमता कम हो जाती है। यह यंत्र फ्रायड मनोविश्लेषण सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसमें व्यक्ति का अहं अपनी पूर्ण शक्ति को अवांछनीय तथा कष्टकर स्मृति को चेतन अवस्था में आने से रोकने में लगा देता है। दोनों शक्तियों में संघर्ष होता है और विजय उसी की होती है जो शक्तिशाली होती है।

दमन की विषम स्थिति उस समय होती है जब व्यक्ति की स्मृति बिल्कुल ही खत्म हो जाती है। हिस्टीरिया उत्पन्न करने में दमन का कार्य विशेषकर महत्वपूर्ण होता है। दमन कभी-कभी विस्थापन के द्वारा भी प्रकट होता है। उदाहरण के लिए जो व्यक्ति पिता के प्रति अपनी उग्र भावनाओं को दबा लेता है, वह किसी अवस्था में किसी अन्य शक्ति के प्रति प्रदर्शित करता हैं।

3. प्रतिगमन

जब व्यक्ति वर्तमान व्यवहार पद्धति को त्यागकर पूर्वकालीन स्थिति के समान व्यवहार करने लगता है तो उसे हम प्रतिगमन कहते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति पूर्व व्यवहार के स्तर को स्वीकार कर लेता है क्योंकि वर्तमान व्यवहार उसे कष्टमय प्रतीत होता है। इस प्रकार प्रतिगमन की स्थिति में व्यक्ति प्रायः अपनी शैशवकालीन अवस्थाओं में लौट आता है तथा उसी प्रकार का व्यवहार करने लगता है। जब परिवार में

नया शिशु जन्म लेता है तो बड़ा बच्चा उसके प्रति अनेक प्रतिक्रिया करता है। वह घुटनों से चलना शुरू कर देता है तथा बिस्तर पर पेशाब करने लगता है यद्यपि चलना तथा उचित पेशाब करना काफी समय पहले ही वह सीख चुका होता है। वह प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अपनी पूर्व स्थिति में वापस आ जाता है क्योंकि इस स्थिति में उसे अधिक प्यार मिला था और उसके माता-पिता पर पूरा अधिकार था।

सामान्यतः प्रतिगमन दो प्रकार का होता है-

1. काम शक्ति का प्रतिगमन
2. अहं प्रतिगमन

व्यक्ति में दोनों प्रकार के प्रतिगमन प्रायः किसी विशेष अवस्थाओं में उत्पन्न होते हैं परन्तु इनका अन्तर्संबंध अवश्य होता हे। कामशक्ति का दमन होने की अवस्था में रोगी बच्चों सी क्रियायें करने लगता है, वह खिलौनों से खेलता है, घुटनों के बल चलता है, जरा जरा बात पर चिल्लाने तथा रोने लगता है। अहं प्रतिगमन की अवस्था में व्यक्ति अपनी भूमिकाओं को नहीं निभाता है और गैर जिम्मेदारी से कार्य करने लगता है। वह अपने उत्तरदायित्वों की चिंता नहीं करता है।

4. औचित्य स्थापन

औचित्य स्थापन मानसिक सुरक्षात्मक यंत्र में अहं को अपने विचारों तथा कार्यों को उचित सिद्ध करने के लिए उन तरीकों का सहारा लेने के लिए बाध्य किया जाता है जो वास्तविक नहीं है। जब व्यक्ति को व्यवधान या भय उत्पन्न होने की किसी प्रकार की आशंका होती है तो वह ऐसे तरीकों का सहारा लोता है जिनसे उसके व्यवधान तथा भय में कमी आ जाती है। जो व्यक्ति औचित्य स्थापन करता है वह अच्छे सुखद लाभकारी तथा सामाजिक स्वीकृति के कारण अपने विचारों तथा कार्यों को अपने पक्ष में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार वह वास्तविक कारकों के विषम प्रभाव से बच जाता हैं यदि वह किसी कार्य में असफल होता है तो उसका कुछ न कुछ कारण निकाल कर कहता है। इसके दो कार्य हैं-

1. व्यक्ति-व्यवहार को उचित सिद्ध करने की सहायता करता है।
2. उद्देश्य प्राप्त करने की असफलता से उत्पन्न असंतोष को कम करता है। औचित्य स्थापन व्यवस्था में व्यक्ति अपने किये गये व्यवहार के प्रति अनेकों कारण तथा तर्क पस्तुत करता है, विरोधी विचारों को बिल्कुल अस्वीकार करता है। औचित्य स्थापन से यद्यपि व्यक्ति को सुख प्राप्त होता है परन्तु वास्तविकता से संबंध कम हो जाता है और कल्पना में विचरण करना सीख जाता है।

5. विस्थापन

जब किसी संवेग या संवेगिक अर्थ की अभिव्यक्ति उस व्यक्ति अथवा विषयों के प्रति न होकर जिससे कि उनकी उत्पत्ति हुई है दूसरे व्यक्ति या विषयों के प्रति होती है तो हम उसे विस्थापन कहते हैं। व्यक्ति कभी कभी अपने संवेगों को उत्पन्न करने वाले कारक के समक्ष स्पष्ट नहीं कर सकता है क्योंकि इससे उसको भय तथा असुरक्षा की संभावना होती है। अतः उसकी अभिव्यक्ति उस स्थिति अथवा कारक के प्रति करता है जिस पर उसका पूर्ण अधिकार होता हे। विस्थापन में संवेग प्रायः निर्दोष व्यक्ति अथवा विषय के प्रति विस्थापित होते हैं। विस्थापन की आवश्यकता इसलिए होती है कि व्यक्ति अपनी विरोधी भावनाओं की अभिव्यक्ति खतरे तथा भय के कारण उत्पन्न कारक के प्रति नहीं कर सकता, अतः उसको दूसरे

कारक के प्रति विस्थापित कर देता है। वह आत्म निन्दा करने लगता है, अपराधी भावना विकसित हो जाती है तथा आत्म अवमूल्यन होता है।

6. परिपूर्ति

परिपूर्ति प्रतिक्रिया एक सुरक्षात्मक यंत्र है जिसके द्वारा व्यक्ति संभावित असफलता अथवा कमी व हीन भावना को दूर करता हैं जब वह सोच लेता है कि अमुक कार्य में वह असफल हो रहा है तो वह उस इच्छा पूर्ति के लिए दूसरा रास्ता अपनाता है तथा दूसरा उद्देश्य निर्धारित करता है। अपनी वास्तविक तथा काल्पनिक कमी की पूर्ति के लिए नवीन दिशा में प्रयास करता है। परिपूर्ति प्रायः दो प्रकार की होती है। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष। जब व्यक्ति अमुक कमी को दूर करने के लिए उस दिशा में कड़ी मेहनत करता है तो उसे प्रत्यक्ष परिपूर्ति कहते हैं। इसके विपवरीत जब व्यक्ति एक क्षेत्र की कमी को दूर करने के लिए दूसरे क्षेत्र में प्रयास करता है तथा विशेषता ग्रहण करता है तो उसे अप्रत्यक्ष परिपूर्ति कहते हैं।

7. आत्मीकरण

व्यक्ति अपने उद्देश्य को जब प्राप्त करने में असफल रहता है तो दूसरों की उपलब्धियां को अपनी उपलब्धियां मान कर संतोष प्राप्त करता है तथा आत्म शक्ति को स्थिर बनाये रखता है। अर्थात् वह दूसरों की उपलब्धियों से आत्मीकरण कर लेता है। समाजीकरण की प्रक्रिया में भी आत्मीकरण की प्रमुख भूमिका होती है। बालक माता-पिता से आत्मीकरण करने में न केवल सुरक्षा अनुभव करता है बल्कि उन कार्यों को भी करना सीखते हैं जिनकी उनसे आशा की जाती है। परन्तु आत्मीकरण अचेतन स्तर पर होता है। जबकि अनुकरण चेतन स्तर पर होता है। व्यक्ति न केवल विशेष व्यक्तियों से बल्कि अनेक समूहों से भी आत्मीकरण करता है।

8. स्थिरता

बालक के सामान्य विकास की अवस्था में अनेक ऐसे अवसर आते हैं जहां पर उसको समायोजित करने में कठिनाई अथवा व्यवधान अनुभव होता है। व्यक्तित्व का विकास कई स्तरों से होकर गुजरता है अतः प्रत्येक नई स्थिति बालक के लिए कुछ न कुछ निराशाजन्य अवश्य होती हे। उसको प्रत्येक नई परिस्थिति का सामना करने के कलए विशेष साहस, उत्साह, प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है अतः चिन्ता तथा निराशा स्वभावतः उत्पन्न हो जाती है। जब चिंता और निराशा अधिक होती है तो स्थायी अथवा अस्थायी रूप से व्यक्तित्व स्थिर हो जाता है।

9. प्रायश्चित

प्रायश्चित के द्वारा व्यक्ति अस्वीकृत विचारों, क्रिया तथ भावनाओं को निष्प्रभावित करता है। गलतियों के लिए क्षमा मांगना, पश्चाताप करना तथा अपने को दण्डित करना प्रायश्चित के तरीके हैं। जब व्यक्ति में अपराध की भावना बढ़ जाती है और उसको वह किसी भी तरीके से समाधान करने में असफल रहता है तो वह अपने अपराध को स्वीकार कर लेता है और उसके लिए क्षमा याचना करता है। इस प्रकार वह जीवन को पुनः सुखी बनाने का प्रयत्न करता हैं। जिन बालकों को जरा-जरा सी बात पर क्षमा मांगने के लिए बाध्य किया जाता है या उन्हें दण्डित किया जाता है ऐसे बालक भविष्य में ऐसे व्यक्तित्व का विकास करते है जिसमें प्रायश्चित करना एक लक्षण होता है।

10. प्रत्याहार

प्रत्याहार के दौरान में व्यक्ति सामाजिक सम्पर्कों तथा विभिन्न दबावों से स्वयं को पृथक कर लेता है। यदि इस प्रकार का व्यवहार लम्बी अवधि तक बना रहता है तो वह जीवन की सभी परिस्थितियों से अपने को पृथक समझता है। साधारणतया प्रत्याहार की सरल अवस्था में उसे समस्याओं, विचारों तथा संबंधों के पुनर्मूल्यांकन का अवसर मिलता है। कभी-कभी व्यक्ति घनिष्ठ रूप से परिस्थिति से संबंधित होने के कारण बुद्धिमत्ता पूर्ण निर्णय लेने में कठिनाई अनुभव करता है।

11. वास्तविकता का खण्डन

आत्म सुरक्षात्मक यंत्र के द्वारा व्यक्ति वास्तविकता से स्वयं को दूर कर लेता है। वह अनिच्छित तथा क्लेशकर स्थितियों एवं भावनाओं को अस्वीकृत तथा उपेक्षित कर मानसिक चित्रपट से दूर कर देता है। प्रत्यक्षित यंत्र वास्तविकता के खण्डन का एक तरीका है। एक व्यक्ति दुखदायी स्थितियों से अपनी दृष्टि मोड़ लेता है या ऐसी बातें करने लगता है जैसे कुछ घटित ही न हुआ हो, अथवा दुखदायी विषय पर बातचीत करने से इंकार कर देता हे। आलोचना का खण्डन करता है या काम में इतना अधिक व्यस्त हो जाता है कि उसे व्यक्तिगत समस्याओं पर ध्यान आकृष्ट करने का समय ही नहीं मिल पाता हे। जब वास्तविकता के खण्डन की विषम स्थिति होती है तो व्यक्ति अनुभव करता है कि वास्तव में उसे कुछ भी दुखदायी नहीं महसूस होता हे अथवा उसके साथ कोई भी घटना नहीं घटित हुई है। यहां पर सुरक्षात्मक प्रतिक्रिया अस्थायी रूप से प्रकट होती है जिसके द्वारा आघातजन्य स्थिति के पूर्ण प्रभाव से रक्षा होती है।

12. पृथक्करण

इस सुरक्षात्मक तरीके में सांवेगिक अलगाव तथा औचित्य स्थापन दोनों तरीके सम्मिलित हैं। जिन परिस्थितियों अथवा घटनाओं से दुख, कष्ट अथवा हानि उत्पन्न होने की संभावना होती है औचित्य स्थापन द्वारा उस घटना या क्रिया से दूर है। अर्थात् व्यक्ति एक ओर तो सांवेगिक क्रिया नहीं करता तथा दूसरी ओर ऐसा करने का कारण भी ढूंढ लेता है। उदाहरण के लिए जब माता-पिता की मृत्यु होती है तो व्यक्ति यह कहकर दुख कम कर देता है कि उन्होंने अपना जीवन पूर्ण सफलता के साथ व्यतीत किया अथवा अब उनकी उम्र इस घटना के लायक थी। पृथक्करण तथा औचित्यीकरण का प्रयोग सामान्य तनावपूर्ण जीवन की स्थितियों से लेकर अतिशय तनावपूर्ण स्थितियों तक किया जाता है।

13. सांवेगिक अलगाव

व्यक्ति उन परिस्थितियों में सांवेगिक सम्मिलन कम कर देता है जिनसे किसी संभावित कष्ट, पीड़ा अथवा नुकसान की आशंका होती है। व्यक्ति के जीवन में अनेक ऐसे अवसर आते हैं जिनसे असंतोष उत्पन्न होता है। इस कारण उसे ऐसी स्थिति का पूर्वाभास भी होने लगता है। सांवेगिक अलगाव की स्थिति तभी उत्पन्न होती है जब व्यक्ति बार-बार असफल होता है तथा दुखद परिस्थितियां बार-बार आती हैं। इसलिए वे परिस्थितियां ऐस व्यक्ति में संवेग उत्पन्न करने के योग्य नहीं रह जाती हैं जितनी कि सफल व्यक्ति को प्रभावित करती हैं। व्यक्ति सुरक्षात्मक यंत्रों या तरीकों का प्रयोग निराशा से निपटने के लिए करता है।

10.3 मानसिक विकृतियों के प्रबंधन की तकनीकें

आधुनिक युग में समाज की जटिलताओं ने विभिन्न प्रकार की मानसिक विकृतियों को जन्म दिया है। पूर्व में ज्ञान के अभाव में अवैज्ञानिक तरीके से इन मानसिक विकृतियों का उचार किया जाता था परन्तु नवीन शिक्षा पद्धति में मानसिक विकारों के उपचार को नवीन नैदानिक एवं व्यवहारिक पद्धतियों की खोज हुयी है जो कि पूर्णतया वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है। आधुनिकता के प्रसार के साथ-साथ इस बात पर भी बल दिया जाने लगा कि विभिन्न मानसिक विकारों के उपचार एवं प्रबन्धन में नैदानिक उपचार के साथ-साथ सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक उपचार भी प्रभावी है। इस प्रकार मानसिक विकारों के प्रबन्धन में नये-नये सामाजिक एवं मनोसामाजिक पद्धतियों की खोज हुई तथा यह माना जाने लगा कि विभिन्न मानसिक विकारों में सामाजिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मानसिक विकारों के प्रबन्धन में निम्नलिखित प्रविधियाँ अपनायी जाती हैं:

1. **परामर्श (Counseling):** मानसिक विकारों से पीड़ित व्यक्ति के प्रबंधन हेतु परामर्श अत्यंत प्रभावी है यदि बीमारी ज्यादा गंभीर न हो। मानसिक विकृतियों की आरंभिक अवस्था में परामर्श अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो सकता है जिसके प्रमुख चरण निम्नाकित हैं:

I. सम्बन्ध स्थापन

मानसिक विकारों से पीड़ित व्यक्ति के प्रबन्धन की शुरूआत रोगी व्यक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापन से प्रारम्भ होती है। इस प्रक्रिया में उचित उद्देश्यपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना की जाती है। जिनका उद्देश्य रोगी व्यक्ति के विकारों को दूर करना तथा उसका समाज में उचित समायोजन कराना होता है। उचित सौहार्दपूर्ण एवं आत्मीय सम्बन्धों द्वारा ही रोगी का उपचार सम्भव है।

II. मुक्त सहचर्य

उचित सौहार्दपूर्ण एवं आत्मीय सम्बन्धों की स्थापना के पश्चात् रोगी चिकित्सक पर विश्वास एवं भरोसा करने लगता है। जिससे वह समझता है कि चिकित्सक उसका शुभचिंतक है तथा वह उसकी बातों को गोपनीय रखेगा। तत्पश्चात् रोगी मुक्त सहचर्य के माध्यम से अपनी समस्या के विषय में सम्पूर्ण सूचना चिकित्सक को देता है।

III. परामर्श

परामर्श के द्वारा व्यक्ति अपनी समस्या के सम्बन्ध में उचित सूचना प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता मनोविकार से पीड़ित व्यक्ति को उसकी समस्या के सम्बन्ध में विस्तार से सूचना देता है तथा सेवार्थी (मनोविकार से पीड़ित व्यक्ति) की कमियों व क्षमताओं के आधार पर उसकी समस्या के समाधान हेतु उचित रास्ता निकालता है।

IV. अन्तर्दृष्टि का विकास करना

इस पद्धति के द्वारा मानसिक विकारों से पीड़ित व्यक्ति का प्रबन्धन इस प्रकार किया जाता है कि रोगी व्यक्ति स्वयं की समस्याओं तथा कठिनाइयों को स्वयं ही प्रकट करने लगता है। इस प्रक्रिया में रोगी, उसकी कठिनाइयों एवं समस्याओं के बारे में चिकित्सक/उपचारक द्वारा विभिन्न तथ्यों के माध्यम से स्पष्ट अन्तर्दृष्टि का विकास किया जाता है।

V. अहम् को मजबूत बनाना

इस पद्धति के द्वारा जब चिकित्सक को सेवार्थी की समस्या एवं कठिनाइयों की सम्पूर्णता से जानकारी हो जाती है तब वह मनोविकार से पीड़ित व्यक्ति के अहम् को मजबूत करने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में वह मनोवैज्ञानिक आलम्बन का भी सहारा लेता है।

2. पर्यावरणीय संशोधन (Environmental Modification)

मनसिक विकारों के प्रबन्ध की इस प्रणाली में चिकित्सक रोगी के परिवार, मित्रों, एवं पास-पड़ोस के व्यक्तियों से सम्पर्क करता है। वह उन लोगों को रोगी के आस-पास मौजूद पर्यावरण को बदलने की सलाह देता है यह पद्धति पर्यावरणीय अशोधन कहलाता है।

3. **व्यवहारीय संशोधन (Behaviour Modification)**

इस पद्धति के द्वारा चिकित्सक रोगी को उसके व्यवहार में परिवर्तन की सलाह देता है। वह रोगी के जीवन के सकारात्मक पहलुओं एवं ऊर्जाओं पर अधिक ध्यान देता है तथा उचित संवेगात्मक सम्बन्ध के सहयोग द्वारा रोगी व्यक्ति के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाता है।

4. मनोचिकित्सा (Psychiatric Treatment)

मनोचिकित्सा के द्वारा चिकित्सक मनोवैज्ञानिक विधियों के द्वारा रोगी का उपचार करता है। इस प्रक्रिया में वह रोगों के उपचार हेतु मानसिक साधनों से मानव मस्तिष्क पर क्रियायें करता है जिसके परिणामस्वरूप् रोगी व्यक्ति के मानसिक संघर्षों में कमी आती है तथा उसमें उचित विचारों की उत्पत्ति तथा प्रक्रमण होता है।

5. प्रत्यायन

मानसिक विकारों के उपचार में चिकित्सक रोगी के साथ प्रत्यायन विधि का प्रयोग करता है क्योंकि यह एक लम्बी चलने वाली प्रक्रिया है। प्रत्यायन में चिकित्सक मानसिक रोगी के अन्दर एक विशेष मानसिक अभिवृत्ति का विकास करता है जो कि रोगी के तर्क एवं चिंतन को बढ़ाती है।

6. सम्मोहन चिकित्सा (Hypnotic Therapy)

इस पद्धति के द्वारा मनोचिकित्सक रोगी के रोगों के निदान व उपचार हेतु सम्मोहन की प्रणाली का प्रयोग करता है। जिससे व रोग उपचार के उचित कारणों के बारे में जानकारी प्रापत करते हुये रोगी की दमित इच्छाओं को उभारने का प्रयास करता है।

7. रोगी केन्द्रित चिकित्सा पद्धति (Patient Cantered Treatment)

इस प्रक्रिया के अन्तर्गत मनोचिकित्सक रोगी के ऊपर अपना सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करते हुये उसकी समस्या तथा उसके कारणों की खोज करता है। इस प्रक्रिया में वह उसके व्यक्तिगत एवं पारिवारिक इतिहास के बारे में गहनता से जानकारी प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया में रोगी की समस्या के स्थान पर रोगी व्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाता है तथा उसकी वर्तमान स्थिति को केंद्र बिन्दु बनाया जाता है।

8. प्राकृतिक चिकित्सा (Naturopathy)

मनोविकारों के प्रबन्धन में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का विशेष स्थान है। प्राकृतिक चिकित्सा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को भली प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है। यह

माना जाता है कि प्रकृति महान चिकित्सक है। इसमें चिकित्सा प्रकृति द्वारा रोगी का उपचार करने का प्रयास करता है। इसमें रोगी को प्राकृतिक ऊर्जा की तरफ प्रेरित किया जाता है। चिकित्सक रोगी के शरीर को प्राकृतिक नियमों के आधार पर उपचार करने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में वह निम्नलिखित क्रियाओं का प्रयोग करता है:-

अ) जल चिकित्सा (Water Therapy)

ब) मृदा चिकित्सा (Soil Therapy)

स) आयुर्वेद औषधीय चिकित्सा (Aayurvedic Medicines)

द) संगीत चिकित्सा (Music Therapy)

य) मंत्र चिकित्सा (Mantra Therapy)

र) मसाज चिकित्सा (Massage Therapy)

ल) विश्वास चिकितसा (Faith Healing)

व) पोषण चिकित्सा (Nutrition Therapy)

स) हास्य चिकितसा (Laughter Therapy)

9. योग चिकित्सा पद्धति (Yoga Therapy)

योग के द्वारा चिकित्सक रोगी की आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़कर चिकित्सा करने का प्रयास करता है। जिस आधार पर चिकित्सक रोगी की ज्ञानेन्द्रियों को नियंत्रित करता है जिसके परिणामस्वरूप रोगी के जीवन में नवीन ऊर्जा का संचार होता है। इस पद्धति द्वारा वह रोगी के आन्तरिक भागों के साथ सम्बन्धों का अनुभव कराता है और रोगी मानसिक सौहार्द्र को प्राप्त करते हुए हृदय तथा मस्तिष्क का उचित उपयोग करता है। योग द्वारा रोगी में स्वजागरुकता का विकास होता है तथा रोगी स्वयं में सकारात्मक मनोवृत्ति को महसूस करता है। इस प्रक्रिया में समय स्थान वेशभूषा स्थान, साफ-सुथरे हाथ, केश, दांत, आंख, कान, नाक की स्वच्छता तथा भोजन का विशेष ध्यान भी रखा जाता है।

10. ध्यान (Meditation)

इस पद्धति में चिकित्सक व्यक्ति के मस्तिष्क को एक विशेष मानसिक अवस्था (केंद्र) पर केंद्रित करने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में वह ज्ञानेन्द्रियों के नियंत्रण पर विशेष बल देता है, रोगी शून्यता का अनुभव करता है तथा लगातार अभ्यास द्वारा मानसिक रोगों से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास करता है।

10.4 सारांश

रक्षा युक्तियां व्यक्तित्व की वे सुरक्षा कवच है जिनका उपयोग व्यक्ति विभिन्न प्रकार के सांवेगिक एवं भावनात्मक आघातों से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए करता है। मनोवैज्ञानिकों के द्वारा व्यक्ति के विभिन्न प्रकार के रक्षा युक्तियों की पहचान की गयी है। जिनका प्रयोग व्यक्ति समय एवं परिस्थितियों के अनुसार करता है। वास्तव में रक्षा युक्तियां व्यक्ति की आंतरिक क्षमतायें ही है। इसके अलावा हमने सीखा कि मानसिक विकृतियों के प्रबंधन

हेतु परामर्श एवं अन्य कौन कौन सी चिकित्सा पद्धतियाँ यथा योग, मृदा चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, ध्यान, मनोच्चिकत्सा, सम्मोहन चिकित्सा आदि काम में लायी जा सकती हैं |

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

- रक्षा युक्तियों से क्या आशय है?
- रक्षा युक्तियों के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए?
- मानसिक विकृतियों का प्रबंधन करने के तरीकों का उल्लेख कीजिए।

10.6 संदर्भ ग्रंथ

- शर्मा, ओ0 पी0, मनोविकृतिविज्ञान, रितु पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2013,
- भक्त, उपेन्द्र, एबनारमल साइकोलाजी, रेण्डम पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011।
- सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004।
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981
- मिश्रा, पी0डी0 एवं मिश्रा, बीना, असामान्य व्यवहार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982
- शर्मा, सीमा, सामान्य मनोविज्ञान, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2011,
- मूरजानी, जानकी सामाजिक मनोविज्ञान, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2007।
- मिश्रा, एम0 के0, असामान्य मनोविज्ञान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2011,
- सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981
- चैबे, सरयू प्रसाद, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2002
- चैबे, सरयू प्रसाद, सामान्य मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2005।
- सिंह, रतन, सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009,
- शर्मा, ओ. पी., मनोविकृति विज्ञान, ऋतु पब्लिकेशन, जयपुर, 2013।
- होनिंग, डब्लू0के0 आपरेन्ट बिहैवियर, एप्लेटन सेन्चुरी क्रफ्टस, न्यूयार्क, 1966
- हल, सी0एल0 प्रिन्सिपिल्स आफ बिहैवियर, एप्लेटन सेन्चुरी क्रफ्ट्स, न्यूयार्क, 1943

इकाई-11

नेतृत्व: आवश्यकता, प्रकार एवं गुण

Leadership: Need, Types & Characteristics

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 भूमिका

11.3 नेतृत्व की आवश्यकता

11.4 नेतृत्व के प्रकार

11.4.1 अधिनायकवादी

11.4.2 निरंकुशवादी

11.4.3 लोकतांत्रिक नेतृत्व

11.4.4 हस्तक्षेप-विहीन नेतृत्व

11.5 नेतृत्व के गुण

11.6 सारांश

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.8 संदर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत नेतृत्व की आवश्यकता की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई नेतृत्व की परिभाषा का अध्ययन कर सकेंगे। तत्पष्चात् नेतृत्व के प्रकार तथा कुशल नेतृत्व के गुणों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

नेतृत्व से आशय व्यक्ति आचरण के उस गुण से है जिसके द्वारा वे व्यक्तियों या उनके संगठित प्रयास से सम्बन्धित क्रियाओं का मार्गदर्शन करते हैं नेतृत्व वह क्षमता है जिसके द्वारा अनुयायियों के किसी समूह से वांछित कार्य स्वेच्छापूर्वक एवं बिना किसी दबाव के प्राप्त किये जाते हैं।

11.2 भूमिका

नेतृत्व शब्द अपने आप में एक व्यापक शब्द है जिसका प्रयोग कई अर्थों में होता है। किसी संगठन के नेतृत्व में प्रबन्धकों का कार्य सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने में अनुयायियों में एकत्रित करने, मार्गदर्शन करने का होता है। इसके अतिरिक्त एक कुशल नेतृत्व की आवश्यकता जीवन के हर पहलू में होती है।

11.3 नेतृत्व की आवश्यकता

नेतृत्व बहुत व्यापक शब्द है और इसका प्रयोग कई अर्थो में होता है। सामान्यतः नेतृत्व का अर्थ अगुआई करने, पथ प्रदर्शित करने, श्रेष्ठता स्थापित करने, अभिप्रेरित करने, आदेश निर्गमित करने, तथा अपनी प्रमुखता या प्रतिष्ठा स्थापित करने से लगाया जाता है।

नेतृत्व, प्रबन्धकीय निर्देशन का एक प्रमुख अंग है। कुशल नेतृत्व की आवश्यकता जीवन के हर क्षेत्र में होती है। सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति में संलग्न किसी भी व्यक्ति-समूह को किसी एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो उनके सम्मिलित प्रयासों को सही दिशा में निर्देशित करे जो अपने दृढ संकल्प, दूर-दृष्टि से उनके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पक्ष प्रदर्शित और प्रोत्साहित करे, और जो उनकी आशाओं और आकांक्षाओं का प्रातिनिधित्व करते हुए, उनमें अनुशासन तथा उनके कार्यो में एकीकरण बनाए रखे।

सामाजिक विज्ञानों के शब्दकोषों के अनुसार, नेतृत्व से आशय *''किसी व्यक्ति एवं समूह के बीच के ऐसे सम्बन्ध से है जिससे कि सामूहिक हित के लिए दोनों परस्पर मिल जाते है। तथा अनुयायी उस व्यक्ति के निर्देशानुसार कार्य करते है।''*

टेरी के शब्दों में *''नेतृत्व व्यक्तियों को स्वेच्छा से सामूहिक उद्देश्यों की ओर पे्ररित करने की प्रक्रिया है।''*

बर्नार्ड के अनुसार, *''नेतृत्व का आशय व्यक्ति आचरण के उस गुण से है, जिसके द्वारा पे व्यक्तियों का या उनके संगठित प्रयास से संबन्धित क्रियाओं का मार्गदर्शन करतें हैं।''*

अल्फर्ड और बीटी के अनुसार *''नेतृत्व वह क्षमता है जिसके द्वारा अनुयायियो के किसी समूह से वांछित कार्य स्वेच्छापूर्वक एवं बिना किसी दबाव के प्राप्त किये जाते हैं।''*

इस प्रकार किसी संगठन में नेतृत्व, प्रबन्धकों का वह कार्य है जिसके द्वारा वे सामान्य उद्देश्य में संलग्न व्यक्तियों की क्रियाओं को प्रभावित करने के लिए उचित मार्गदर्शन, निर्देशन एकीकरण, श्रेष्ठता और दूरदृष्टि प्रदान करते है, जिससे कि वे स्वेच्छा से निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वांछित ढंग से, अग्रसर हों।

किसी संगठन के संचालन के लिए नेतृत्व अत्यन्त आवश्यक होता है। इसकी आवश्यकता हर क्षेत्र में देखी जा सकती है। जैसे-

अनुयायियों के लिए आवश्यकता

अनुयायियों की उपस्थिति के बिना नेतृत्व की कल्पना सम्भव नहीं है। नेतृत्व स्वभावत अनुयायियों पर निर्भर करता है क्योंकि यह शून्यता में सम्भव नहीं है। नेतृत्व का जन्म ही तब होता है जब कुछ अनुयायी मिलकर सामूहिक

सहमति प्रगट करते हैं । ये अनुयायी होते है, जो सामूहिक रूप से नेतृत्व की विद्यमानता को वास्तविक रूप प्रदान करते है।

अनुयायियों की सहमति

नेता अपने समूह के अनुयायियों पर अपना अधिकार प्रदर्शित करता हैं और जो उनके द्वारा स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है। यह अधिकार स्वेच्छा से उसके प्रति सम्मान, विश्वास, निष्ठा, समर्पण और श्रद्धा के कारण उनके अनुयायियों द्वारा स्वीकारा जाता है, न कि डर, दबाव या शक्ति के कारण।

सामान्य हित

नेतृत्व के लिए यह आवश्यक है कि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण एवं सामान्य हित हो जिनकी प्राप्ति में दोनो का यथार्थ हो। यदि नेता का हित भिन्न है और अनुयायियों का भिन्न, तो उनके हितों में कोई एकता या सामंजस्य नहीं होगा और ऐसी स्थिति में कोई प्रभावी नेतृत्व सम्भव नहीं होगा। यद्यपि यह सत्य है कि नेता और अनुयायियों के हितो में पूर्ण सामंजस्य कभी सम्भव नहीं होता। इसलिए इस संदर्भ में महत्वपूर्ण यह है कि समाधान के लिए कुछ सामान्य दर्शन एवं आर्दश हों और अनुयायियों की कुछ सामान्य धारणाएं और विश्वास हों। इन्ही सामान्य एवं परस्पर हितों पर नेतृत्व हितों नेतृत्व जोर देता है तथा संगठन के उद्देश्यों, जिनका वह नेतृत्व करता है, के मध्य कोई व्यवहारिक समझौता लाने का प्रयास करता है।

सामूहिक प्रतिनिधित्व

नेता अपने अनुययियों के प्रतिनिधित्व का कार्य करता है। वे अपने नेता का अपने मित्र, दार्शनिक एवं पथ-प्रदर्शक के रूप में देखते है। इसलिए उसे उन आदर्शो, सिद्धान्तों, आवश्यकताओं, समस्याओं, हितों और दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करना चाहिए, जिनका वह अपने वर्ग की ओर से नेतृत्व करता है। उसे अपने समस्त अनुयायियों को एक साथ लेकर आगे बढ़ना चाहिए। उसका यह परम कर्तव्य है कि पारस्परिक भागीदारी, विचार-विमर्श, संदेशवाहन, मार्गदर्शन एवं शिक्षण द्वारा वह अपने अनुयायियों को यह स्पष्ट कर दे कि उनकी ओर से वह क्या प्रतिनिधित्व का पूरा दायित्व अपने ऊपर ले सकता है और अनुयायियों से पूर्ण सहयोग की आशा भी रख सकता है।

कार्यकारी सम्बन्ध

नेतृत्व के लिए एक कार्यकारी सम्बन्ध की अत्यन्त आवश्यकता होती है। टैरी के अनुसार,'' नेतृत्व, नेता, अनुयायी, स्थिति और इनमें परस्पर सम्बन्धों का कार्य है।'' अतः इन तीनो में जब तक कोई कार्यवाही सम्बन्ध नहीं है, या नेता सक्रिय रूप से सामूहिक क्रियाओं और इच्छाओं को प्रभावित करने के लिए पहल, संगठन संदेशवाहन, पथ-प्रदर्शन एवं प्रोत्साहित करने, का कार्य नही करता, तो नेतृत्व का कोई अर्थ या उद्देश्य ही नही होगा। सामूहिक

प्रासंगिकता

नेतृत्व प्रासंगिक होता है। किसी विशेष स्थिति या वातावरण का इसके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है। वही नेतृत्व जो उन्हें किसी विशेष परिस्थितियों में, किसी वर्ग के नेतृत्व में आशातीत सफलता पा चुका है, परिस्थिति, समय, वर्ग या समस्याओं के बदलने के साथ अयोग्य और असफल सिद्ध होता है। भिन्न दृष्टिकोण, भिन्न वर्ग, भिन्न समस्यांए, भिन्न समय और उनके लिए भिन्न गुणों, भिन्न योग्यताओं, भिन्न अभिप्रेरण विधियों और भिन्न प्रयासों की नेतृत्व की सफलता के लिए आवश्यकता होती है।

11.4 नेतृत्व के प्रकार

नेतृत्व के सामान्यतः चार प्रकार हैं:-

(अ) अधिनायकवादी

(ब) निरंकुशवादी

(स) प्रजातांत्रिक

(द) हस्तक्षेप-विहीन

11.4.1 अधिनायकवादी

अधिनायकवादी नेता कार्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति सदस्यों में भय उत्पन्न करके करता है। अनुयायियों-सदस्यों को दण्ड का भय रहता है, जिसके कारण वे विरोध नहीं करते हैं। इस प्रकार का नेतृत्व नकारात्मक कार्य-प्रणाली पर आधारित होता है, जिसकी यह मूल मान्यता होती है कि लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरित किया गया और प्रेरित करने का सबसे अच्छा तरीका भय है। नेता भय द्वारा सदस्यों को इच्छित व्यवहार करने के लिए तैयार करता है। इस प्रकार से प्राप्त परिणाम अपने आपमें महत्वपूर्ण हो सकते हैं परन्तु सदस्यों में सदैव असंतोष बना रहता है।

11.4.2 निरंकुशवादी

निरंकुशवादी नेता शक्ति तथा निर्णय-प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु होता है। ऐसा नेता सदस्यों को उस पर विश्वास करने के लिए मजबूर करता है। वह ऐसा प्रभाव डालता है जिससे सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उस पर निर्भर हो जाते हैं। कार्य पूरा करने का उत्तदायित्व नेता स्वयं ही लेता है। समूह-सदस्यों को निर्णय-प्रक्रिया में भाग लेने के अवसर नहीं देता है। वह यह भी नहीं चाहता है कि सदस्य पूर्व निर्धारित नियमों से जरा भी विचलित हों। निरंकुश नेता के साथ सदस्य अनुयायी विनय का व्यवहार करते हैं। ऐसा नेता इच्छित परिणाम शीघ्र प्राप्त कर लेता है। लेकिन समूह तभी तक अच्छा रहता है जब तक नेता अच्छा रखता है। यदि नेता कमजोर तथा अप्रभावकारी है तो सदस्य भी वैसे ही हो जाते हैं।

11.4.3 लोकतांत्रिक नेतृत्व

लोकतांत्रिक नेतृत्व शक्ति का निर्णय-प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। जो भी निर्णय होता है उसमें समूह के सभी सदस्य भागीदार होते हैं। किसी भी निर्णय के लिए लोगों की राय ली जाती है तथा विचार-विमर्श को काफी महत्व दिया जाता है। इस प्रकार के नेतृत्व में अनुकरण करने वाले लोग यह समझते हैं कि नेता जो कुछ कर रहा है वह उनकी भलाई के लिए है। इसमें लोग स्वेच्छा से नेता के आदेश का पालन करते हैं। इस प्रकार का नेतृत्व सदस्यों में उच्चतम निपुणताओं का विकास करता है तथा अधिकतम संतोष प्रदान करता है। इस प्रकार के सम्बन्धों में घनिष्ठता तथा पारस्परिक लगाव अधिक होता है। सदस्यों को एक आवश्यक ईकाई के रूप में देखा जाता है और मान्यता दी जाती है।

11.4.4 हस्तक्षेप-विहीन नेतृत्व

इस प्रकार के नेतृत्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें नेता समूह के ऊपर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डालता। वह न तो समूह के कार्यों में हस्तक्षेप करता है और न ही किसी प्रकार का सहयोग देता है। सदस्यों को स्वयं अपने लक्ष्य निर्धारित करने होते हैं तथा स्वयं निर्णय लेना होता है। इस प्रकार के नेतृत्व में सदस्यों को निराशा होती है। वे सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इधर-उधर भटकते रहते हैं। इस कारण असंगठन तथा दिशा भ्रम की स्थिति समूह में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

बोगार्डस ने भी नेतृत्व के कुछ प्रकार बतायें हैं जो निम्नवत हैं:-

प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष नेता

प्रत्यक्ष नेता वह है जो समूह के अन्य सदस्यों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क रखता है। वह अपने समूह की आवश्यकताओं से परिचित होता है। वह समय-समय पर सदस्यों को उनकी समस्याओं को हल करने के तरीकों को बतलाता रहता है। वह समूह के बाहर प्रतिनिधित्व भी करता है, आपसी वैमस्यता को विचार-विमर्श के द्वारा निपटाता है तथा सामान्य समूह को विश्वास दिलाता है कि वह उन्हीं में से एक है। अप्रत्यक्ष नेता के अपने अनुयायियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क बहुत कम होते हैं। इस तरह के नेता अपने कार्यों अथवा नीतियों की सहायता से बहुत दूर भी रहने वाले व्यक्तियों से सम्पर्क रख लेते हैं।

पक्षपातपूर्ण एवं वैज्ञानिक नेता

पक्षपातपूर्ण नेता का कार्य सदैव अपने समूह का पक्ष लेने को तथा अपने समूह के दुर्गणों को छिपाना होता है। जब कभी किसी समस्या पर विचार-विमर्श करता है, भले अपने समूह को ही लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करता है, भले ही इससे दूसरों को हानि पहुँचती हो। किसी राजनैतिक नेता द्वारा सदैव अपने दल का समर्थन करना इस प्रकार के नेतृत्व का उदाहरण है।

वैज्ञानिक नेता वह होता है जो यथार्थ बातों को ही समह के सामने लाता है, ये बातें चाहे समूह के हित में हों या अहित में। ऐसे नेता सामान्यतः सिद्धान्तवादी होते हें तथा प्रत्येक कार्य को करते समय सदैव अपने सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हैं।

सामाजिक एवं मानसिकनेता

सामाजिक नेता सामाजिक कार्यों के द्वारा समूह में लोकप्रियता प्राप्त करता है। इसका प्रमुख कार्य समूह की समस्याओं का समाधान करना और सदस्यों के प्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाये रखना होता है। ऐसे नेता उत्साही और त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

मानसिक नेता वे होते हें जो अपने विचारों और क्रियाओं के द्वारा समूह के सदस्यों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन करते हैं। इनमें उत्तेजना की अपेक्षा बौद्धिकता अधिक होती है। मानसिक नेतृत्व तभी सफल हो पाता है जब ऐसे नेता को शान्तिपूर्ण वातावरण मिले तथा आजीविका के बारे में अधिक चिन्तित न होना पड़े।

अधिशासी नेता

अधिशासी नेता वह होता है जिसमें सामाजिक, बौद्धिक तथा प्रबन्धकीय गुणों का समावेश होता है। ऐसे नेता का कार्य एक विशेष समूह संगठित करना तथा उनके लिए कार्य-योजना बनाना होता है। यह कार्य केवल तभी सम्भव है जबकि वह सामाजिक क्षेत्र में सेवा कार्य कर रहा हो तथा व्यक्तियों को व्यावहारिक सुझाव दे रहा हो। ऐसे नेताओं को राज्य के द्वारा कुछ अधिकार मिले होते हैं, जिनका वे जनहित में उपयोग करते हैं।

11.5 नेतृत्व के गुण

एक नेता में अपने वर्ग के अनुयायियों के कार्यों एवं भावनाओं को प्रभावित करने के लिए कुछ आवश्यक गुण होने चाहिए, जो निम्नलिखित हैं-

1. शारीरिक शक्ति

सफल नेतृत्व के लिए कठोर शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम करना आवश्यक है। इसलिए अधिक समय और विषम परिस्थितियों में कार्य करने के लिए शारीरिक एवं मानसिक शक्ति होना आवश्यक है।

2. परिपक्वता

सफल नेतृत्व के लिए भावनात्मक परिपक्वता आवश्यक है। नेता को अपने निर्णय भावनाओं के बहाव में न आकर, विवेकपूर्ण एवं गहन विचार के उपरान्त ही लेना चाहिए। उसको भली प्रकार के पक्षपातों, दबावों, प्रलोभनों से ऊपर उठकर स्वतंत्र विचारों का सृजन करना चाहिए और अपने समस्त कार्यों और निर्णयों मंे उचित क्रमबद्धता और तारतम्यता रखनी चाहिए।

3. अन्र्तदृष्टि

मानवीय आवश्यकताओं, व्यवहारों, आवश्यकताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं और मनःस्थितियों की क्षमता एक सफल नेता का आवश्यक गुण है क्योंकि नेतृत्व का सम्बन्ध मानवीय क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से ही विशेष रूप से होता है। यदि मानवीय सम्बन्धों को समझने की उसमें सूक्ष्म दृष्टि है, तो वह अपने निर्णय या व्यवहार की सम्भावित प्रतिक्रियाओं का सरलता से पूर्वानुमान कर सकता है।

4. वस्तुनिष्ठता

अपने व्यवहार और दृष्टिकोण में नेता को वस्तुनिष्ठ होना चाहिए। उसे कोई भी निर्णय डर, दबाव, पक्षपात, प्रलोभन या पूर्वाग्रहों से प्रेरित होकर नहीं लेना चाहिए। उसका हर निर्णय तथ्यों के विवेकपूर्ण और तर्कसंगत विश्लेषण पर आधारित होना चाहिए।

5. समानुभूति

चीजों को वस्तुनिष्ठ होकर, दूसरे दृष्टिकोण से देखने और समझने की योग्यता को परानुभूति कहते है। अर्थात् अपने आपको मानसिक एवं भावनात्मक रूप से दूसरे की स्थिति में रखने की क्षमता को परानुभूति या तदानुभूति कहा जाता है। परानुभूति के लिए यह परम आवश्यक है कि व्यक्ति में दूसरों के प्रति सम्मान तथा उसके अधिकारों, विश्वासों और भावनाओं के लिए आदरभाव हो। यह लक्षण नेता को जिन व्यक्तियों से उसका सम्पर्क है, की प्रतिक्रियाओं, गतिविधियों तथा भावनाओं का पूर्वानुमान करने में सहायक होगा, जो उनके परिपेक्ष्य में वह उचित मोर्चाबन्दी भी कर सकेगा।

6. आत्मजागरूकता

नेतृत्व की जन्म अन्तःकरण से होना चाहिए। बाहरी शक्तियां इस इच्छा को उत्तेजित तो कर सकती है किन्तु आवश्यक तत्व जो प्रेरित करता है वह आत्मभिप्रेरण ही है। आत्मभिप्रेरण बहुत प्रकार से परिलक्षित हो सकता है, जैसे संकल्प की दृढ़ता, लम्बी अवधि तक कार्य करते रहने की प्रबल इच्छा, तीव्र लगन और असीम उत्साह। कोई भी बड़ी सफलता बिना आत्मभिप्रेरण के प्राप्त नहीं होती है।

7. सम्प्रेषण कौशल

अच्छे नेतृत्व के लिए यह आवश्यक है कि नेता में बातचीत, भाषण एवं लेखन के माध्यम से अपने विचारों और भावों को स्पष्ट, सुनिश्चित तथा शक्तिशाली ढंग से व्यक्त करने की क्षमता हो और दूसरों के भावों और विचारों को समझने और संक्षेप में उसका सार ग्रहण कर लेने की योग्यता हो। संदेशवाहन की क्षमता की आवश्यकता अनुनय-विनय करने, सूचना आदान-प्रदान करने, अभिप्रेरित एवं निर्देशित करने तथा स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करने आदि में होती है।

8. शिक्षण एवं मार्गदर्शन

एक शिक्षक के आवश्यक गुण भी नेतृत्व के लिए आवश्यक है। किसी कार्य को स्वयं प्रदर्शित कर दिखाने की क्षमता, अनुयायियों की त्रुटियों को सुधारने एवं उन्हें आगे बढ़ाने की योग्यता तथा प्रश्न पूछने एवं सुझाव देने की क्षमता भी सफल नेतृत्व के लिए आवश्यक है।

9. व्यवहार कुशलता

नेतृत्व के लिए व्यवहार-कुशलता भी आवश्यक है। नेता में अपने वर्गानुयायियों एवं उनकी शक्तियों और कमजोरियों को समझने की भी योग्यता होनी चाहिए। उसमें उनके विश्वास पात्र बनने को चातुर्य होना चाहिए। उसे अपने अनुगामियों का सहायक मित्र और सुहृदय होना चाहिए। उनसे सम्पर्क बनाए रखना चाहिए एवं उसमें अपने अनुयायियों को सफलता प्राप्त होते देखने की आन्तरिक इच्छा होनी चाहिए।

10. दक्षता

नेता को अपने क्षेत्र से सम्बन्धित सभी विषयों, सिद्धान्तों, कार्यविधियों आदि की सम्पूर्ण जानकारी एवं क्षमता होनी चाहिए जो स्वयं अनभिज्ञ है वह दूसरों का मार्गदर्शक कैसे बन सकेगा। गुणों की यह सूची केवल संकेतात्मक है, परिपूर्ण नहीं है। यद्यपि यह सत्य है कि उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न किसी व्यक्ति का मिलना सरल बात नहीं है, लेकिन यह भी ठीक है कि उपर्युक्त गुणों से युक्त व्यक्ति अवश्य ही एक सफल एवं आदर्श नेता होगा।

11. पहल करना

पहलकदमी करना नेतृत्व का प्रथम कार्य है। नेता जिन कार्यों की आशा अपने अनुयायियों से करता है वे उसे स्वयं भी करने चाहिए। उसे कार्यों में पहल करके अनुयायियों के समक्ष आदर्श स्थापित करना चाहिए। अनुयायी अपने नेता के आचरण से अधिक प्रभावित होता है, और बातों से कम। अतः सफल नेतृत्व के लिए आदर्श और सच्चा आचरण अत्यन्त आवश्यक होता है। इसी प्रकार जिस दर्शन तथा जिन सिद्धान्तों और मूल्यों में नेता विश्वास उत्पन्न करना चाहता है, उसमें उसकी अपनी निष्ठा और पक्का विश्वास होना चाहिए। अगुआई के लिए नेता में दूरदृष्टि, भविष्य के पूर्वानुमान करने की क्षमता, प्रबल इच्छाशक्ति, दृढ़ संकल्प, मूल्यों और लक्ष्यों में पक्का विश्वास, जोखिम उठाने की तत्परता, क्रियाओं के नियोजन एवं मार्गदर्शन की योग्यता जैसे गुण अवश्य होने चाहिए। नेता को अपने आदर्श, आचरण और निष्ठा से अनुयायियों को अनुगमन करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, न कि उन्हें पीछे से धक्का मारकर आगे बढ़ जाने को कहना चाहिए।

12. प्रतिनिधित्व

नेतृत्व का दूसरा कार्य प्रतिनिधित्व करना होता है। नेता अपने वर्ग के उद्देश्य, आदर्शों, समस्याओं, विश्वासों, आशाओं, मूल्यों तथा भावनाओं का संगठन एवं संगठन के बाहर प्रतिनिधित्व करता है। इनके लिए उसे अपने को समर्पित करना होता है। इससे उसके वर्ग समूह की पहचान होती है। अतः मिथ्या आचरण और प्रदर्शन बहुत घाती और भ्रामक होता है।

13. व्याख्या

नेता का यह भी कर्तव्य है कि वह अनुगमनीय लक्ष्यों, समस्याओं और आदर्शों की विवेकपूर्ण व्याख्या एवं विश्लेषण करके अपने अनुयायियों को समझाए, जिससे कि वे उन्हें सभी संदर्भ में समझ सकें, उनके प्रति आश्वस्त हो सकें और अपना स्वैच्छिक सहयोग प्रदान कर सकें।

14. अभिप्रेरण

नेतृत्व का परम कर्तव्य है कि वह अपने समूह के लक्ष्यों की ओर प्रेरित करे और उनमें उत्साहवर्धन करे। उन्हें निरन्तर कार्य की प्रेरणा दे और उनके मनोबल को उठाये रखे। उन्हें व्याप्त असंतोष, कुण्ठाओं, निराशाओं, शंकाओं और भ्रान्तियों को दूर कर, उन्हें सही मार्ग और उद्देश्यों की ओर अभिप्रेरित करे। उनमें दृढ़ विश्वास और निष्ठा का सृजन करे और उनकी सुषुप्त इच्छाओं और कार्यों को लक्ष्यों की प्राप्ति की प्रबल भावनाओं में परिवर्तित करने का प्रयास करें।

15. एकता स्थापित शैली

समस्त वर्ग की क्रियाओं, हितों एवं सदस्यों को एकसूत्र में पिरोना, नेतृत्व का एक आवश्यक कार्य है। नेता को संगठन के सामूहिक उद्देश्यों और अनुयायियों के व्यक्तिगत हितों मे ंसामंजस्य स्थापित करना चाहिए। उसे ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए जिसमें सामूहिक कार्य एवं परस्पर सहयोग की भावना को बल मिले, कार्यों एवं पहुंच में एकता स्थापित हो और उद्देश्य-विरोधी क्रियाओं पर रोक लगे।

16. पथ प्रदर्शक

पथ प्रदर्शक भी नेतृत्व का एक अपरिहार्य कार्य है। अनुयायियों का बिना सही मार्गदर्शन किए कोई भी नेतृत्व अपने उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर सकता। कठिनाईयों एवं उलझनों में उन्हें सही दिशा बताना, आने वाली परेशानियों को अपनी दूरदृष्टि से जानना एवं अनुयायियों को सचेत करना, उन्हें आगे क्या करना है, इसके लिए आवश्यक आदेश और निर्देश देना, समय-समय पर उनके समक्ष उचित राय और विचार रखना और अपने आचरण से उनके समक्ष सही आदर्श उपस्थित करना, अच्छे मार्गदर्शन के लिए आवश्यक है।

17. अनुशासन

वर्ग के सदस्यों में निष्ठा और अनुशासन बनाए रखना भी कुशल नेतृत्व का कार्य होता है। किसी भी सामूहिक और संगठित प्रयास के लिए अनुशासन एक आवश्यक शर्त होती है। इसलिए नेता को अनुयायियों की क्रिया-कलापों एवं गतिविधियों पर दृष्टि रखनी चाहिए। उन्हें भटकने से रोकना चाहिए और अपने कुशल नियंत्रण और निरीक्षण से उनको सही दिशा में लाने के लिए निर्देशित करना चाहिए।

18. संदेशवाहन

एक कुशल नेता संदेश वाहक का कार्य भी करता है। उसका दायित्व है कि वह अनुयायियों को समय-समय पर तथ्यों से अवगत कराये, उन्हें आवश्यक आदेश और निर्देश तथा उनकी समस्याओं, विचारों और भावनाओं को समझे जो कि एक गतिशील और कुशल नेतृत्व के लिए आवश्यक है।

11.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त नेतृत्व की आवश्यकता की जानकारी प्राप्त की। नेतृत्व के प्रकारों का अध्ययन किया। इसके साथ ही नेतृत्व के गुणों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की गयी।

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नेतृत्व की आवश्यकता किन-किन क्षेत्रों में पड़ती है? चर्चा कीजिए।
2. नेतृत्व के कितने प्रकार होते है? बोगार्डस ने नेतृत्व के कितने प्रकार बताए है? स्पष्ट कीजिए।

11.8 संदर्भ ग्रंथ

- मिश्रा, पी0डी0 एवं मिश्रा बीना, असामान्य व्यवहार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982
- शर्मा, सीमा, सामान्य मनोविज्ञान, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2011,
- मूरजानी, जानकी सामाजिक मनोविज्ञान, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2007,
- शर्मा, सुनीता, व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त, रावत प्रकाशन, 2012,
- मिश्रा, महेन्द्र कुमार, असामान्य मनोविज्ञान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2011,
- सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981
- चैबे, सरयू प्रसाद, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2002
- चैबे, सरयू प्रसाद, सामान्य मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2005।
- सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004।
- सिंह, रतन, सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009,
- मिश्रा, पी0डी0, एवं मिश्रा बीना, व्यक्ति एवं समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010,

****